॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ 1899

श्रावणमासमाहात्म्य

[सानुवाद]

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरि: ॥

विषय-सूची

निवेदन

मनुष्यजन्म अत्यन्त दुर्लभ है। चौरासी लाख योनियोंमें भटकता हुआ प्राणी पापोंके क्षीण होनेपर भगवान्‌की कृपावश दुर्लभ मनुष्य-योनिमें जन्म लेता है। मनुष्य-योनिको दुर्लभ इसलिये कहा जाता है; क्योंकि अन्य योनियाँ जहाँ केवल भोगयोनियाँ ही हैं; वहीं मनुष्ययोनि एकमात्र कर्मयोनि भी है। ऐसा दुर्लभ अवसर पाकर भी यदि मनुष्य उसे व्यर्थ गँवा दे अथवा पुनः अधोगतिको प्राप्त हो जाय तो यह विडम्बना ही होगी। इसीलिये हमारे शास्त्रोंमें ऐसे विधि-विधानोंका वर्णन है, जिससे मनुष्य अपने परमकल्याणका मार्ग प्रशस्त करते हुए मुक्तिकी ओर अग्रसर हो सके।

पुराणोंमें विभिन्न तिथियों, पर्वों, मासों आदिमें करणीय अनेकानेक कृत्योंका सविधि प्रेरक वर्णन प्राप्त होता है, जिनका श्रद्धापूर्वक पालन करके मनुष्य भोग तथा मोक्ष दोनोंको प्राप्त कर सकता है।

निष्काम भावसे तो व्यक्ति कभी भी भगवान्‌की पूजा, जप, तप, ध्यान आदि कर सकता है, परंतु सकाम अथवा निष्काम किसी भी भावसे कालविशेषमें जप, तप, दान, अनुष्ठान आदि करनेसे विशेष फलकी प्राप्ति होती है—यह निश्चित है। पुराणोंमें प्रायः सभी मासोंका माहात्म्य मिलता है, परंतु वैशाख, श्रावण, कार्तिक, मार्गशीर्ष, माघ तथा पुरुषोत्तममासका विशेष माहात्म्य दृष्टिगोचर होता है, इन मासोंकी विशेष चर्या तथा दान, जप, तप, अनुष्ठानका विस्तृत वर्णन ही नहीं प्राप्त होता; अपितु उसका यथाशक्ति पालन करनेवाले बहुत-से लोग आज भी समाजमें विद्यमान हैं। मासोंमें श्रावणमास विशेष है। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

द्वादशस्वपि मासेषु श्रावणो मेऽतिवल्लभः। श्रवणार्हं यन्माहात्म्यं तेनासौ श्रवणो मतः॥
श्रवणर्क्षं पौर्णमास्यां ततोऽपि श्रावणः स्मृतः। यस्य श्रवणमात्रेण सिद्धिदः श्रावणोऽप्यतः॥

(स्कन्दमहापु० श्रा०माहा० १। १७-१८)

अर्थात् बारहों मासोंमें श्रावण मुझे अत्यन्त प्रिय है। इसका माहात्म्य सुननेयोग्य है। अतः इसे श्रावण कहा जाता है। इस मासमें श्रवण-नक्षत्रयुक्त पूर्णिमा होती है, इस कारण भी इसे श्रावण कहा जाता है। इसके माहात्म्यके श्रवणमात्रसे यह सिद्धि प्रदान करनेवाला है, इसलिये भी यह श्रावण संज्ञावाला है।

श्रावणमास चातुर्मासके अन्तर्गत होनेके कारण उस समय वातावरण विशेष धर्ममय रहता है। जगह-जगह प्रवासी संन्यासी-गणों तथा विद्वान् कथावाचकोंद्वारा भगवान्की चरितकथाओंका गुणानुवाद एवं पुराणादि ग्रन्थोंका वाचन होता रहता है। श्रावणमासभर शिवमन्दिरोंमें श्रद्धालुजनोंकी विशेष भीड़ होती है, प्रत्येक सोमवारको अनेक लोग व्रत रखते हैं तथा प्रतिदिन जलाभिषेक भी करते हैं। जगह-जगह कथासत्रोंका आयोजन; काशीविश्वनाथ, वैद्यनाथ, महाकालेश्वर आदि द्वादश ज्योतिर्लिंगों तथा उपलिंगोंकी ओर जाते काँवरियोंके समूह; धार्मिक मेलोंके आयोजन; भजन-कीर्तन आदिके दृश्योंके कारण वातावरण परम धार्मिक हो उठता है। महाभारतके अनुशासनपर्व (१०६। २७)-में महर्षि अंगिराका वचन है—

श्रावणं नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत्। यत्र तत्राभिषेकेण युज्यते ज्ञातिवर्धनः॥

अर्थात् 'जो मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर एक समय भोजन करते हुए श्रावणमासको बिताता है, वह विभिन्न तीर्थोंमें

स्नान करनेके पुण्यफलसे युक्त होता है और अपने कुटुम्बीजनोंकी वृद्धि करता है।'

स्कन्दमहापुराणमें तो भगवान्‌ने यहाँतक कहा है कि श्रावणमासमें जो विधान किया गया है, उसमेंसे किसी एक व्रतका भी करनेवाला मुझे परम प्रिय है—

किं बहूक्तेन विप्रर्षे श्रावणे विहितं तु यत्। तस्य चैकस्य कर्तापि मम प्रियतरो भवेत्॥

(स्कन्दमहापु० श्रा०माहा० ३०। ३६)

स्कन्दमहापुराणके अन्तर्गत श्रावणमासका विस्तृत माहात्म्य प्राप्त होता है, इसमें तीस अध्याय हैं, जिनमें श्रावणमासके शास्त्रीय महत्त्वका सांगोपांग वर्णन मिलता है। श्रद्धालु पाठकोंके लिये इसको प्रथम बार गीताप्रेससे सानुवाद प्रकाशित किया जा रहा है।

आशा है, मुमुक्षु धार्मिकजन इससे यथासम्भव लाभ प्राप्त करेंगे।

—राधेश्याम खेमका

श्रावणमासमाहात्म्य

अथ प्रथमोऽध्यायः

शौनक उवाच

सूत सूत महाभाग व्यासशिष्य ह्यकल्मष। त्वदीयवदनाम्भोजान्नानाख्यानानि शृण्वताम्॥ १॥
तृप्तिर्न जायते भूयः श्रवणेच्छा प्रवर्धते। कार्तिकस्य च माहात्म्यं तुलासंस्थे दिवाकरे॥ २॥
माघमासस्य माहात्म्यं मकरस्थे विभावसौ। वैशाखमासमाहात्म्यं तथा मेषगते रवौ॥ ३॥
तत्र तत्र च ये धर्माः कथिताः सर्वशस्त्वया। एतेभ्योऽप्यधिकः कश्चिन्मासश्चेत्तव सम्मतः॥ ४॥
धर्म ईशप्रियो नित्यं तं त्वं कथय साम्प्रतम्। यच्छ्रुत्वा पुनरन्यत्र श्रोतुमिच्छा न नो भवेत्॥ ५॥
श्रद्धालोः श्रोतुरग्रे तु वक्ता गोप्यं न कारयेत्॥ ६॥

सूत उवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्वे भवतो वाक्यगौरवात्। तुष्टोऽहं न च गोप्यं मे भवदग्रे तु किञ्चन॥ ७॥
अदाम्भिक्यं तथास्तिक्यमशठत्वं सुभक्तिता। शुश्रूषत्वं विनीतत्वं ब्रह्मण्यत्वं सुशीलता॥ ८॥
ध्रुवत्वं च शुचित्वं च तपस्वित्वानसूयते। एते द्वादशसंख्याका गुणाः श्रोतुः प्रकीर्तिताः॥ ९॥
ते सर्वेऽपि भवत्स्वेव तुष्टस्तत्त्वं ब्रवीम्यतः। सनत्कुमारो मेधावी धर्मजिज्ञासुरानतः॥ १०॥

पहला अध्याय

ईश्वर-सनत्कुमार-संवादमें श्रावणमासके माहात्म्यका वर्णन

शौनक बोले—हे सूत! हे सूत! हे महाभाग! हे व्यासशिष्य! हे अकल्मष! आपके मुखकमलसे अनेक आख्यानोंको सुनते हुए हम लोगोंकी तृप्ति नहीं होती है, अपितु फिर-फिर सुननेकी इच्छा बढ़ती जा रही है॥ १ १/२ ॥ तुलाराशिमें स्थित सूर्यमें कार्तिकमासका माहात्म्य, मकरराशिगत सूर्यमें माघमासका माहात्म्य और मेषराशिगत सूर्यमें वैशाखमासका माहात्म्य और इसके साथ उन-उन मासोंके जो भी धर्म हैं, उन्हें आपने भलीभाँति कह दिया; यदि आपके मतमें इनसे भी अधिक महिमामय कोई मास हो तथा भगवत्प्रिय कोई धर्म हो तो उसे आप अवश्य कहिये, जिसे सुनकर कुछ अन्य सुननेकी हमारी इच्छा न हो। वक्ताको श्रद्धालु श्रोताके समक्ष कुछ भी छिपाना नहीं चाहिये॥ २—६ ॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! आप सभी लोग सुनें, मैं आपलोगोंके वाक्यगौरवसे [अत्यन्त] सन्तुष्ट हूँ; आपलोगोंके समक्ष कुछ भी गोपनीय मेरे लिये नहीं है॥ ७॥ दम्भरहित होना, आस्तिकता, शठताका परित्याग, उत्तम भक्ति, सुननेकी इच्छा, विनम्रता, ब्राह्मणोंके प्रति भक्तिपरायणता, सुशीलता, मनकी स्थिरता, पवित्रता, तपस्विता और अनसूया—ये श्रोताके बारह गुण बताये गये हैं। वे सभी आपलोगोंमें विद्यमान हैं, अतः मैं आपलोगोंपर प्रसन्न होकर उस तत्त्वका वर्णन करता हूँ॥ ८-९ १/२ ॥ एक समय प्रतिभाशाली सनत्कुमारने धर्मको जाननेकी इच्छासे परम भक्तिसे युक्त

ईश्वरं परिपप्रच्छ भक्त्या परमया युतः ॥ ११ ॥

सनत्कुमार उवाच

देवदेव महाभाग योगिध्येयपदाम्बुज। व्रतानि बहुशस्त्वत्तः श्रुता धर्माश्च सर्वशः ॥ १२ ॥
तथापि श्रोतुमिच्छैका वर्तते हृदि साम्प्रतम्। द्वादशस्वपि मासेषु मासः श्रेष्ठतमोऽस्ति यः ॥ १३ ॥
तव प्रीतिकरोऽत्यन्तं सिद्धिदः सर्वकर्मणाम्। अन्यमासे कृतं कर्म तदेवास्मिन्कृतं यदि ॥ १४ ॥
स्यादनन्तफलं देव तं मासं वक्तुमर्हसि। तत्रत्यान्सर्वधर्मांश्च लोकानुग्रहकाम्यया ॥ १५ ॥

ईश्वर उवाच

सनत्कुमार वक्ष्यामि सुगोप्यमपि सुव्रत। शुश्रूषुत्वेन भक्त्या च प्रीतोऽस्मि विधिनन्दन ॥ १६ ॥
द्वादशस्वपि मासेषु श्रावणो मेऽतिवल्लभः। श्रवणार्हं यन्माहात्म्यं तेनासौ श्रावणो मतः ॥ १७ ॥
श्रवणर्क्षं पौर्णमास्यां ततोऽपि श्रावणः स्मृतः। यस्य श्रवणमात्रेण सिद्धिदः श्रावणोऽप्यतः ॥ १८ ॥
स्वच्छत्वाच्च नभस्तुल्यो नभा इति ततः स्मृतः। तत्रत्यधर्मगणनां कर्तुं कः शक्नुयाद्भुवि ॥ १९ ॥
सर्वतो यत्फलं वक्तुं चतुरास्योऽभवद्विधिः। द्रष्टुं यत्फलमाहात्म्यं सहस्राक्षोऽभवद् वृषा ॥ २० ॥

होकर विनम्रतापूर्वक ईश्वर (भगवान् शिव)-से पूछा॥ १०-११॥

सनत्कुमार बोले—योगियोंके द्वारा आराधनीय चरणकमलवाले हे देवदेव! हे महाभाग! हमने आपसे अनेक व्रतों तथा बहुत प्रकारके धर्मोंका श्रवण किया, फिर भी हमलोगोंके मनमें सुननेकी एक अभिलाषा है। बारहों मासोंमें जो मास सबसे श्रेष्ठ, आपकी अत्यन्त प्रीति करानेवाला, सभी कर्मोंकी सिद्धि देनेवाला हो और अन्य मासमें किया गया कर्म यदि इस मासमें किया जाय तो वह अनन्त फल प्रदान करानेवाला हो—हे देव! उस मासको बतानेकी कृपा कीजिये; साथ ही लोकानुग्रहकी कामनासे उस मासके सभी धर्मोंका भी वर्णन कीजिये॥ १२—१५॥

ईश्वर बोले—हे सनत्कुमार! मैं अत्यन्त गोपनीय भी आपको बताऊँगा! हे सुव्रत! हे विधिनन्दन! मैं आपकी श्रवणेच्छा तथा भक्तिसे प्रसन्न हूँ॥ १६॥ बारहों मासोंमें श्रावण मुझे अत्यन्त प्रिय है। इसका माहात्म्य सुननेयोग्य है, अतः इसे श्रावण कहा गया है। इस मासमें श्रवण-नक्षत्रयुक्त पूर्णिमा होती है, इस कारणसे भी इसे श्रावण कहा गया है। इसके माहात्म्यके श्रवणमात्रसे यह सिद्धि प्रदान करनेवाला है, इसलिये भी यह श्रावण संज्ञावाला है। निर्मलता-गुणके कारण यह आकाशके सदृश है, इसलिये 'नभा' कहा गया है॥ १७-१८१/२॥

इस श्रावणमासके धर्मोंकी गणना करनेमें इस पृथ्वीलोकमें कौन समर्थ हो सकता है, जिसके फलका सम्पूर्णरूपसे वर्णन करनेके लिये ब्रह्माजी चार मुखवाले हुए, जिसके फलकी महिमाको देखनेके लिये इन्द्र हजार नेत्रोंसे युक्त हुए और

अनन्तो यत्फलं वक्तुं सहस्त्रद्वयजिह्वकः। किं बहूक्तेन कोऽप्येतद् द्रष्टुं वक्तुं च न क्षमः॥ २१॥

एतत्कलामपि मुने लभन्ते नान्यमासकाः। सर्वव्रतमयश्चैषः सर्वधर्ममयस्तथा॥ २२॥

नैकोऽपि वासरो यत्र व्रतशून्यः प्रदृश्यते। प्रायेण तिथयश्चापि व्रतवत्योऽत्र मासि वै॥ २३॥

अत्रोच्यते मया यद्यदर्थवादो न सोऽत्र हि। आर्तैर्जिज्ञासुभिर्भक्तैस्तथार्थार्थिमुमुक्षुभिः॥ २४॥

चतुर्विधैरपि जनैः सेव्यः स्वस्वेष्टकाङ्क्षिभिः।

सनत्कुमार उवाच

भगवन् यत्त्वया प्रोक्तं व्रतशून्यो न वासरः। प्रायेण तिथिरप्यत्र तन्ममाचक्ष्व सत्तम॥ २५॥

कस्यां तिथौ किं व्रतं स्यात्कस्मिन्वारे च किं व्रतम्। तत्र तत्राधिकारी कः किं फलं कीदृशो विधिः॥ २६॥

केन केनापि चाचीर्णमुद्यापनविधिश्च कः। प्रधानं पूजनं कुत्र जागणश्चापि तद्विधिः॥ २७॥

को देवः कुत्र पूज्यः स्यात्सामग्री पूजनस्य का। कस्य व्रतस्य कः कालस्तत्सर्वं कथय प्रभो॥ २८॥

त्वत्प्रियश्च कथं मासः पवित्रः केन हेतुना। मासेऽस्मिन्नवतारः कः श्रेष्ठश्चायं कुतोऽभवत्॥ २९॥

जिसके फलको कहनेके लिये शेषनाग दो हजार जिह्वाओंसे सम्पन्न हुए। अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन; इसके माहात्म्यको देखने और कहनेमें कोई भी समर्थ नहीं है॥ १९—२१॥ हे मुने! अन्य मास इसकी एक कलाको भी नहीं प्राप्त होते हैं। यह सभी व्रतों तथा धर्मोंसे युक्त है। इस महीनेमें एक भी दिन ऐसा नहीं है, जो व्रतसे रहित दिखायी देता हो। इस मासमें प्राय: सभी तिथियाँ व्रतयुक्त हैं॥ २२-२३॥

इसके माहात्म्यके सन्दर्भमें मैंने जो कहा है, वह केवल प्रशंसामात्र नहीं है। आर्तों, जिज्ञासुओं, भक्तों, अर्थकी कामना करनेवाले, मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले और अपने-अपने अभीष्टकी आकांक्षा रखनेवाले चारों प्रकारके लोगों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास-आश्रमवाले)-को इस श्रावणमें व्रतानुष्ठान करना चाहिये॥ २४$^{१}/_{२}$॥

सनत्कुमार बोले—हे भगवन्! हे सत्तम! आपने जो कहा कि इस मासमें सभी दिन एवं तिथियाँ व्रतरहित नहीं हैं; तो आप उन्हें मुझे बतायें॥ २५॥ किस तिथिमें और किस दिनमें कौन-सा व्रत होता है, उस व्रतका अधिकारी कौन है, उस व्रतका फल क्या है, उसकी विधि क्या है, किस-किसने उस व्रतको किया, उसके उद्यापनकी विधि क्या है, प्रधान पूजन कहाँ हो और जागरण करनेकी क्या विधि है, उसका देवता कौन है, उस देवताकी पूजा कहाँ होनी चाहिये, पूजनकी सामग्री क्या-क्या होनी चाहिये और किस व्रतका कौन-सा समय होना चाहिये; हे प्रभो! वह सब [आप मुझे] बतायें॥ २६—२८॥

यह मास आपको प्रिय क्यों है, किस कारण यह पवित्र है, इस मासमें भगवान्‌का कौन-सा अवतार हुआ, यह [सभी

अस्मिन्मासे च के धर्मा अनुष्ठेया वद प्रभो। प्रश्नेऽपि च कियज्ज्ञानं ममाज्ञस्य तवाग्रतः॥ ३०॥

अशेषेण समाचक्ष्व पृष्टादन्यच्च यद्भवेत्। जनानां तारणार्थाय कृपालो कृपया वद॥ ३१॥

रवौ सोमे भौमवारे बुधे सुरगुरौ कवौ। शनैश्चरदिने वापि तत्सर्वं वद मे विभो॥ ३२॥

सर्वेषामादिभूतस्त्वमादिदेवस्ततः स्मृतः। एकस्य विधिबाधाभ्यामन्यबाधाविधी यथा॥ ३३॥

अन्येषामल्पदेवत्वान्महादेवस्ततः स्मृतः। देवत्रयाश्रयेऽश्वत्थे उपर्यास्ते स्थितिस्तव॥ ३४॥

शिवस्त्वं शुभरूपत्वादघौघहरणाद्धरः। तव चैवादिदेवत्वे प्रमाणं शुक्लवर्णकः॥ ३५॥

प्रकृतौ शुक्लवर्णेऽन्ये वर्णाः स्युर्विकृतिं गताः। यतः कर्पूरगौरस्त्वमादिदेवस्ततो ह्यसि॥ ३६॥

गणपत्याधारभूतान्मूलाधाराच्चतुर्दलात्। स्वाधिष्ठानाभिधात्पद्मात्षट्दलाद् ब्रह्मदैवतात्॥ ३७॥

मणिपूराद्दशदलान्मण्डलाद्विष्ण्वधिष्ठितात्। ब्रह्मविष्णूपरिस्थस्त्वं वदतीदं च मुख्यताम्॥ ३८॥

एकस्य तेऽर्चनाद्देव पञ्चायतनपूजनम्। जायतेऽन्यसुरे चैव सम्भवेन्न हि सर्वथा॥ ३९॥

मासोंसे] श्रेष्ठ कैसे हुआ और इस मासमें कौन-कौन धर्म अनुष्ठानके योग्य हैं; हे प्रभो! [यह सब] बतायें। आपके समक्ष मुझ अज्ञानीका प्रश्न करनेमें कितना ज्ञान हो सकता है, अतः आप सम्पूर्ण रूपसे बतायें। हे कृपालो! मेरे पूछनेके अतिरिक्त भी जो शेष रह गया हो, उसे भी लोगोंके उद्धारके लिये आप कृपा करके बतायें॥ २९—३१॥ रविवार, सोमवार, भौमवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार और शनिवारके दिन जो करना चाहिये, हे विभो! वह सब मुझे बताइये॥ ३२॥ आप सबके आदिमें आविर्भूत हुए हैं, अतः आपको आदिदेव कहा गया है। जैसे एककी विधि-बाधासे अन्यकी विधि-बाधा होती है, वैसे ही अन्य देवताओंके अल्प देवत्वके कारण आपको महादेव माना गया है। तीनों देवताओंके निवासस्थान पीपलवृक्षमें सबसे ऊपर आपकी स्थिति है॥ ३३-३४॥

कल्याणरूप होनेके कारण आप शिव हैं और पापसमूहको हरनेके कारण आप हर हैं। आपके आदिदेव होनेमें आपका शुक्ल वर्ण प्रमाण है; क्योंकि प्रकृतिमें शुक्ल वर्ण ही प्रधान है, अन्य वर्ण विकृत हैं। आप कर्पूरके समान गौर वर्णके हैं, अतः आप आदिदेव हैं॥ ३५-३६॥ गणपतिके अधिष्ठानरूप चार दलवाले मूलाधार नामक चक्रसे, ब्रह्माजीके अधिष्ठानरूप छः दलवाले स्वाधिष्ठान नामक चक्रसे और विष्णुके अधिष्ठानरूप दस दलवाले मणिपूर नामक चक्रसे भी ऊपर आपके अधिष्ठित होनेके कारण आप ब्रह्मा तथा विष्णुके ऊपर स्थित हैं—यह आपकी प्रधानताको व्यक्त करता है॥ ३७-३८॥ हे देव! एकमात्र आपकी ही पूजासे पंचायतन पूजा हो जाती है, जो कि दूसरे देवताकी पूजासे किसी भी तरह सम्भव नहीं है॥ ३९॥

स्वयं शिवस्त्वं वामोरौ शक्तिर्गणपतिस्तथा। दक्षिणोरावक्ष्णि सूर्यो हृदये भक्तराड्डरिः॥ ४०॥

अन्नस्य ब्रह्मरूपत्वाद्रसात्मत्वाद्धरेरपि। भोक्तृत्वाच्च तवेशान श्रेष्ठत्वे कस्य संशयः॥ ४१॥

विरक्तत्वं शिक्षयिष्यन्श्मशाने पर्वते स्थितिः। उतामृतत्वस्येशानो मन्त्रलिङ्गेन सूक्तके।

पौरुषे प्रतिपाद्योऽसि इति प्राहुर्महर्षयः॥ ४२॥

जगत्संहारकं हालाहलं केन धृतं गले। महाप्रलयकालाग्निं भाले धर्तुं च कः क्षमः॥ ४३॥

भवान्धकूपपतने हेतुः केन हतः स्मरः। किं वर्ण्यं भागधेयं ते यद्वक्तुं हीदृशो भवान्॥ ४४॥

त्वां स्तोतुं जन्मकोट्यापि वराकोऽहं न च क्षमः। कृत्वा मयि कृपामेव मत्प्रश्नान्वक्तुमर्हसि॥ ४५॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

आप स्वयं शिव हैं। आपकी बायीं जाँघपर शक्तिस्वरूपा दुर्गा, दाहिनी जाँघपर गणपति, आपके नेत्रमें सूर्य तथा हृदयमें भक्तराज भगवान् श्रीहरि विराजमान हैं ॥ ४० ॥ अन्नके ब्रह्मारूप होने तथा रसके विष्णुरूप होने और आपके उसका भोक्ता होनेके कारण हे ईशान! आपके श्रेष्ठत्वमें किसे सन्देह हो सकता है!॥ ४१ ॥ सबको विरक्तिकी शिक्षा देनेहेतु आप श्मशानमें तथा पर्वतपर निवास करते हैं। पुरुषसूक्तमें '**उतामृतत्वस्येशानो०**' इस मन्त्रके द्वारा प्रतिपादनके योग्य हैं—ऐसा महर्षियोंने कहा है॥ ४२ ॥ जगत्का संहार करनेवाले हालाहलको गलेमें किसने धारण किया! महाप्रलयकी कालाग्निको अपने मस्तकपर धारण करनेमें कौन समर्थ था! संसाररूप अन्धकूपमें पतनके हेतु कामदेवको किसने भस्म किया! आप ऐसे हैं कि आपकी महिमाका वर्णन करनेमें कौन समर्थ है!॥ ४३-४४ ॥ एक तुच्छ प्राणी मैं करोड़ों जन्मोंमें भी आपके प्रभावका वर्णन नहीं कर सकता। अतः आप मेरे ऊपर कृपा करके मेरे प्रश्नोंको बतायें॥ ४५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

साधु साधु महाभाग विनीतोऽसि विरिञ्चिज। श्रोता गुणयुतो यस्माच्छ्रद्धालुर्भक्तिभूषितः॥ १ ॥
श्रावणे मासि विनयाद्यत्पृष्टं भवतानघ। अपृष्टमपि ते वक्ष्ये प्रेम्णा परमया मुदा॥ २ ॥
प्रियो भवति चाद्वेष्टा नम्रस्त्वं च तथाविधः। पञ्चमो मस्तकश्छिन्नः प्रोद्धतस्य पितुस्तव॥ ३ ॥
त्वं च तं मत्सरं त्यक्त्वा मां यतः शरणं गतः। अतो वक्ष्यामि ते तात भूत्वा चैकमनाः शृणु॥ ४ ॥
कुर्यान्नक्तव्रतं योगिन् श्रावणे नियतो नरः। रुद्राभिषेकं कुर्वीत मासमात्रं दिने दिने॥ ५ ॥
स्वप्रीतिविषयस्यापि कस्यचित्त्यागमाचरेत्। पुष्पैः फलैश्च धान्यैश्च तुलसीमञ्जरीदलैः॥ ६ ॥
बिल्वपत्रैर्लक्षपूजां शङ्करस्य समाचरेत्। कोटिलिङ्गादि कर्तव्यं ब्राह्मणांश्चैव भोजयेत्॥ ७ ॥
धारणापारणे कुर्यादुपोषणमथापि च। पञ्चामृताभिषेकं च मम प्रीतिकरं परम्॥ ८ ॥
अस्मिन्मासे कृतं यद्यत्तदानन्त्याय कल्पते। भूमिशायी ब्रह्मचारी सत्यवाक्यो भवेन्मुने॥ ९ ॥
न नयेन्मासमेनं तु व्रतवन्ध्यं कदाचन। अनोदनं समश्नीयाद्धविष्यान्नमथापि वा॥ १०॥

दूसरा अध्याय

श्रावणमासके विहित कृत्य

ईश्वर बोले—हे महाभाग! आपने उचित बात कही है। हे ब्रह्मपुत्र! आप विनम्र, गुणी, श्रद्धालु तथा भक्तिसम्पन्न श्रोता हैं ॥ १ ॥ हे अनघ! आपने श्रावणमासके विषयमें विनम्रतापूर्वक जो पूछा है, उसे तथा जो नहीं भी पूछा है—वह सब अत्यन्त हर्ष तथा प्रेमके साथ मैं आपको बताऊँगा ॥ २ ॥ द्वेष न करनेवाला सबका प्रिय होता है और आप उसी प्रकारके विनम्र हैं; क्योंकि मैंने आपके अभिमानी पिता ब्रह्माका पाँचवाँ मस्तक काट दिया था तो भी आप उस द्वेषभावका त्याग करके मेरी शरणको प्राप्त हुए हैं। अत: हे तात! मैं आपको सब कुछ बताऊँगा; आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये ॥ ३-४ ॥ हे योगिन्! मनुष्यको चाहिये कि श्रावणमासमें नियमपूर्वक नक्तव्रत करे और पूरे महीनेभर प्रतिदिन रुद्राभिषेक करे ॥ ५ ॥ अपनी प्रत्येक प्रिय वस्तुका इस मासमें त्याग कर देना चाहिये। पुष्पों, फलों, धान्यों, तुलसीकी मंजरी तथा तुलसीदलों और बिल्वपत्रोंसे शिवजीकी लक्ष पूजा करनी चाहिये, एक करोड़ शिवलिंग बनाना चाहिये और ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। महीनेभर धारण-पारण नामक व्रत अथवा उपवास करना चाहिये। [इस मासमें] मेरे लिये अत्यन्त प्रीतिकर पंचामृताभिषेक करना चाहिये ॥ ६—८ ॥ इस मासमें जो-जो शुभ कर्म किया जाता है, वह अनन्त फल देनेवाला होता है। हे मुने! इस माहमें भूमिपर सोये, ब्रह्मचारी रहे और सत्य वचन बोले। इस मासको बिना व्रतके कभी व्यतीत नहीं करना चाहिये। फलाहार अथवा हविष्यान्न ग्रहण करना चाहिये। पत्तेपर भोजन

पत्रे चैव समश्नीयाच्छाकमात्रं त्यजेद् व्रती। किञ्चिद्व्रती सर्वथा स्याद्भक्तिमान्मुनिसत्तम॥ ११॥

सदाचारो भूमिशायी प्रातःस्नायी जितेन्द्रियः। मत्पूजां प्रत्यहं कुर्यादेकाग्रकृतमानसः॥ १२॥

पुरश्चरणमप्यत्र मन्त्राणां सिद्धिदं परम्। शिवषड्वर्णमन्त्रस्य गायत्र्याश्च जपं चरेत्॥ १३॥

प्रदक्षिणा नमस्कारान् वेदपारायणं तथा। जपः पुरुषसूक्तस्य अधिकं फलदो भवेत्॥ १४॥

ग्रहयज्ञः कोटिहोमो लक्षहोमोऽयुतस्तथा। कृतः फलति सद्योऽत्र वाञ्छितार्थफलप्रदः॥ १५॥

अस्मिन्मासे चैकदिनं यो वन्ध्यं व्रततो नयेत्। स याति नरकं घोरं यावदाभूतसम्प्लवम्॥ १६॥

यथायं मे प्रियो मासस्तथा किञ्चिन्न मे प्रियम्। कामिनः फलदश्चायं निष्कामस्य तु मोक्षदः॥ १७॥

तत्र व्रतानि ये धर्मास्तान्मत्तः शृणु सत्तम। रवौ रविव्रतं सोमे मत्पूजा नक्तभोजनम्॥ १८॥

प्रथमं सोममारभ्य व्रतं स्याद्रोटकाभिधम्। सार्धमासत्रयं तत्स्यात्सर्वकामार्थसिद्धिदम्॥ १९॥

भौमे मङ्गलगौर्याश्च तदह्नोर्बुधजीवयोः। शुक्रे जीवन्तिकायाश्च आञ्जनेयनृसिंहयोः॥ २०॥

करना चाहिये। व्रत करनेवालेको चाहिये कि [इस मासमें] शाकका पूर्ण रूपसे परित्याग कर दे। हे मुनिश्रेष्ठ! [इस मासमें] भक्तियुक्त होकर मनुष्यको किसी न किसी व्रतको अवश्य करना चाहिये॥ ९—११॥

सदाचारपरायण, भूमिपर शयन करनेवाला, प्रातः स्नान करनेवाला और जितेन्द्रिय होकर मनुष्यको एकाग्र किये गये मनसे प्रतिदिन मेरी पूजा करनी चाहिए। इस मासमें किया गया पुरश्चरण निश्चित रूपसे मन्त्रोंकी सिद्धि करनेवाला होता है। [इस मासमें] शिवके षडक्षर मन्त्रका जप अथवा गायत्री मन्त्रका जप करना चाहिये और शिवजीकी प्रदक्षिणा, नमस्कार तथा वेदपारायण करना चाहिये। पुरुषसूक्तका पाठ अधिक फल देनेवाला होता है॥ १२—१४॥ इस मासमें किया गया ग्रहयज्ञ, कोटि होम, लक्ष होम तथा अयुत होम शीघ्र ही फलीभूत होता है और अभीष्ट फल प्रदान करता है॥ १५॥ जो मनुष्य इस मासमें एक भी दिन व्रतहीन व्यतीत करता है, वह महाप्रलयपर्यन्त घोर नरकमें वास करता है॥ १६॥ यह मास मुझको जितना प्रिय है, उतना और कोई भी मास नहीं। यह सकाम व्यक्तिको अभीष्ट फल देनेवाला तथा निष्काम व्यक्तिको मोक्ष प्रदान करनेवाला है॥ १७॥ हे सत्तम! इस मासके जो व्रत तथा धर्म हैं, उन्हें मुझसे सुनिये। रविवारको सूर्यव्रत तथा सोमवारको मेरी पूजा और नक्त भोजन करना चाहिये। श्रावणके प्रथम सोमवारसे आरम्भ करके साढ़े तीन महीनेका 'रोटक' नामक व्रत किया जाता है; वह सभी वांछित फल प्रदान करनेवाला है॥ १८-१९॥ मंगलवारको मंगलगौरीका व्रत, बुध-बृहस्पतिके दिन बुध और बृहस्पतिका व्रत, शुक्रवारको

शनौ व्रतं समादिष्टं तिथिष्वथ मुने शृणु। नभःशुक्लद्वितीयायां व्रतमौदुम्बराभिधम्॥ २१॥
गौरीव्रतं तृतीयायां श्रावणे शुक्लपक्षके। तथा शुक्लचतुर्थ्यां तु दूर्वागणपतिव्रतम्॥ २२॥
विनायकीति तस्याश्च संज्ञा स्यादपरा मुने। नागानां पूजने शस्ता पञ्चमी शुक्लपक्षके॥ २३॥
इमां रौरवकल्पादि जानीहि मुनिसत्तम। सूपौदनव्रतं षष्ठ्यां सप्तम्यां शीतलाव्रतम्॥ २४॥
पवित्रारोपणं देव्या वसौ भूते यथा भवेत्। शुक्लकृष्णनवम्योस्तु नक्तव्रतविधिः स्मृतः॥ २५॥
दशम्यां शुक्लपक्षे तु आशासंज्ञं व्रतं भवेत्। पक्षद्वये विशेषोऽस्मिन्नेकादश्योस्तु कश्चन॥ २६॥
पवित्रारोपणं शुक्लद्वादश्यां तु हरेः स्मृतम्। द्वादश्यां श्रीधरं पूज्य परां गतिमवाप्नुयात्॥ २७॥
उत्सर्जनमुपाकर्म सभादीपस्तथैव च। उपाकर्म सभायां तु रक्षाबन्धस्ततः परम्॥ २८॥
श्रवणाकर्म तत्रैव तथा सर्पबलिः स्मृतः। हयग्रीवस्यावतारः पूर्णिमायां तु सप्तकम्॥ २९॥
नभःकृष्णे तु सङ्कष्टचतुर्थीव्रतमुच्यते। *ज्ञेया मानवकल्पादिः श्रावणे कृष्णपञ्चमी॥ ३०॥*

जीवन्तिका व्रत और शनिवारको हनुमान् तथा नृसिंहका व्रत करना बताया गया है। हे मुने! अब तिथियोंमें किये जानेवाले व्रतोंका श्रवण करें। श्रावणके शुक्ल पक्षकी द्वितीया तिथिको औदुम्बर नामक व्रत होता है। श्रावणके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिको गौरीव्रत होता है। इसी प्रकार शुक्ल पक्षकी चतुर्थी तिथिको दूर्वागणपति नामक व्रत किया जाता है; हे मुने! उसी चतुर्थीका दूसरा नाम विनायकी चतुर्थी भी है। शुक्ल पक्षमें पंचमी तिथि नागोंके पूजनके लिये प्रशस्त होती है॥ २०—२३॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस पंचमीको 'रौरवकल्पादि' नामसे जानिये। षष्ठी तिथिको सूपौदनव्रत और सप्तमी तिथिको शीतलाव्रत होता है॥ २४॥ अष्टमी अथवा चतुर्दशी तिथिको देवीका पवित्रारोपण व्रत होता है। [इस माहके] शुक्ल तथा कृष्ण [पक्ष]-की दोनों नवमी तिथियोंको नक्तव्रत करना बताया गया है। शुक्ल पक्षकी दशमी तिथिको 'आशा' नामक व्रत होता है। इस मासमें दोनों पक्षोंमें दोनों एकादशी तिथियोंको इस व्रतकी कुछ और विशेषता मानी गयी है॥ २५-२६॥ श्रावणमासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिको श्रीविष्णुका पवित्रारोपण व्रत बताया गया है। इस द्वादशी तिथिमें भगवान् श्रीधरकी पूजा करके मनुष्य परम गति प्राप्त करता है। उत्सर्जन, उपाकर्म, सभादीप, सभामें उपाकर्म, इसके बाद रक्षाबन्धन, पुनः श्रवणाकर्म, सर्पबलि और हयग्रीवका अवतार—ये सात कर्म पूर्णमासी तिथिको करनेहेतु बताये गये हैं॥ २७—२९॥ श्रावणमासके कृष्णपक्षमें [चतुर्थी तिथिको] 'संकष्टचतुर्थी' व्रत कहा गया है और श्रावणमासके कृष्ण पक्षकी पंचमी तिथिके दिन 'मानवकल्पादि' नामक व्रतको जानना

पूर्णावतारः कृष्णस्य कृष्णाष्टम्यां द्विजोत्तम। अवतारः समभवद् व्रतं तत्र महोत्सवम्॥ ३१ ॥

इयं मन्वादिरपि च ज्ञातव्या मुनिपुङ्गव। अमायां श्रावणे मासि पिठोराव्रतमुच्यते॥ ३२ ॥

कुशानां ग्रहणं चैव वृषभाणां च पूजनम्। शुक्लाद्यतिथिमारभ्य तत्तत्तिथिषु देवताः॥ ३३ ॥

वह्निर्देवः प्रतिपदि द्वितीया ब्रह्मदेवता। तृतीयायास्तथा गौरी चतुर्थ्यां गणनायकः॥ ३४ ॥

सर्पाधिपा पञ्चमी स्यात्षष्ठी स्यात्स्कन्ददेवता। सप्तम्यां भास्करो देवः शिवदेवाष्टमी तिथिः॥ ३५ ॥

दुर्गाधिपा तु नवमी दशम्यन्तकदेवता। एकादश्यधिपाश्चैव विश्वेदेवाः प्रकीर्तिताः॥ ३६ ॥

द्वादश्याश्च हरिः कामस्त्रयोदश्यधिपो मतः। चतुर्दश्यां शिवश्चैव पौर्णमास्याः शशी पतिः॥ ३७ ॥

अमायाः पितरो देवा एते तिथ्यधिपाः स्मृताः। स देवस्तत्र पूज्यः स्याद्यस्य देवस्य या तिथिः॥ ३८ ॥

अगस्त्यस्योदयो मासे प्रायेणात्रैव जायते। कथयामि च तं कालं शृणुष्वैकमना मुने॥ ३९ ॥

सिंहसङ्क्रान्तिदिवसाद्यदा द्वादश यान्ति च। चत्वारिंशच्च घटिकास्तदागस्योदयो भवेत्॥ ४० ॥

सप्ताहानि ततः पूर्वमगस्त्यार्घ्यं समाचरेत्। *द्वादशेष्वपि मासेषु आदित्यो भिन्नसंज्ञया॥ ४१ ॥*

चाहिये। हे द्विजोत्तम! कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथि*को श्रीकृष्णका पूर्णावतार हुआ; इस दिन उनका अवतार हुआ, अतः महान् उत्सवके साथ इस दिन व्रत करना चाहिये। हे मुनिश्रेष्ठ! इस अष्टमीको मन्वादि तिथि जानना चाहिये॥ ३०-३११/२॥ श्रावणमासकी अमावस्या तिथिको पिठोराव्रत कहा जाता है। इस तिथिमें कुशोंका ग्रहण और वृषभोंका पूजन किया जाता है। इस मासमें शुक्ल पक्षकी प्रतिपदा तिथिसे लेकर सब तिथियोंके पृथक्-पृथक् देवता हैं॥ ३२-३३॥ प्रतिपदा तिथिके देवता अग्नि, द्वितीया तिथिके ब्रह्मा, तृतीयाकी गौरी और चतुर्थीके देवता गणपति हैं। पंचमीके देवता नाग हैं और षष्ठीके देवता कार्तिकेय हैं। सप्तमीके देवता सूर्य और अष्टमी तिथिके देवता शिव हैं॥ ३४-३५॥

नवमीकी देवी दुर्गा, दशमीके देवता यम और एकादशी तिथिके देवता विश्वेदेव कहे गये हैं। द्वादशीके विष्णु तथा त्रयोदशीके देवता कामदेव माने गये हैं। चतुर्दशीके देवता शिव, पूर्णिमाके देवता चन्द्रमा और अमावस्याके देवता पितर हैं; ये तिथियोंके देवता कहे गये हैं, जिस देवताकी जो तिथि हो उस देवताकी उसी तिथिमें पूजा करनी चाहिये॥ ३६—३८॥ प्रायः इसी मासमें 'अगस्त्य' का उदय होता है। हे मुने! मैं उस कालको बता रहा हूँ; आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये॥ ३९॥ सूर्यके सिंहराशिमें प्रवेश करनेके दिनसे जब बारह अंश चालीस घड़ी व्यतीत हो जाती है, तब अगस्त्यका उदय होता है। उसके सात दिन पूर्वसे अगस्त्यको अर्घ्य प्रदान करना चाहिये॥ ४०१/२॥ बारहों मासोंमें सूर्य पृथक्-पृथक् नामोंसे जाने जाते हैं; उनमेंसे श्रावणमासमें

* भारतके पश्चिमी प्रदेशोंमें युगादि तिथिके अनुसार मासका नामकरण होता है, अतः श्रावणकृष्ण अष्टमीको भाद्रकृष्ण अष्टमी समझना चाहिये।

तपते श्रावणे तत्र गभस्तिरितिसंज्ञितः। तत्पूजनं च कर्तव्यं मासेऽस्मिन्भक्तितत्परैः॥ ४२॥

चतुर्षु यानि मासेषु वर्ज्यानि शृणु सत्तम। श्रावणे च त्यजेच्छाकं दधि भाद्रपदे तथा॥ ४३॥

दुग्धमाश्वयुजे मासि कार्तिके द्विदलं त्यजेत्। इत्यादीनि समस्तानि तानि कर्तुमशक्नुवन्॥ ४४॥

एकस्मिन् श्रावणे मासि कुर्वंस्तत्फलभाग्भवेत्। उद्देशोऽयं मया प्रोक्तः संक्षेपात्तव मानद॥ ४५॥

अत्रत्यानां व्रतानां तु धर्माणां मुनिसत्तम। केनापि विस्तरो वक्तुं नालं वर्षशतैरपि॥ ४६॥

मम प्रीत्यै हरेर्वापि कुर्याद् व्रतमशेषतः। आवयोर्नहि भेदोऽस्ति परमार्थविचारतः॥ ४७॥

कल्पयन्त्यत्र ये भेदं ते वै निरयगामिनः। सनत्कुमार तस्मात्त्वं श्रावणे धर्ममाचर॥ ४८॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणव्रतोद्देशकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

सूर्य 'गभस्ति' नामवाला होकर तपता है। इस मासमें मनुष्योंको भक्तिसम्पन्न होकर सूर्यकी पूजा करनी चाहिये॥ ४१-४२॥ हे सत्तम! चार मासोंमें जो वस्तुएँ वर्जित हैं, उन्हें सुनिये। श्रावणमें शाक तथा भाद्रपदमें दहीका त्याग कर देना चाहिये; इसी प्रकार आश्विनमें दूध और कार्तिकमें दालका परित्याग कर देना चाहिये। यदि इन मासोंमें इन वस्तुओंका त्याग नहीं कर सके, तो केवल श्रावणमासमें ही उक्त वस्तुओंका त्याग करनेसे मानव उसी फलको प्राप्त कर लेता है। हे मानद! यह बात मैंने आपसे संक्षेपमें कही है; हे मुनिश्रेष्ठ! इस मासके व्रतों और धर्मोंके विस्तारको सैकड़ों वर्षोंमें भी कोई नहीं कह सकता॥ ४३—४६॥ मेरी अथवा विष्णुकी प्रसन्नताके लिये सम्पूर्ण रूपसे व्रत करना चाहिये। परमार्थकी दृष्टिसे हम दोनोंमें भेद नहीं है। जो लोग भेद करते हैं, वे नरकगामी होते हैं। अत: हे सनत्कुमार! आप श्रावणमासमें धर्मका आचरण कीजिये॥ ४७-४८॥

॥ इस प्रकार ईश्वरसनत्कुमारसंवादके अन्तर्गत 'श्रावणव्रतोद्देशकथन' नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तृतीयोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

भगवन् व्रतसङ्घस्य उद्देशः कथितस्त्वया। तृप्तिर्न जायते स्वामिन् विस्तराद्वक्तुमर्हसि॥ १॥
यच्छ्रुत्वा कृतकृत्योऽहं भविष्यामि सुरेश्वर॥ २॥

ईश्वर उवाच

नक्तव्रतेन योगीश श्रावणं यो नयेत्सुधीः। द्वादशस्वपि मासेषु स नक्तफलभाग्भवेत्॥ ३॥
दिनावसानपूर्वं तु नक्तं स्याद्रात्रिभोजनम्। तत्राद्यास्त्रिघटीस्त्यक्त्वा कालः स्यान्नक्तभोजने॥ ४॥
ततः सन्ध्या त्रिघटिका अस्तादुपरि भास्वतः। चत्वारीमानि कर्माणि सन्ध्यायां परिवर्जयेत्॥ ५॥
आहारं मैथुनं निद्रां स्वाध्यायं च चतुर्थकम्। गृहस्थयतिभेदेन तद्व्यवस्थां च मे शृणु॥ ६॥
आत्मनो द्विगुणी छाया मन्दीभवति भास्करे। यतेर्नक्तं तु तत्प्रोक्तं न नक्तं निशि भोजनम्॥ ७॥
नक्षत्रदर्शनान्नक्तं गृहस्थस्य बुधैः स्मृतम्। यतेर्दिनाष्टमे भागे रात्रौ तस्य निषिध्यते॥ ८॥
नक्तं निशायां कुर्वीत गृहस्थो विधिसंयुतः। यतिश्च विधवा चैव विधुरश्च ससूर्यकम्॥ ९॥
विधुरश्चेत्पुत्रवान् स्यात्स तु रात्रौ समाचरेत्। *अनाश्रमोऽप्याश्रमी स्यादपत्नीकोऽपि पुत्रवान्॥ १०॥*

तीसरा अध्याय

श्रावणमासमें की जानेवाली भगवान् शिवकी लक्षपूजाका वर्णन

सनत्कुमार बोले—हे भगवन्! आपने श्रावणमासके व्रतोंका संक्षिप्त वर्णन किया। हे स्वामिन्! इससे हमारी तृप्ति नहीं हो रही है, अतः आप कृपा करके विस्तारसे वर्णन करें, जिसे सुनकर हे सुरेश्वर! मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा॥ १-२॥

ईश्वर बोले—हे योगीश! जो बुद्धिमान् नक्तव्रतके द्वारा श्रावणमासको व्यतीत करता है, वह बारहों महीनेमें नक्तव्रत करनेके फलका भागी होता है॥ ३॥ नक्तव्रतमें दिनकी समाप्तिके पूर्व (सन्यासियोंके लिये) एवं रात्रिमें गृहस्थोंके लिये भोजनका विधान है। उसमें सूर्यास्तके बादकी तीन घड़ियोंको छोड़कर नक्तभोजनका समय होता है। सूर्यके अस्त होनेके पश्चात् तीन घड़ी सन्ध्या-काल होता है। सन्ध्यावेलामें आहार, मैथुन, निद्रा और चौथा स्वाध्याय—इन चार कर्मोंका त्याग कर देना चाहिये। गृहस्थ और यतिके भेदसे उनकी व्यवस्थाके विषयमें मुझसे सुनिये॥ ४—६॥ सूर्यके मन्द पड़ जानेपर जब अपनी छाया अपने शरीरसे दुगुनी हो जाय, उस समयके भोजनको यतिके लिये नक्तभोजन कहा गया है; रात्रि-भोजन [उनके लिये] नक्तभोजन नहीं होता है॥ ७॥ तारोंके दृष्टिगत होनेपर विद्वानोंने गृहस्थके लिये नक्त कहा है। यतिके लिये दिनके आठवें भागके शेष रहनेपर भोजनका विधान है; उसके लिये रात्रिमें भोजनका निषेध किया गया है॥ ८॥ गृहस्थको चाहिये कि वह विधिपूर्वक रात्रिमें नक्तभोजन करे और यति, विधवा तथा विधुर व्यक्ति सूर्यके रहते नक्तव्रत करें॥ ९॥ विधुर व्यक्ति यदि पुत्रवान् हो तब उसे भी रात्रिमें ही नक्तव्रत करना चाहिये। अनाश्रमी हो अथवा आश्रमी हो अथवा पत्नीरहित हो अथवा पुत्रवान् हो—उन्हें रात्रिमें नक्तव्रत करना चाहिये॥ १०॥

एवं यथाधिकारं तु कुर्यान्नक्तव्रतं सुधीः। अत्र नक्तव्रती मासे परां गतिमवाप्नुयात्॥ ११॥
प्रातःस्नानं करिष्यामि ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः। भोक्ष्यामि नक्तं भूशय्यां करिष्ये प्राणिनां दयाम्॥ १२॥
प्रारब्धेऽस्मिन्व्रते देव यद्यपूर्णे म्रिये ह्यहम्। तदा सम्पूर्णतां यातु प्रसादात्ते जगत्पते॥ १३॥
इति सङ्कल्प्य मेधावी मासे नक्तव्रतं चरेत्। एवं नक्तव्रतं कुर्वन्मम प्रियतमो भवेत्॥ १४॥
विप्रद्वारातिरुद्रेण महारुद्रेण वा स्वयम्। अभिषेकं मासमात्रं रुद्रेण प्रत्यहं चरेत्॥ १५॥
तस्य प्रीणाम्यहं वत्स जलधाराप्रियो यतः। कुर्याद्रुद्रेण वा होमं मम प्रीतिकरं परम्॥ १६॥
स्वस्य यद्रोचतेऽत्यन्तं भोज्यं वा भोग्यमेव वा। सङ्कल्प्य द्विजवर्याय दत्वा मासे स्वयं त्यजेत्॥ १७॥
अतः परं शृणु मुने लक्षपूजाविधिं परम्। श्रीकामो बिल्वपत्रैश्च दूर्वाभिः शान्तिकामुकः॥ १८॥
आयुष्कामेन कर्तव्यं चम्पकैः पूजनं हरेः। विद्याकामेन कर्तव्यं मल्लिकाजातिभिस्तथा॥ १९॥
शिवविष्णवोः प्रसन्नत्वं तुलसीभिः प्रसिध्यति। पुत्रकामेन कर्तव्यं बार्हतैः पूजनं शुभम्॥ २०॥

इस प्रकार बुद्धिमान् मनुष्यको अपने अधिकारके अनुसार नक्तव्रत करना चाहिये। इस मासमें नक्तव्रत करनेवाला व्यक्ति परम गति प्राप्त करता है॥ ११॥ 'मैं प्रातःकाल स्नान करूँगा, ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करूँगा, नक्तभोजन करूँगा, पृथ्वीपर सोऊँगा और प्राणियोंपर दया करूँगा। हे देव! इस व्रतके प्रारम्भ करनेपर यदि मैं मर जाऊँ तो हे जगत्पते! आपकी कृपासे मेरा व्रत पूर्ण हो'—ऐसा संकल्प करके बुद्धिमान् व्यक्तिको श्रावणमासमें प्रतिदिन नक्तव्रत करना चाहिये। इस प्रकार नक्तव्रत करनेवाला मुझे अत्यन्त प्रिय होता है॥ १२—१४॥ ब्राह्मणके द्वारा अथवा स्वयं ही अतिरुद्र, महारुद्र अथवा रुद्रमन्त्रसे महीनेभर प्रतिदिन अभिषेक करना चाहिये। हे वत्स! मैं उस व्यक्तिपर प्रसन्न हो जाता हूँ; क्योंकि मैं जलधारासे अत्यन्त प्रीति रखनेवाला हूँ अथवा रुद्रमन्त्रके द्वारा मेरे लिये अत्यन्त प्रीतिकर होम प्रतिदिन करना चाहिये॥ १५-१६॥ अपने लिये जो भी भोज्य पदार्थ अथवा सुखोपभोगकी वस्तु अतिप्रिय हो; संकल्प करके उन्हें श्रेष्ठ ब्राह्मणको प्रदान करके स्वयं महीनेभर उन पदार्थोंका त्याग करना चाहिये॥ १७॥ हे मुने! अब इसके बाद उत्तम लक्षपूजाविधिको सुनिये। लक्ष्मी चाहनेवाले अथवा शान्तिकी इच्छावाले मनुष्यको लक्ष विल्वपत्रों या लक्ष दूर्वादलोंसे शिवकी पूजा करनी चाहिये। आयुकी कामना करनेवालेको चम्पाके लक्ष पुष्पों तथा विद्या चाहनेवाले व्यक्तिको मल्लिका या चमेलीके लक्ष पुष्पोंसे श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये॥ १८-१९॥ शिव तथा विष्णुकी प्रसन्नता तुलसीके दलोंसे सिद्ध होती है। पुत्रकी कामना करनेवालेको कटेरीके दलोंसे शिव तथा विष्णुका पूजन करना चाहिये॥ २०॥

दुःस्वप्नप्रशमार्थाय शस्तं धान्यप्रपूजनम्। रङ्गवल्ल्यादिभिर्देवं देवस्याग्रे विनिर्मितैः॥ २१॥
पद्माादिभिः स्वस्तिकाद्यैश्चक्राद्यैः पूजयेद्विभुम्। एवं हि सर्वपुष्पैश्च सर्वकामार्थसिद्धये॥ २२॥
लक्षपूजां प्रकुर्याच्चेत्सुप्रसन्नो हरो भवेत्। उद्यापनं ततः कार्यं मण्डपं चैव साधयेत्॥ २३॥
वेदिका च प्रकर्तव्या मण्डपस्य त्रिभागतः। पुण्याहवाचनं कृत्वा आचार्यं वरयेत्ततः॥ २४॥
गीतवादित्रनिर्घोषैर्ब्रह्मघोषेण भूयसा। प्रविश्य मण्डपे तस्मिन् रात्रौ जागरणं चरेत्॥ २५॥
वेदिकायां प्रकर्तव्यं लिङ्गतोभद्रमुत्तमम्। तन्मध्ये तण्डुलैः कुर्यात्कैलासं च सुशोभनम्॥ २६॥
कलशं स्थापयेत्तत्र ताम्रं चैव महाप्रभम्। पञ्चपल्लवसंयुक्तं न्यसेद् वस्त्रं सुसूक्ष्मकम्॥ २७॥
सौवर्णीं प्रतिमां तत्र स्थापयेत्पार्वतीपतेः। पूजां तत्र प्रकुर्वीत पञ्चामृतपुरःसरैः॥ २८॥
धूपैर्दीपैः सनैवेद्यैर्गीतवादित्रनृत्यकैः। वेदशास्त्रपुराणैश्च रात्रौ जागरणं चरेत्॥ २९॥
ततः प्रभातसमये सुस्नातः सुशुचिर्भवेत्। स्थण्डिलं कारयेत्तत्र स्वशाखोक्तविधानतः॥ ३०॥
होमं च सतिलाज्येन पायसेन च कारयेत्। मूलमन्त्रेण गायत्र्या शिवनाम्नां सहस्रकैः॥ ३१॥
येन मन्त्रेण पूजा तु कृता तेनैव होमयेत्। शर्कराघृतमिश्रेण चरुणा जुहुयात्ततः॥ ३२॥
ततः स्विष्टकृतं हुत्वा पूर्णाहुतिमनन्तरम्। आचार्यं पूजयेत्सम्यग्वस्त्रालङ्कारभूषणैः॥ ३३॥

बुरे स्वप्नकी शान्तिके लिये धान्यसे पूजन करना प्रशस्त होता है। देवके समक्ष निर्मित किये गये रंगवल्ली आदिसे विभिन्न रंगोंसे रचित पद्म, स्वस्तिक और चक्र आदिसे प्रभुकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार सभी मनोरथोंकी सिद्धिके लिये सभी प्रकारके पुष्पोंसे यदि मनुष्य लक्षपूजा करे, तो शिवजी प्रसन्न होंगे॥ २१-२२१/२ ॥ तत्पश्चात् उद्यापन करना चाहिये। मण्डप-निर्माण करना चाहिये और मण्डपके त्रिभाग परिमाणमें वेदिका बनानी चाहिये। तदनन्तर पुण्याहवाचन करके आचार्यका वरण करना चाहिये और उस मण्डपमें प्रविष्ट होकर गीत तथा वाद्यके शब्दों और तीव्र वेदध्वनिसे रात्रिमें जागरण करना चाहिये॥ २३—२५॥ वेदिकाके ऊपर उत्तम लिंगतोभद्र बनाना चाहिये और उसके बीचमें चावलोंसे सुन्दर कैलासका निर्माण करना चाहिये। उसके ऊपर ताँबेका अत्यन्त चमकीला तथा पंचपल्लवयुक्त कलश स्थापित करना चाहिये और उसे रेशमी वस्त्रसे वेष्टित कर देना चाहिये। उसके ऊपर पार्वतीपति शिवकी सुवर्णमय प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये। तत्पश्चात् पंचामृतपूर्वक धूप, दीप तथा नैवेद्यसे उस प्रतिमाकी पूजा करनी चाहिये और गीत, वाद्य, नृत्य एवं वेद, शास्त्र तथा पुराणोंके पाठके द्वारा रात्रिमें जागरण करना चाहिये॥ २६—२९॥ इसके बाद प्रातःकाल भलीभाँति स्नान करके पवित्र हो जाना चाहिये और अपनी शाखामें निर्दिष्ट विधानके अनुसार वेदीका निर्माण करना चाहिये। तत्पश्चात् मूलमन्त्रसे या गायत्रीमन्त्रसे या शिवके सहस्रनामोंके द्वारा तिल तथा घृतमिश्रित खीरसे होम कराना चाहिये अथवा जिस मन्त्रसे पूजा की गयी है, उसीसे होम करना चाहिये। तदनन्तर शर्करा और घृतसे मिश्रित चरुसे आहुति डालनी चाहिये॥ ३०—३२॥ तदनन्तर स्विष्टकृत् होम करके पूर्णाहुति डालनी चाहिये। इसके बाद वस्त्र, अलंकार तथा भूषणोंसे भलीभाँति आचार्यका पूजन करना चाहिये॥ ३३॥

ब्राह्मणान्पूजयेत्पश्चात्तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम्। येन येन प्रकुर्याच्च लक्षपूजामुमापतेः॥ ३४॥
तत्तद्दद्यात्सुवर्णेन कृत्वा शम्भुं प्रपूजयेत्। यदि दीपः कृतस्तेन तद्दानं चैव कारयेत्॥ ३५॥
सुवर्णवर्तिकां कृत्वा दीपमात्रं च रौप्यकम्। गोघृतेन समायुक्तं सर्वकामार्थसिद्धये॥ ३६॥
क्षमापयेत्ततो देवं ब्राह्मणान्भोजयेच्छतम्। एवं यः कुरुते पूजां तस्य प्रीणाम्यहं मुने॥ ३७॥
तत्रापि श्रावणे कुर्यात्तदानन्त्याय कल्पते। स्वप्रीतिविषयः कश्चित्पदार्थस्त्यज्यते यदि॥ ३८॥
मदर्पणधिया चात्र मासि तस्य फलं शृणु। इहामुत्र च तत्प्राप्तिर्भवेल्लक्षगुणाधिका॥ ३९॥
सकामत्वे तु चैवं स्यान्निष्कामत्वे परा गतिः। रुद्राभिषेकं कुर्वाणस्तत्रत्याक्षरसङ्ख्यया॥ ४०॥
प्रत्यक्षरं कोटिवर्षं रुद्रलोके महीयते। पञ्चामृतस्याभिषेकादमृतत्वं समश्नुते॥ ४१॥
तस्मिन्मासे भूमिशायी फलं तस्यापि मे शृणु। प्रवालनिर्मितां श्रेष्ठां गजदन्तभवामपि॥ ४२॥
पाटीरनिर्मितां चापि खचितां नवरत्नकैः। निःसीममृदुपक्षीन्द्रविशेषां द्विजसत्तम॥ ४३॥
वरवस्त्रेण सञ्छन्नां तूलिकां चात्र शोभनाम्। दशोपबर्हणैर्युक्तां शय्यां स लभते शुभाम्॥ ४४॥
रम्याङ्गनासमायुक्तां रत्नदीपविभूषिताम्। ब्रह्मचर्येण चाप्यत्र वीर्यपुष्टिर्भवेद् दृढा॥ ४५॥

तत्पश्चात् अन्य ब्राह्मणोंका पूजन करना चाहिये और उन्हें दक्षिणा देनी चाहिये। जिस-जिस वस्तुसे उमापति शिवकी लक्षपूजा की हो उसका दान करना चाहिये। स्वर्णमयी मूर्ति बनाकर शिवकी पूजा करनी चाहिये। यदि दीपकर्म किया हो तो उस दीपकका दान करना चाहिये। चाँदीका दीपक और स्वर्णकी वर्तिका (बत्ती) बनाकर उसे गोघृतसे भरकर सभी कामनाओं और अर्थकी सिद्धिके लिये उसका दान करना चाहिये। इसके बाद प्रभुसे क्षमा-प्रार्थना करनी चाहिये और अन्तमें एक सौ ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये॥ ३४—३६१/२ ॥ हे मुने! जो व्यक्ति इस प्रकार पूजा करता है, मैं उसपर प्रसन्न होता हूँ। उसमें भी जो श्रावणमासमें पूजा करता है, उसका तो अनन्त फल होता है। यदि अपने लिये अत्यन्त प्रिय कोई वस्तु मुझे अर्पण करनेके विचारसे इस मासमें कोई त्यागता है, तो अब उसका फल सुनिये। इस लोकमें तथा परलोकमें उसकी प्राप्ति लाखगुना अधिक होती है। सकाम करनेसे अभिलषित सिद्धि होती है और निष्काम करनेसे परम गति मिलती है॥ ३७—३९१/२ ॥ इस मासमें रुद्राभिषेक करनेवाला मनुष्य उसके पाठकी अक्षर-संख्यासे एक-एक अक्षरके लिये करोड़-करोड़ वर्षोंतक रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। पंचामृतका अभिषेक करनेसे मनुष्य अमरत्व प्राप्त करता है॥ ४०-४१ ॥ इस मासमें जो मनुष्य भूमिपर शयन करता है, उसका भी फल मुझसे सुनिये। हे द्विजश्रेष्ठ! वह मनुष्य नौ प्रकारके रत्नोंसे जड़ी हुई, सुन्दर वस्त्रसे आच्छादित, बिछे हुए कोमल गद्देसे सुशोभित, दश तकियोंसे युक्त, रम्य स्त्रियोंसे विभूषित, रत्ननिर्मित दीपोंसे मण्डित तथा अत्यन्त मृदु और गरुड़ाकार प्रवालमणिनिर्मित अथवा हाथीदाँतकी बनी हुई अथवा चन्दनकी बनी हुई उत्तम तथा शुभ शय्या प्राप्त करता है॥ ४२—४४१/२ ॥ इस मासमें ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे वीर्यकी दृढ़ पुष्टि होती है।

ओजो बलं देहदार्ढ्यं यद्धर्मस्योपकारकम्। प्रत्यक्षैव भवेत्तस्य ब्रह्मप्राप्तिर्न संशयः॥ ४६॥

निष्कामस्य सकामस्य स्वर्गं देवाङ्गना शुभा। अत्र मौनव्रतधरो महान्वक्ता प्रजायते॥ ४७॥

अहोरात्रं दिने वापि भुक्तिकालेऽथवा पुनः। घण्टायाः पुस्तकस्यापि व्रतान्ते दानमाचरेत्॥ ४८॥

सर्वशास्त्रप्रवीणः स्याद्वेदवेदाङ्गपारगः। वाचस्पतिसमो बुद्धौ मौनमाहात्म्यतो भवेत्॥ ४९॥

मौनिनः कलहो नास्ति तस्मान्मौनव्रतं परम्॥ ५०॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये नक्तव्रतलक्षपूजा-भूमिशयनमौनादिव्रतकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

ओज, बल, शरीरकी दृढ़ता और जो भी धर्मके विषयमें उपकारक होते हैं—वह सब उसे प्राप्त हो जाता है। निष्काम ब्रह्मचर्यव्रतीको साक्षात् ब्रह्मप्राप्ति होती है और सकामको स्वर्ग तथा सुन्दर देवांगनाओंकी प्राप्ति होती है॥ ४५-४६१/२ ॥

इस मासमें दिन-रात अथवा केवल दिनमें अथवा भोजनके समय मौनव्रत धारण करनेवाला भी महान् वक्ता हो जाता है। व्रतके अन्तमें घण्टा और पुस्तकका दान करना चाहिये। मौनव्रतके माहात्म्यसे मनुष्य सभी शास्त्रोंमें कुशल तथा वेद-वेदांगमें पारंगत हो जाता है और वह बुद्धिमें बृहस्पतिके समान हो जाता है। मौन धारण करनेवालेका किसीसे कलह नहीं होता, अतः मौनव्रत अत्यन्त उत्कृष्ट है॥ ४७—५० ॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'नक्तव्रतलक्षपूजा-भूमिशयनमौनादिव्रतकथन' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

सनत्कुमार वक्ष्यामि धारणापारणाव्रतम्। पुण्याहं वाचयेत्पूर्वमारभ्य प्रतिपद्दिनम्॥ १॥
सङ्कल्पयेन्मम प्रीत्यै धारणापारणाव्रतम्। एकस्मिन्धारणं कुर्यात्पारणं च तथापरे॥ २॥
उपवासो धारणे स्यात्पारणे भोजनं भवेत्। समाप्ते मासि चैवात्र कुर्यादुद्यापनं व्रती॥ ३॥
समाप्ते श्रावणे मासि पुण्याहं कारयेत्पुरा। आचार्यं वरयेत्पश्चाद् ब्राह्मणांश्चैव मानद॥ ४॥
पार्वतीशङ्करस्यापि प्रतिमां स्वर्णनिर्मिताम्। पूर्णकुम्भे तु संस्थाप्य पूजयेन्निशि भक्तितः॥ ५॥
रात्रौ जागरणं कुर्यात्पुराणश्रवणादिभिः। प्रातरग्निं समाधाय होमं कुर्याद्यथाविधि॥ ६॥
त्र्यम्बकेणेति मन्त्रेण जुहुयाच्च तिलौदनम्। तथैव शिवगायत्र्या जुहुयाच्च घृतौदनम्॥ ७॥
षडक्षरेण मन्त्रेण पायसं जुहुयात्ततः। पूर्णाहुतिं ततो हुत्वा होमशेषं समापयेत्॥ ८॥
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चादाचार्यं चैव पूजयेत्। *एवं कृत्वा महाभाग ब्रह्महत्यादिपातकैः॥ ९॥*

चौथा अध्याय

धारणा-पारणा, मासोपवासव्रत और रुद्रवर्तिव्रतवर्णनमें सुगन्धाका आख्यान

ईश्वर बोले—हे सनत्कुमार! अब मैं धारण-पारण व्रतका वर्णन करूँगा। प्रतिपदाके दिनसे आरम्भ करके सर्वप्रथम पुण्याहवाचन कराना चाहिये, इसके बाद मेरी प्रसन्नताके लिये धारण-पारणव्रतका संकल्प करना चाहिये। एक दिन धारणव्रत करे और दूसरे दिन पारणव्रत करे। धारणमें उपवास और पारणमें भोजन होता है। मासके समाप्त होनेपर व्रतीको इसका उद्यापन भी करना चाहिये॥ १—३॥ [उद्यापनके लिये] श्रावणमासके समाप्त होनेपर सबसे पहले पुण्याहवाचन कराना चाहिये। इसके बाद हे मानद! आचार्य तथा अन्य ब्राह्मणोंका वरण करना चाहिये। तत्पश्चात् पार्वती तथा शिवकी स्वर्णनिर्मित प्रतिमाको जलसे भरे हुए कुम्भपर स्थापित कर रातमें भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये और पुराण-श्रवण आदिके साथ रातभर जागरण करना चाहिये॥ ४-५१/२॥ प्रातःकाल अग्निस्थापन करके विधिपूर्वक होम करना चाहिये। **'त्र्यम्बक०'**—इस मन्त्रसे तिलमिश्रित भातकी आहुति डालनी चाहिये। उसी प्रकार शिवगायत्री मन्त्रसे घृतमिश्रित भातकी आहुति डाले और पुनः षडक्षर मन्त्रसे खीरकी आहुति प्रदान करे। तदनन्तर पूर्णाहुति देकर होमशेषका समापन करना चाहिये और बादमें ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये तथा आचार्यकी पूजा करनी चाहिये। हे

मुच्यते नात्र सन्देहस्तस्मात्कुर्यान्महाव्रतम्। शृणु मासोपवासस्य श्रावणे विधिमादरात्॥ १० ॥
सङ्कल्पयेत्तु प्रतिपद्दिने प्रातर्व्रतं मुने। नारी वा पुरुषो वापि संयतात्मा जितेन्द्रियः॥ ११ ॥
ततोऽर्चयेदमायां तु शङ्करं लोकशङ्करम्। सम्पूजयेत् षोडशभिरुपचारैर्वृषध्वजम्॥ १२ ॥
ब्राह्मणान्पूजयेच्चैव वस्त्रालङ्करणादिभिः। भोजयेच्च यथाशक्त्या प्रणिपत्य विसर्जयेत्॥ १३ ॥
एवं मासोपवासस्तु मम प्रीतिकरो भवेत्। रुद्रवर्तिविधानं च सम्मितं लक्षसङ्ख्यया॥ १४ ॥
शृणुष्वावहितो भूत्वा सर्वसिद्धिकरं नृणाम्। कार्पासतन्तुभिः कार्या एकादशभिरादरात्॥ १५ ॥
वर्तयस्ता रुद्रवर्तिसंज्ञाः प्रीतिकरा मम। श्रावणस्याद्यदिवसे सङ्कल्प्य विधिपूर्वकम्॥ १६ ॥
देवदेवं महादेवं लक्षवर्तिभिरादरात्। नीराजयामि गौरीशं श्रावणे मासि भक्तितः॥ १७ ॥
पूजयित्वा प्रतिदिनं वर्तीनां तु सहस्त्रशः। नीराजयेदन्त्यदिने सहस्त्राण्येकसप्ततिः॥ १८ ॥
अथवा प्रत्यहं दद्यात्सहस्त्रत्रयमादृतः। चरमे तु दिने दद्यात्सहस्त्राणि त्रयोदश॥ १९ ॥

महाभाग! इस प्रकारसे उद्यापन सम्पन्न करके मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पातकोंसे मुक्त हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है। अतएव इस महाव्रतको [अवश्य] करना चाहिये॥ ६—९$^{१}/_{२}$॥

हे मुने! अब श्रावणमें मासोपवासकी विधिको आदरपूर्वक सुनिये। प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल इस व्रतका संकल्प करे। स्त्री हो या पुरुष मन तथा इन्द्रियोंको नियन्त्रित करके इस व्रतको करे। अमावस्या तिथिको लोकका कल्याण करनेवाले वृषध्वज शंकरकी अर्चना-पूजा षोडश उपचारोंसे करे, तदनन्तर अपनी सामर्थ्यके अनुसार वस्त्र तथा अलंकार आदिसे ब्राह्मणोंका पूजन करे, उन्हें भोजन कराये तथा प्रणाम करके विदा करे। इस प्रकारसे किया गया मासोपवास व्रत मेरी प्रसन्नता करानेवाला होता है॥ १०—१३$^{१}/_{२}$॥ [हे सनत्कुमार!] मनुष्योंको सभी सिद्धियाँ प्रदान करनेवाले लक्षसंख्यापरिमित रुद्रवर्ती व्रतके विधानको सावधान होकर सुनिये। अत्यन्त आदरपूर्वक कपासके ग्यारह तन्तुओंसे बत्तियाँ बनानी चाहिये; वे रुद्रवर्ती नामवाली बत्तियाँ मुझे प्रसन्न करनेवाली हैं॥ १४-१५$^{१}/_{२}$॥ 'मैं श्रावणमासमें भक्तिपूर्वक देवोंके देव गौरीपति महादेवका इन एक लक्ष संख्यावाली बत्तियोंसे नीराजन करूँगा'—इस प्रकार श्रावणमासके प्रथम दिन विधिपूर्वक संकल्प करके महीनेभर प्रतिदिन शिवजीका पूजनकर एक हजार बत्तियोंसे नीराजन करे और अन्तिम दिन इकहत्तर हजार बत्तियोंसे नीराजन करे अथवा प्रतिदिन तीन हजार बत्तियाँ आदरपूर्वक अर्पण करे और अन्तिम दिन तेरह हजार बत्तियाँ समर्पित करे

एकस्मिन्वा दिने रुद्रवर्तिलक्षं प्रदीपयेत्। सुघृतेनापि बहुना स्निग्धास्ता मम वल्लभाः ॥ २० ॥
पूजयित्वा तु विश्वेशं शृणुयाच्च कथां ततः ॥ २१ ॥

सनत्कुमार उवाच

देवदेव जगन्नाथ जगदानन्दकारक। व्रतस्यास्य प्रभावं मे कृपां कृत्वा वद प्रभो।
केन चीर्णं व्रतमिदं विधिरुद्यापने कथम्॥ २२ ॥

ईश्वर उवाच

शृणु वैधात्र यत्नेन व्रतानामुत्तमं व्रतम्। रुद्रवर्त्या महापुण्यं सर्वोपद्रवनाशनम्॥ २३ ॥
प्रीतिसौभाग्यजननं पुत्रपौत्रसमृद्धिदम्। शङ्करप्रीतिजननं शिवलोकं परं पदम्॥ २४॥
रुद्रवर्तिसमं नास्ति त्रिषु लोकेषु सुव्रतम्। अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्॥ २५ ॥
क्षिप्रानद्यास्तटे रम्ये पुरी उज्जयिनी शुभा। तस्यामासीत्सुगन्धाख्या वारस्त्री ह्यतिसुन्दरा॥ २६ ॥
तया शुल्कं कृतं स्वीये सुरते तु सुदुःसहम्। सुवर्णानां शतं लोके प्रतिज्ञां कृतवत्यथ॥ २७॥
युवानश्च तया विप्रा भ्रंशिताश्च सुगन्धया। राजानो राजपुत्राश्च नग्नीकृत्य पुनः पुनः॥ २८॥
तेषां भूषां गृहीत्वा तु धिक्कृतास्तु सुगन्धया। एवं हि बहवो लोका लुण्ठितास्ते सुगन्धया॥ २९॥

अथवा एक ही दिन सभी एक लाख बत्तियोंको मेरे समक्ष जलाये। प्रचुर मात्रामें घृतमें भिगोयी जो स्निग्ध बत्तियाँ होती हैं, वे मुझे प्रिय हैं। तत्पश्चात् मुझ विश्वेश्वरका पूजन करके कथा-श्रवण करे॥ १६—२१॥

सनत्कुमार बोले—हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे जगदानन्दकारक! कृपा करके आप मुझे इस व्रतका प्रभाव बतायें। हे प्रभो! इस व्रतको [सर्वप्रथम] किसने किया और इसके उद्यापनमें क्या विधि होती है?॥ २२॥

ईश्वर बोले—हे ब्रह्मपुत्र! व्रतोंमें उत्तम इस रुद्रवर्तिव्रतके विषयमें सावधान होकर सुनिये। यह व्रत महा-पुण्यप्रद, सभी उपद्रवोंका नाश करनेवाला, प्रीति तथा सौभाग्य देनेवाला, पुत्र-पौत्र-समृद्धि प्रदान करनेवाला, [व्रत करनेवालेके प्रति] शंकरजीकी प्रीति उत्पन्न करनेवाला और परम पद शिवलोकको देनेवाला है॥ २३-२४॥ तीनों लोकोंमें इस रुद्रवर्तिके समान कोई उत्तम व्रत नहीं है। इस सम्बन्धमें लोग यह प्राचीन दृष्टान्त देते हैं—क्षिप्रा नदीके रम्य तटपर उज्जयिनी नामक एक सुन्दर नगरी थी। उस नगरीमें सुगन्धा नामक एक परम सुन्दरी वारांगना थी॥ २५-२६॥ उसने अपने साथ संसर्गके लिये अत्यन्त दुःसह शुल्क निश्चित किया था। एक सौ स्वर्णमुद्रा देकर संसर्ग करनेकी शर्त उसने रखी थी। उस सुगन्धाने युवकों तथा ब्राह्मणोंको भ्रष्ट कर दिया था। उसने राजाओं तथा राजकुमारोंको नग्न करके उनके भूषण आदि लेकर उनका बहुत तिरस्कार किया था। इस प्रकार उस सुगन्धाने बहुत लोगोंको लूटा था॥ २६—२९॥

तस्यास्तु देहगन्धेन कोशमात्रं सुगन्धितम्। रूपलावण्यकान्तीनां सा प्रतिष्ठा धरातले॥ ३०॥
षट्त्रिंशद्रागभार्याणां षड्रागाणां च गायने। तत्सन्तत्या अनन्तायाः कुशला गानकर्मणि॥ ३१॥
नृत्ये रम्भादिकाः सर्वास्तर्जयन्ती सुराङ्गनाः। गत्या गजांश्च हंसांश्च विहसन्ती पदे पदे॥ ३२॥
कामबाणान्प्रेरयन्ती कटाक्षैर्भ्रूकृतैश्च तैः। कदाचित्सा गता क्षिप्रां कौतुकाविष्टमानसा॥ ३३॥
ददर्श सा मनोरम्यामृषिभिः परिसेविताम्। केचिद् ध्यानपरा विप्राः केचिज्जपपरायणाः॥ ३४॥
रताः शिवार्चने केचिद्विष्णोः केचित्प्रपूजने। तेषां मध्ये वसिष्ठो हि तया दृष्टो महामुने॥ ३५॥
तस्या धर्मेऽभवद् बुद्धिस्तद्दर्शनमहत्त्वतः। विगताशा जीवनेऽपि विषयेषु विशेषतः॥ ३६॥
विनम्रकन्धरा भूत्वा प्रणिपत्य पुनः पुनः। स्वकर्मपरिहाराय पप्रच्छ मुनिपुङ्गवम्॥ ३७॥

सुगन्धोवाच

अनाथनाथ विप्रेन्द्र सर्वविद्याविशारद। मया कृतानि योगीश पापानि सुबहून्यपि।
तत्सर्वपापनाशाय उपायं ब्रूहि मे प्रभो॥ ३८॥

ईश्वर उवाच

एवमुक्तस्तया विप्रो वसिष्ठो मुनिरादरात्। तस्याः कर्म प्रविज्ञाय सोऽब्रवीद्दीनवत्सलः॥ ३९॥

उसके शरीरकी सुगन्धसे कोसभरका स्थान सुगन्धित रहता था। वह पृथ्वीतलपर रूप-लावण्य और कान्तिकी मानो निवासस्थली थी। वह छः रागों और छत्तीस रागिनियोंके गायनमें तथा उनके अन्य बहुतसे भेदोंकी भी गानक्रियामें अत्यन्त कुशल थी। वह नृत्यमें रम्भा आदि देवांगनाओंको भी तिरस्कृत कर देती थी और अपने एक-एक पगपर अपनी गतिसे हाथियों तथा हंसोंका उपहास करती थी॥ ३०—३२॥ किसी दिन वह सुगन्धा कटाक्षों तथा भौंहचालनके द्वारा कामबाणोंको छोड़ती हुई क्रीडा करनेके विचारसे क्षिप्रा नदीके तटपर गयी। उसने ऋषियोंके द्वारा सेवित मनोरम नदीको देखा। वहाँ कई विप्र ध्यानमें लगे हुए थे तथा कई जपमें लीन थे। कई शिवार्चनमें रत थे तथा कई विष्णुके पूजनमें तल्लीन थे। हे महामुने! उसने उन ऋषियोंके बीच विराजमान मुनि वसिष्ठको देखा॥ ३३—३५॥

उनके दर्शनके प्रभावसे उसकी बुद्धि धर्ममें प्रवृत्त हो गयी। जीवन तथा विशेष रूपसे विषयोंसे उसकी विरक्ति हो गयी। वह अपना सिर झुकाकर बार-बार मुनिको प्रणाम करके अपने पापोंकी निवृत्तिके लिये मुनिश्रेष्ठ [वसिष्ठजी]-से कहने लगी॥ ३६-३७॥

सुगन्धा बोली—हे अनाथनाथ! हे विप्रेन्द्र! हे सर्वविद्याविशारद! हे योगीश! मैंने बहुत-से पाप किये हैं, अतः हे प्रभो! उन समस्त पापोंके नाशके लिये मुझे उपाय बताइये॥ ३८॥

ईश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] उस सुगन्धाके इस प्रकार कहनेपर वे दीनवत्सल मुनि वसिष्ठ [अपनी ज्ञानदृष्टिसे]

वसिष्ठ उवाच

शृणुष्वावहिता भूत्वा तव पापस्य संक्षयः। येन जायेत पुण्येन तत्सर्वं कथयामि ते॥ ४०॥
गच्छ वाराणसीं भद्रे त्रिषु लोकेषु विश्रुताम्। गत्वा कुरुष्व तत्क्षेत्रे व्रतं त्रैलोक्यदुर्लभम्॥ ४१॥
रुद्रवर्त्या महापुण्यं शिवप्रीतिकरं परम्। कृत्वा व्रतमिदं भद्रे प्राप्स्यसि त्वं परां गतिम्॥ ४२॥

ईश्वर उवाच

ततः सा कोशमादाय भृत्यं चैव समित्रकम्। गत्वा काशीं व्रतं चक्रे वसिष्ठोक्तविधानतः॥ ४३॥
ततः सा सशरीरेण तस्मिन् लिङ्गे लयं ययौ॥ ४४॥
एवं या कुरुते नारी व्रतमेतत्सुदुर्लभम्। यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोत्यसंशयः॥ ४५॥
माहात्म्यं शृणु माणिक्यवर्तीनामपि सुव्रत। व्रतेन तासां विप्रेन्द्र मदर्धासनभागिनी॥ ४६॥
जायते मत्प्रिया सा हि यावदाभूतसम्प्लवम्। उद्यापनमथो वक्ष्ये व्रतसम्पूर्णहेतवे॥ ४७॥
कलशे स्थापयेद्देवमुमया सहितं शिवम्। सुवर्णनिर्मितं देवं वृषभे रौप्यनिर्मिते॥ ४८॥
विधिना पूजनं कृत्वा रात्रौ जागरणं चरेत्। ततः प्रभाते विमले स्नात्वा नद्यां विधानतः॥ ४९॥

उसके कर्मको जानकर आदरपूर्वक कहने लगे॥ ३९॥

वसिष्ठ बोले—तुम सावधान होकर सुनो! जिस पुण्यसे तुम्हारे पापका पूर्ण रूपसे नाश हो जायगा, वह सब मैं तुमसे अब कह रहा हूँ॥ ४०॥ हे भद्रे! तीनों लोकोंमें विख्यात वाराणसीमें जाओ; वहाँ जाकर तीनों लोकोंमें दुर्लभ, महान् पुण्य देनेवाले तथा शिवके लिये अत्यन्त प्रीतिकर रुद्रवर्ती नामक व्रतको उस क्षेत्रमें करो। हे भद्रे! इस व्रतको करके तुम परमगति प्राप्त करोगी॥ ४१-४२॥

ईश्वर बोले—तब उसने अपना धन लेकर सेवक तथा मित्रसहित काशीमें जाकर वसिष्ठके द्वारा बताये गये विधानके अनुसार व्रत किया। इस प्रकार [उस व्रतके प्रभावसे] वह सशरीर उस शिवलिंगमें विलीन हो गयी॥ ४३-४४॥ [हे सनत्कुमार!] इस प्रकार जो स्त्री इस परम दुर्लभ व्रतको करती है, वह जिस-जिस अभीष्ट पदार्थकी इच्छा करती है, उसे निःसन्देह प्राप्त करती है॥ ४५॥

हे सुव्रत! अब आप माणिक्यवर्तियोंका माहात्म्य सुनिये! हे विप्रेन्द्र! उन [माणिक्यवर्तियों]-के व्रतसे स्त्री मेरे अर्ध आसनकी अधिकारिणी हो जाती है और महाप्रलयपर्यन्त वह मेरे लिये प्रिय रहती है। अब मैं इस व्रतकी सम्पूर्णताके लिये उद्यापनका विधान बताऊँगा॥ ४६-४७॥ चाँदीकी बनी हुई नन्दीश्वरकी मूर्तिपर आसीन सुवर्णमय भगवान् शिवकी पार्वतीसहित प्रतिमाको कलशपर स्थापित करना चाहिये और विधिके साथ पूजन करके रात्रिमें जागरण करना चाहिये।

आचार्यं वरयेद्भक्त्या द्विजैरेकादशैः सह। होमश्चैव प्रकर्तव्यो घृतपायसबिल्वकैः॥ ५०॥

रुद्रसूक्तेन गायत्र्या मूलमन्त्रेण वा पुनः। ततः पूर्णाहुतिं हुत्वा आचार्यादीन्प्रपूजयेत्॥ ५१॥

तथैकादश सद्विप्रान्सपत्नीकांस्तु भोजयेत्। एवं या कुरुते नारी सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ५२॥

कथां श्रुत्वा विधानेन स्थाप्यं सर्वं न्यवेदयेत्। अश्वमेधसहस्रस्य फलं भवति निश्चितम्॥ ५३॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये धारणापारणा-मासोपवासरुद्रवर्तिकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

इसके बाद प्रातःकाल नदीमें निर्मल जलमें विधिपूर्वक स्नान करके ग्यारह ब्राह्मणोंसहित आचार्यका वरण करना चाहिये॥ ४८-४९१/२॥ तत्पश्चात् रुद्रसूक्तसे अथवा गायत्रीसे अथवा मूल मन्त्रसे घृत, खीर और बिल्वपत्रोंका होम करना चाहिये। इसके बाद पूर्णाहुति होम करके आचार्य आदिकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये और सपत्नीक ग्यारह उत्तम विप्रोंको भोजन कराना चाहिये। [हे सनत्कुमार!] जो स्त्री इस प्रकारसे व्रत करती है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाती है। तत्पश्चात् विधानपूर्वक कथा सुनकर स्थापित की गयी समस्त सामग्री [ब्राह्मणको] दे देनी चाहिये। इससे निश्चित रूपसे हजार अश्वमेधयज्ञोंका फल प्राप्त होता है॥ ५०—५३॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'धारणापारणामासोपवास-रुद्रवर्तिकथन' नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पञ्चमोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

माहात्म्यं कोटिलिङ्गानां पुण्यं वक्तुं न शक्यते। एकैकस्यापि लिङ्गस्य किं पुनः कोटिसङ्ख्यया॥ १॥

अशक्तौ लक्षकं कुर्यात्सहस्त्रमथवा शतम्। एकस्यापि हि लिङ्गस्य कारणान्मम सन्निधिः॥ २॥

षडक्षरेण मन्त्रेण पूजा कार्या स्मरद्विषः। उपचारैः षोडशभिर्भक्तियुक्तेन चेतसा॥ ३॥

उद्यापनं च कर्तव्यं ग्रहयज्ञपुरःसरम्। सम्पादनीयो होमश्च ब्राह्मणांश्चैव भोजयेत्॥ ४॥

नाकालमरणं तस्य वन्ध्यत्वहरणं परम्। सर्वापत्तिक्षयकरं सर्वसम्पत्प्रवर्धनम्॥ ५॥

प्रेत्य कैलासवासश्च आकल्पं मम सन्निधौ। पञ्चामृताभिषेकं च यः कुर्याच्छ्रावणे नरः॥ ६॥

स पञ्चामृतभोजी स्यात्सम्पन्नो गोधनेन च। अत्यन्तं मधुरालापो प्रियश्च त्रिपुरद्विषः॥ ७॥

अनोदनव्रती चैव हविष्याशी च यो नरः। व्रीह्यादिसर्वधान्यानामक्षय्योऽसौ निधिर्भवेत्॥ ८॥

पत्रावल्यां तु भुञ्जानः स्वर्णभाजनभोजनः। *शाकवर्जनतः स्याद्वै शाककर्ता नरोत्तमः॥ ९॥*

पाँचवाँ अध्याय

श्रावणमासमें किये जानेवाले विभिन्न व्रतानुष्ठान और रविवारव्रतवर्णनमें सुकर्मा द्विजकी कथा

ईश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] करोड़ [पार्थिव] लिंगोंके माहात्म्य तथा पुण्यका वर्णन नहीं किया जा सकता। जब मात्र एक लिंगका माहात्म्य नहीं कहा जा सकता तो फिर करोड़ लिंगोंके विषयमें कहना ही क्या! मनुष्यको चाहिये कि करोड़ लिंग निर्माणकी असमर्थतामें एक लाख लिंग बनाये या हजार लिंग अथवा एक सौ लिंग ही बनाये; यहाँतक कि एक लिंग बनानेसे भी मेरी सन्निधि मिल जाती है॥ १-२॥ षडक्षर मन्त्रसे सोलह उपचारोंके द्वारा भक्तिपूर्ण मनसे भगवान् शिवकी पूजा करनी चाहिये। ग्रहयज्ञके साथ उद्यापन करना चाहिये; तदनन्तर होम करना चाहिये और ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये॥ ३-४॥ [हे सनत्कुमार!] इस अनुष्ठानको करनेवालेकी अकालमृत्यु नहीं होगी। यह व्रत बाँझपनको दूर करनेवाला, सभी विपत्तियोंका नाश करनेवाला और सभी सम्पत्तियोंकी वृद्धि करनेवाला है। मृत्युके पश्चात् वह मनुष्य कल्पपर्यन्त मेरे समीप कैलासवास करता है॥ ५१/२॥ जो मनुष्य श्रावणमासमें पंचामृतसे [शिवजीका] अभिषेक करता है, वह सदा पंचामृतका पान करनेवाला, गोधनसे सम्पन्न, अत्यन्त मधुर भाषण करनेवाला तथा त्रिपुरके शत्रु भगवान् शिवको प्रिय होता है॥ ६-७॥ जो [इस मासमें] अनोदन व्रत करनेवाला तथा हविष्यान्न ग्रहण करनेवाला होता है, वह व्रीहि आदि सभी प्रकारके धान्योंका अक्षय निधिस्वरूप हो जाता है। पत्तलपर भोजन करनेवाला श्रेष्ठ मनुष्य सुवर्णपात्रमें भोजन करनेवाला तथा शाकको त्याग करनेसे शाककर्ता हो जाता है॥ ८-९॥

केवलं भूमिशायी तु कैलासे वा समाप्नुयात्। प्रातःस्नानान्नभोमासि अब्दं तत्फलभाङ्मतः ॥ १० ॥
जितेन्द्रियत्वान्मासेऽस्मिन्बलमैन्द्रियकं भवेत्। स्फाटिकेऽश्ममये वापि मात्स्ने मारकतेऽपि वा ॥ ११ ॥
स्वयम्भौ वास्वयम्भौ वा पैष्टे धातुमयेऽपि वा। चन्दने नावनीते वा अन्यस्मिन्वापि लिङ्गके ॥ १२ ॥
सकृत्पूजां प्रकुर्वाणो ब्रह्महत्याशतं दहेत्। सूर्यचन्द्रोपरागेषु सिद्धिः क्षेत्रेऽपि वा क्वचित् ॥ १३ ॥
सिद्धिर्या लक्षजाप्येन सकृत्स्याज्जपतोऽत्र सा। अन्यकाले कृता ये स्युर्नमस्काराः प्रदक्षिणाः ॥ १४ ॥
सहस्रेण फलं यत्स्यान्मासेऽस्मिन्नेकवारतः। मत्प्रिये श्रावणे मासि वेदपारायणे कृते ॥ १५ ॥
सर्वेषां वेदमन्त्राणां सिद्धिः सम्यक्प्रजायते। मासेऽस्मिन्पौरुषं सूक्तं जपते श्रद्धयान्वितः ॥ १६ ॥
कृत्वा सङ्ख्यासहस्रं तु कलौ स्यात्तु चतुर्गुणम्। वर्णानां सङ्ख्यया वापि शतं कुर्यादतन्द्रितः ॥ १७ ॥
अशक्तः सङ्ख्यया कर्तुं शतमानेन वा जपेत्। ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १८ ॥
गुरुतल्पे कृते पापे प्रायश्चित्तमिदं परम्। नास्त्येतत्सदृशं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥ १९ ॥
विना पौरुषजाप्येन न नयेदेकमप्यहः। अर्थवादमिमं ब्रूयात्स नरो निरयी भवेत् ॥ २० ॥
ग्रहयज्ञः प्रकर्तव्यः समिच्चरुतिलाज्यकैः। धूपगन्धप्रसूनादिनैवेद्यादिप्रभेदतः ॥ २१ ॥
तद्रूपाणां च ध्यानादि सम्पाद्य च यथायथम्। कोटिहोमो लक्षहोमोऽयुतहोमस्तु शक्तितः ॥ २२ ॥

श्रावणमासमें केवल भूमिपर सोनेवाला कैलासमें निवास प्राप्त करता है और इस मासमें एक भी दिन प्रात:स्नान करनेसे मनुष्यको एक वर्ष स्नान करनेके फलका भागी कहा गया है। इस मासमें जितेन्द्रिय होनेसे मनुष्यको इन्द्रियबल प्राप्त होता है ॥ १०१/२ ॥ इस मासमें स्फटिक, पाषाण, मृत्तिका, मरकतमणि, पिष्ट (पीठी), धातु, चन्दन, नवनीत आदिसे निर्मित अथवा अन्य किसी भी शिवलिंगमें साथ ही किसी स्वयं आविर्भूत या स्वयं आविर्भूत न हुए लिंगमें श्रेष्ठ पूजा करनेवाला मनुष्य सैकड़ों ब्रह्महत्याको भस्म कर डालता है ॥ ११-१२१/२ ॥ किसी तीर्थक्षेत्रमें सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहणके अवसरपर एक लाख जपसे जो सिद्धि होती है, वह इस मासमें एक बारके जपसे हो जाती है। अन्य समयमें जो हजार नमस्कार और प्रदक्षिणाएँ की जाती हैं; उनका जो फल होता है, वह इस मासमें एक बार करनेसे ही प्राप्त हो जाता है ॥ १३-१४१/२ ॥ मुझको प्रिय इस श्रावणमासमें वेदपारायण करनेपर सभी वेदमन्त्रोंकी पूर्ण रूपसे सिद्धि हो जाती है। श्रद्धायुक्त होकर इस मासमें एक हजार बार पुरुष-सूक्तका पाठ करना चाहिये अथवा कलियुगमें उसका चौगुना (चार हजार) पाठ करना चाहिये अथवा वर्ण संख्याका सौ गुना पाठ करना चाहिये अथवा यदि यह करनेमें असमर्थ हो तो आलस्यहीन होकर मात्र एक सौ पाठ करना चाहिये; ऐसा करनेवाला ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है ॥ १५—१८ ॥ गुरुपत्नीके साथ संसर्गजन्य पापके लिये यही महान् प्रायश्चित्त है। इसके समान पुण्यप्रद, पवित्र तथा पापनाशक कुछ भी नहीं है। पुरुषसूक्तके जपके बिना इस मासमें एक भी दिन व्यतीत नहीं करना चाहिये। जो मनुष्य इस फलको अर्थवाद कहता है, वह नरकगामी होता है ॥ १९-२० ॥ इस महीनेमें समिधा, चरु, तिल और घृतसे ग्रहयज्ञ होम करना चाहिये। शिवके रूपोंका भली-भाँति ध्यान आदि करके धूप, गन्ध, पुष्प, नैवेद्य आदिसे पूजन करना चाहिये और अपने सामर्थ्यके अनुसार कोटिहोम, लक्षहोम अथवा दस

तिलैर्व्याहृतिभिः कार्यो ग्रहयज्ञाभिधोऽप्यसौ। अथ वक्ष्यामि वाराणां व्रतानि शृणु साम्प्रतम्॥ २३॥
तत्रादौ रविवारस्य व्रतं वक्ष्यामि तेऽनघ। अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्॥ २४॥
प्रतिष्ठानपुरे रम्ये सुकर्मा नाम वै द्विजः। आसीद्दरिद्रः कृपणो भैक्ष्यचर्यापरायणः॥ २५॥
एकदा स गतो धान्यं याचितुं पर्यटन्पुरम्। स्त्रियो ददर्श सदने कस्यचिद् गृहमेधिनः॥ २६॥
चरन्त्यो रविवारस्य मिलिता व्रतमुत्तमम्। तदोचुस्ताश्च तं दृष्ट्वा आच्छादयत सत्वरम्॥ २७॥
पूजाविधिं ततो विप्रः प्रार्थयामास ताः स्त्रियः। छाद्यते किं नु भो साध्व्यो भवतीभिरिदं व्रतम्॥ २८॥
कथयध्वं कृपां कृत्वा ममोपरि दयालवः। परोपकारसदृशो धर्मो नास्ति जगत्त्रये॥ २९॥
साधूनां समचित्तानां परार्थः स्वार्थ एव हि। दरिद्रः पीडितश्चाहं श्रुत्वेदं व्रतमुत्तमम्॥ ३०॥
चरिष्यामि विधिं ब्रूत फलं चास्य व्रतस्य हि॥ ३१॥

स्त्रिय ऊचुः

उन्मादं वा प्रमादं वा विस्मृतिं वा करिष्यसि। अभक्तिं वाप्यनास्थां वा कथं देयं तव द्विज॥ ३२॥
इति तासां वचः श्रुत्वा विप्रेन्द्रो वाक्यमब्रवीत्। *ज्ञानवानस्मि भो साध्व्यो भक्तिमांश्चास्मि सुव्रताः॥ ३३॥*
एवं तद्वचनं श्रुत्वा प्रौढा तासु च याभवत्। सा प्रोवाच व्रतं तस्मै *यथाभूतं च तद्विधिम्॥ ३४॥*

सहस्त्रहोम करना चाहिये। व्याहृतियों (**ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः**)-के साथ तिलोंके द्वारा भी यह ग्रहयज्ञ नामक होम किया जाता है। [हे सनत्कुमार!] इसके बाद अब मैं वारोंके व्रतोंका वर्णन करूँगा, आप सुनिये॥ २१—२३॥

हे अनघ! उनमें सर्वप्रथम मैं आपको रविवारका व्रत बताऊँगा। इस सम्बन्धमें लोग एक प्राचीन इतिहासको कहते हैं। प्रतिष्ठानपुरमें सुकर्मा नामक एक द्विज था; वह दरिद्र, कृपण तथा भिक्षावृत्तिमें लगा रहता था॥ २४-२५॥ एक बार वह धान्य माँगनेके लिये घूमते-घूमते नगरमें गया। उसने किसी गृहस्थके घरमें मिलकर रविवारका उत्तम व्रत करती हुई स्त्रियोंको देखा। तब उसे देखकर वे स्त्रियाँ परस्पर कहने लगीं कि इस पूजा-विधिको शीघ्रतापूर्वक छिपा लो। इसपर वह विप्र उन स्त्रियोंसे बोला—हे श्रेष्ठ स्त्रियो! आपलोग इस व्रतको क्यों छिपा रही हैं? आप सभी दयालु स्त्रियाँ मुझपर कृपा करके इसके विषयमें बतायें। तीनों लोकोंमें परोपकारके समान कोई धर्म नहीं है। समान चित्तवाले सज्जनोंके लिये परमार्थ ही स्वार्थ है। मैं दरिद्र तथा दुःखी हूँ; इस श्रेष्ठ व्रतको सुनकर मैं भी इसे करूँगा, अतः [आपलोग] इस व्रतका विधान तथा फल अवश्य बतायें॥ २६—३१॥

स्त्रियाँ बोलीं—हे द्विज! इस व्रतके करनेमें आप उन्माद तथा प्रमाद करेंगे अथवा इसे भूल जायेंगे अथवा इसके प्रति अभक्ति या अनास्था रखने लगेंगे, अतः आपको यह व्रत कैसे बताऊँ!॥ ३२॥ उनकी यह बात सुनकर विप्रेन्द्रने यह वचन कहा—हे उत्तम व्रतवाली साध्वियो! मैं ज्ञानवान् तथा भक्तिसम्पन्न हूँ॥ ३३॥ उसका यह वचन सुनकर उनमें जो एक प्रौढ़ा स्त्री थी, वह उस ब्राह्मणसे व्रत तथा व्रतकी विधि यथावत् बताने लगी॥ ३४॥

श्रावणे शुक्लपक्षे तु प्रथमे रविवासरे। मौनेनोत्थायावगाहं कुर्याच्छीतोदकेन तत्॥ ३५॥
स्वनित्यकर्म सम्पाद्य नागवल्लीदले शुभे। परिधिद्वादशयुतं मण्डलं तत्र संलिखेत्॥ ३६॥
अर्कवद्वर्तुलं सम्यग् रक्तचन्दनतः शुभम्। तत्र संज्ञायुतं सूर्यं पूजयेद्रक्तचन्दनात्॥ ३७॥
जानुभ्यामवनीं गत्वा अर्घ्यं द्वादशमण्डलैः। रक्तचन्दनमिश्रं च जपाकुसुमसंयुतम्॥ ३८॥
दद्याद् गभस्तये सम्यक् श्रद्धाभक्तिपुरःसरम्। रक्ताक्षतैर्जपापुष्पैस्तथान्यैरुपचारकैः ॥ ३९॥
नारीकेलस्य बीजं तु खण्डशर्करया युतम्। नैवेद्यमर्पयित्वा तु मन्त्रैरादित्यलिङ्गकैः॥ ४०॥
स्तुवीत द्वादशवैर्नमस्कारान्प्रदक्षिणाः। षट्तन्तुनिर्मितं सूत्रं षड्भिर्ग्रन्थिभिरन्वितम्॥ ४१॥
अर्पयित्वा तु देवेशं बध्नीयात्तु गले च तत्। द्विजाय वायनं दद्यात्फलैर्द्वादशभिर्युतम्॥ ४२॥
एतद्व्रतप्रकारं न श्रावयेत्कस्यचित्पुरा। एवं व्रते कृते विप्र निर्धनो धनमाप्नुयात्॥ ४३॥
अपुत्रो लभते पुत्रं कुष्ठी कुष्ठात्प्रमुच्यते। बद्धः स्याद्बन्धरहितो रोगी रोगेण हीयते॥ ४४॥
किं बहूक्तेन विप्रेन्द्र यद्यदिच्छति वाञ्छितम्। तत्तल्लभेत्साधकोऽसौ व्रतस्यास्य प्रभावतः॥ ४५॥
एवं चतुर्षु वारेषु कदाचिदपि पञ्चसु। उद्यापनं ततः कार्यं व्रतसम्पूर्णहेतवे॥ ४६॥

[हे ब्राह्मण!] श्रावणके शुक्लपक्षके प्रथम रविवारको मौन होकर उठ करके शीतल जलसे स्नान करे। तदनन्तर अपना नित्यकर्म सम्पन्न करके पानके एक शुभ दलपर रक्तचन्दनसे सूर्यके समान पूर्ण गोलाकार बारह परिधियोंवाला सुन्दर मण्डल बनाये और उस मण्डलमें रक्तचन्दनसे संज्ञासहित सूर्यका पूजन करे॥ ३५—३७॥

तदनन्तर घुटनोंके बल भूमिपर झुककर बारहों मण्डलोंपर पृथक्-पृथक् रक्तचन्दन तथा जपाकुसुमसे मिश्रित अर्घ्य श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सूर्यको विधिवत् प्रदान करे और रक्त (लाल) अक्षत, जपाकुसुम तथा अन्य उपचारोंसे पूजन करे॥ ३८-३९॥ तदनन्तर खण्डशर्करा (मिसरी)-से युक्त नारिकेलके बीजका नैवेद्य अर्पित करके आदित्यमन्त्रोंसे सूर्यकी स्तुति करे और श्रेष्ठ द्वादश मन्त्रोंसे बारह नमस्कार तथा प्रदक्षिणाएँ करे। तत्पश्चात् छः तन्तुओंसे बनाये गये सूत्रमें छः ग्रन्थियाँ बनाकर देवेश सूर्यको अर्पण करके उसे अपने गलेमें बाँधे और पुनः बारह फलोंसे युक्त वायन ब्राह्मणको प्रदान करे॥ ४०—४२॥ इस व्रतकी विधिको किसीके समक्ष नहीं सुनाना चाहिये। हे विप्र! इस विधिसे व्रतके किये जानेपर धनहीन व्यक्ति धन प्राप्त करता है, पुत्रहीन पुत्र प्राप्त करता है, कोढ़ी कोढ़से मुक्त हो जाता है, बन्धनमें पड़ा हुआ बन्धनसे छूट जाता है और रोगी रोगसे रहित हो जाता है। हे विप्रेन्द्र! अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन; वह साधक जिस-जिस अभीष्टकी कामना करता है, इस व्रतके प्रभावसे उसे प्राप्त कर लेता है॥ ४३—४५॥ इस प्रकार श्रावणके चार रविवारों और कभी-कभी पाँच रविवारोंमें इस व्रतको करना चाहिये; तदनन्तर व्रतकी सम्पूर्णताके लिये उद्यापन करना

एवं कुरुष्व विप्रेन्द्र सर्वसिद्धिर्भविष्यति। नमस्कृत्वा तु ताः साध्वीर्विप्रः स्वगृहमाययौ॥ ४७॥
तथा चकार तत्सर्वं व्रतं चैव यथाश्रुतम्। स्वकन्यकाद्वयस्यापि श्रावयामास तद्विधिम्॥ ४८॥
तस्य श्रवणमात्रेण दर्शनात्पूजनस्य च। स्वरङ्गनोपमे कन्ये जाते तस्य प्रभावतः॥ ४९॥
तदाप्रभृति विप्रस्य गृहे लक्ष्मीर्विवेश ह। नानामार्गैर्निमित्तैश्च लक्ष्मीवानिति सोऽभवत्॥ ५०॥
कदाचिद् गच्छता राज्ञा विप्रसद्म पुरोऽध्वना। वातायने स्थिते कन्ये दृष्टे निरुपमे शुभे॥ ५१॥
देहावयवसंस्थानैर्वस्तु यद्यच्च सुन्दरम्। त्रैलोक्ये भर्त्सयन्त्यौ ते पद्मचन्द्रादिकं च यत्॥ ५२॥
राजा मोहं समापेदे तत्रैवावस्थितः क्षणम्। आमन्त्र्य ब्राह्मणं सद्यः प्रार्थयामास कन्यके॥ ५३॥
विप्रोऽपि हृषितो भूत्वा प्रादाद्राज्ञे सुताद्वयम्। राजानं प्राप्य भर्तारं तेऽपि कन्ये मुदान्विते॥ ५४॥
पुत्रपौत्रादिसम्पन्ने चक्रतुश्च स्वयं व्रतम्। व्रतमेतत्समाख्यातं मुने तव महोदयम्॥ ५५॥
यस्य श्रवणमात्रेण सर्वान्कामानवाप्नुयात्। अनुष्ठानफलं तस्य किं वर्ण्यं विधिनन्दन॥ ५६॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये प्रकीर्णकनानाव्रत-रविवारव्रतादिकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

चाहिये। हे विप्रेन्द्र! आप भी इसी प्रकार करें; इससे आपकी सभी कामनाओंकी सिद्धि हो जायगी॥ ४६१/२ ॥ तत्पश्चात् उन पतिव्रताओंको नमस्कार करके वह ब्राह्मण अपने घर आ गया। उसने जैसा सुना था, उसी विधिसे उस सम्पूर्ण व्रतको किया और अपनी दोनों पुत्रियोंको भी वह विधि सुनायी। उस व्रतके सुननेमात्रसे, शिवजीके दर्शनसे तथा उनके पूजनके प्रभावसे वे कन्याएँ देवांगनाओंके सदृश हो गयीं॥ ४७—४९ ॥

उसी समयसे उस ब्राह्मणके घरमें लक्ष्मीने प्रवेश किया और वह अनेक उपायों तथा निमित्तोंसे धनवान् हो गया॥ ५० ॥ किसी दिन उस नगरके राजाने ब्राह्मणके घरसे होकर राजमार्गसे जाते समय खिड़कीमें खड़ी उन दोनों सुन्दर तथा अनुपमेय कन्याओंको देख लिया। तीनों लोकोंमें कमल, चन्द्रमा आदि जो भी सुन्दर वस्तुएँ हैं, उन्हें वे दोनों कन्याएँ अपने शरीरके अवयवोंसे तिरस्कृत कर रही थीं॥ ५१-५२ ॥ [उन्हें देखकर] राजा मोहित हो गये और क्षणभरके लिये वहीं खड़े हो गये। ब्राह्मणको शीघ्र बुलाकर उन्होंने दोनों कन्याओंको माँग लिया; तब उस ब्राह्मणने भी हर्षित होकर दोनों कन्याएँ राजाको प्रदान कर दीं। उस राजाको पतिरूपमें प्राप्त करके वे कन्याएँ भी प्रसन्न हो गयीं। वे स्वयं इस व्रतको करने लगीं और पुत्र, पौत्र आदिसे सम्पन्न हो गयीं॥ ५३-५४१/२ ॥ हे मुने! महान् ऐश्वर्य देनेवाले इस व्रतको मैंने आपसे कह दिया। हे विधिनन्दन! जिस व्रतके श्रवणमात्रसे मनुष्य सभी मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है, उसके अनुष्ठान करनेके फलका वर्णन कैसे किया जाय॥ ५५-५६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमास माहात्म्यमें 'प्रकीर्णक-नानाव्रत-रविवारव्रतादिकथन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

रविवारस्य माहात्म्यं श्रुतं मे हर्षकारकम्। सोमवारस्य माहात्म्यं श्रावणे मासि मे वद॥ १॥

ईश्वर उवाच

रविर्मे नयनं तस्य माहात्म्यमिदमुत्तमम्। उमासहितमन्नाम्नस्तस्य सोमस्य किं पुनः॥ २॥
माहात्म्यं वर्णनीयं मे यत्किञ्चिदपि ते ब्रुवे। सोमश्चन्द्रो विप्रराजः सोमः स्याद्यज्ञसाधनम्॥ ३॥
निमित्तानि च तन्नाम्नः शृणु मत्तः समाहितः। मत्स्वरूपो यतो वारस्ततः सोम इति स्मृतः॥ ४॥
प्रदाता सर्वराज्यस्य श्रेष्ठश्चैव ततो हि सः। समस्तराज्यफलदो व्रतकर्तुर्यतो हि सः॥ ५॥
तस्य शृणु विधिं विप्र विस्तरात्कथयामि ते। द्वादशेष्वपि मासेषु सोमवारः प्रशस्यते॥ ६॥
तावत्कर्तुमशक्तश्चेच्छ्रावणे मासि कारयेत्। अस्मिन्मासे व्रतं कृत्वा अब्दव्रतफलं लभेत्॥ ७॥
श्रावणे शुक्लपक्षे तु प्रथमे सोमवासरे। सङ्कल्पयेद् व्रतं सम्यक् शिवो मे प्रीयतामिति॥ ८॥
एवं चतुर्षु वारेषु भवेयुः पंच वा यदि। प्रातः सङ्कल्पयेत्तत्र नक्तं च शिवपूजनम्॥ ९॥
उपचारैः षोडशभिः सायं च पूजयेच्छिवम्। शृणुयाच्च कथां दिव्यामेकाग्रकृतमानसः॥ १०॥

छठा अध्याय

सोमवारव्रतविधान

सनत्कुमार बोले—[हे भगवन्!] मैंने रविवारका हर्षकारक माहात्म्य सुन लिया; अब आप श्रावणमासमें सोमवारका माहात्म्य मुझे बताइए॥ १॥

ईश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] सूर्य मेरा नेत्र है; उसका माहात्म्य इतना श्रेष्ठ है, तो फिर उमासहित (सोम) मेरे नामवाले उस सोमवारका कहना ही क्या? उसका जो माहात्म्य मेरे लिये वर्णनके योग्य है, उसे मैं आपसे कहता हूँ। सोम चन्द्रमाका नाम है और यह ब्राह्मणोंका राजा है; यज्ञोंका साधन भी सोम है। उस सोमके नामके कारणोंको आप सावधान होकर मुझसे सुनिये॥ २-३१/२॥ क्योंकि यह वार मेरा ही स्वरूप है, अतः इसे सोम कहा गया है। इसीलिये यह समस्त राज्यका प्रदाता तथा श्रेष्ठ है। व्रत करनेवालेको यह सम्पूर्ण राज्यका फल देनेवाला है॥ ४-५॥ हे विप्र! उसकी विधि सुनिये; मैं आपको विस्तारपूर्वक बता रहा हूँ। बारहों महीनोंमें सोमवार अत्यन्त श्रेष्ठ है। उन मासोंमें यदि [सोमवार व्रत] करनेमें असमर्थ हो तो श्रावणमासमें इसे [अवश्य] करना चाहिये। इस मासमें इस व्रतको करके मनुष्य वर्षभरके व्रतका फल प्राप्त करता है॥ ६-७॥ श्रावणमें शुक्लपक्षके प्रथम सोमवारको यह संकल्प करे कि 'मैं विधिवत् इस व्रतको करूँगा; शिवजी मुझपर प्रसन्न हों।' इस प्रकार चारों सोमवारके दिन और यदि पाँच हो जायँ तो उसमें भी प्रातःकाल यह संकल्प करे और रात्रिमें शिवजीका पूजन करे। सोलह उपचारोंसे सायंकालमें भी शिवजीकी पूजा करे और एकाग्रचित्त होकर इस दिव्य कथाका श्रवण करे॥ ८—१०॥

सोमवारव्रतस्यास्य कथ्यमानं निबोध मे। श्रावणे प्रथमे सोमे गृह्णीयाद् व्रतमुत्तमम्॥ ११॥
सुस्नातश्च शुचिर्भूत्वा शुक्लाम्बरधरो नरः। कामक्रोधाद्यहङ्कारद्वेषपैशून्यवर्जितः ॥ १२॥
आहरेच्छ्वेतपुष्पाणि मालतीमल्लिकादिकाः। अन्यैश्च विविधैः पुष्पैरभीष्टैरुपचारकैः॥ १३॥
पूजयेन्मूलमन्त्रेण त्र्यम्बकेण ततः परम्॥ १४॥

शर्वाय भवनाशाय महादेवाय धीमहि। उग्राय चोग्रनाथाय भवाय शशिमौलिने॥ १५॥
रुद्राय नीलकण्ठाय शिवाय भवहारिणे। एवं सम्पूज्य देवेशमुपचारैर्मनोहरैः॥ १६॥
यथाविभवसारेण तस्य पुण्यफलं शृणु। सोमवारे यजन्ते ये पार्वत्या सहितं शिवम्।
ते लभन्त्यक्षयांल्लोकान्पुनरावृत्तिदुर्लभान्॥ १७॥

अत्र नक्तेन यत्पुण्यं कथयामि समासतः। सप्तजन्मार्जितं पापमभेद्यं देवदानवैः॥ १८॥
प्रणश्येन्नक्तभुक्तेन नात्र कार्या विचारणा। उपवासेन वा कुर्याद् व्रतमेतदनुत्तमम्॥ १९॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रान्धनार्थी लभते धनम्। यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति मानवः॥ २०॥
इह लोके चिरं स्थित्वा भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान्। विमानवरमारुह्य रुद्रलोके महीयते॥ २१॥
चलं चित्तं चलं वित्तं चलं जीवितमेव च। एवं ज्ञात्वा प्रयत्नेन व्रतस्योद्यापनं चरेत्॥ २२॥
उमामहेश्वरौ हैमौ राजते वृषभे स्थितौ। यथाशक्त्या प्रकर्तव्यौ वित्तशाठ्यं न कारयेत्॥ २३॥

[हे सनत्कुमार!] इस सोमवारव्रतकी कही जानेवाली विधिको अब मुझसे सुनिये। श्रावणमासके प्रथम सोमवारको इस श्रेष्ठ व्रतको प्रारम्भ करे। मनुष्यको चाहिये कि अच्छी तरह स्नान करके पवित्र होकर श्वेत वस्त्र धारण कर ले और काम, क्रोध, अहंकार, द्वेष, निन्दा आदिका त्याग करके मालती, मल्लिका आदि श्वेत पुष्पोंको लाये। इनके अतिरिक्त अन्य विविध पुष्पोंसे तथा अभीष्ट पूजनोपचारोंके द्वारा '**त्र्यम्बक०**'—इस मूलमन्त्रसे शिवजीकी पूजा करे। तत्पश्चात् यह कहे—मैं शर्व, भवनाश, महादेव, उग्र, उग्रनाथ, भव, शशिमौलि, रुद्र, नीलकण्ठ, शिव तथा भवहारीका ध्यान करता हूँ॥ ११—१५ १/२ ॥ इस प्रकार अपने विभवके अनुसार मनोहर उपचारोंसे देवेश शिवका विधिवत् पूजन करे, जो इस व्रतको करता है उसके पुण्य-फलको सुनिये। जो लोग सोमवारके दिन पार्वतीसहित शिवकी पूजा करते हैं, वे पुनरावृत्तिसे रहित अक्षय लोक प्राप्त करते हैं॥ १६-१७॥ [हे सनत्कुमार!] इस मासमें नक्तव्रतसे जो पुण्य होता है, उसे मैं संक्षेपमें कहता हूँ। देवताओं तथा दानवोंसे भी अभेद्य सात जन्मोंका अर्जित पाप नक्तभोजनसे नष्ट हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये अथवा इस अत्युत्तम व्रतको उपवासपूर्वक करे॥ १८-१९॥ इसे करनेसे पुत्रकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य पुत्र प्राप्त करता है और धन चाहनेवाला धन प्राप्त करता है; वह जिस-जिस अभीष्टकी कामना करता है, उसे पा जाता है। इस लोकमें दीर्घकालतक वांछित सुखोपभोगोंको भोगकर अन्तमें श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ होकर वह रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ २०-२१॥ चित्त चंचल है, धन चंचल है और जीवन भी चंचल है—ऐसा समझकर प्रयत्नपूर्वक व्रतका उद्यापन करना चाहिये॥ २२॥ चाँदीके वृषभपर विराजमान सुवर्णनिर्मित शिव तथा पार्वतीकी प्रतिमा अपने सामर्थ्यके अनुसार बनानी चाहिये; इसमें धनकी कृपणता नहीं करनी चाहिये॥ २३॥

मण्डलं लिङ्गतोभद्रं दिव्यं वै कारयेच्छुभम्। तत्र संस्थापयेत्कुम्भं श्वेतवस्त्रयुगान्वितम्॥ २४॥
ताम्रपात्रं वैणवं वा कुम्भस्योपरि विन्यसेत्। तस्योपरि न्यसेद्देवमुमया सहितं शिवम्॥ २५॥
श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तैर्मन्त्रैः सम्पूजयेच्छिवम्। पुष्पमण्डपिका कार्या वितानं चैव शोभनम्॥ २६॥
रात्रौ जागरणं कार्यं गीतवादित्रनिःस्वनैः। स्वगृह्योक्तविधानेन ततोऽग्निं स्थापयेद् बुधः॥ २७॥
ततो होमं च शर्वाद्यैरेकादशसुनामभिः। पालाशाभिः समिद्भिश्च हुनेदष्टाधिकं शतम्॥ २८॥
यवव्रीहितिलाद्यैश्च आप्यायस्वेति मन्त्रतः। बिल्वपत्रैस्त्र्यम्बकेण षड्वर्णेनापि वा पुनः॥ २९॥
पूर्णाहुतिं ततो हुत्वा कृत्वा स्विष्टकृतादिकम्। आचार्यं पूजयेत्पश्चाद् गां च तस्मै प्रदापयेत्॥ ३०॥
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चादेकादश सुशोभनान्। एकादश घटास्तेभ्यो वंशपात्रसमन्विताः॥ ३१॥
सम्पूजितं ततो देवं देवोपकरणानि च। आचार्याय ततो दद्यात्प्रार्थयेत्तदनन्तरम्॥ ३२॥
परिपूर्णं व्रतं मे स्याच्छिवो मे प्रीयतामिति। बन्धुभिः सह भुञ्जीत ततो हर्षपुरःसरम्॥ ३३॥
अनेनैव विधानेन य इदं व्रतमाचरेत्। यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति मानवः॥ ३४॥
शिवलोके ततो गत्वा तस्मिँल्लोके महीयते। कृष्णेनाचरितं पूर्वं सोमवारव्रतं शुभम्॥ ३५॥
नृपैः श्रेष्ठैस्तथा चीर्णमास्तिकैर्धर्मतत्परैः। इदं यः शृणुयान्नित्यं सोऽपि तत्फलमाप्नुयात्॥ ३६॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये सोमवारव्रतकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

तदनन्तर एक दिव्य तथा शुभ लिंगतोभद्र-मण्डल बनाये और उसमें दो श्वेत वस्त्रोंसे युक्त एक घट स्थापित करे। घटके ऊपर ताँबे अथवा बाँसका बना हुआ पात्र रखे और उसके ऊपर उमासहित शिवको स्थापित करे। इसके बाद श्रुति, स्मृति तथा पुराणोंमें कहे गये मन्त्रोंसे शिवकी पूजा करे, पुष्पोंका मण्डप बनाये और उसके ऊपर सुन्दर चँदोवा लगाये; उसमें गीतों तथा बाजोंकी मधुर ध्वनिके साथ रातमें जागरण करे॥ २४—२६$^{१}/_{२}$ ॥ तत्पश्चात् बुद्धिमान् मनुष्य अपने गृह्यसूत्रमें निर्दिष्ट विधानके अनुसार अग्नि-स्थापन करे और फिर शर्व आदि ग्यारह श्रेष्ठ नामोंसे पलाशकी समिधाओंसे एक सौ आठ आहुति प्रदान करे; यव, व्रीहि, तिल आदिकी आहुति '**आप्यायस्व०**'—इस मन्त्रसे दे और बिल्वपत्रोंकी आहुति '**त्र्यम्बक०**' अथवा षडक्षर मन्त्र (**ॐ नमः शिवाय**)-से प्रदान करे। तत्पश्चात् स्विष्टकृत् होम करके पूर्णाहुति देकर आचार्यका पूजन करे और बादमें उन्हें गौ प्रदान करे॥ २७—३०॥ तदनन्तर ग्यारह श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराये और उन्हें वंशपात्रसहित ग्यारह घट प्रदान करे। इसके बाद पूजित देवताको तथा देवताको अर्पित सभी सामग्री आचार्यको दे और तत्पश्चात् प्रार्थना करे—'मेरा व्रत परिपूर्ण हो और शिवजी मुझपर प्रसन्न हों।' तदनन्तर बन्धुओंके साथ हर्षपूर्वक भोजन करे॥ ३१—३३॥ इसी विधानसे जो मनुष्य इस व्रतको करता है, वह जिस-जिस अभिलषित वस्तुकी कामना करता है, उसे प्राप्त कर लेता है और अन्तमें शिवलोकको प्राप्त होकर उस लोकमें पूजित होता है। [हे सनत्कुमार!] सर्वप्रथम श्रीकृष्णने इस मंगलकारी सोमवारव्रतको किया था; श्रेष्ठ, आस्तिक तथा धर्मपरायण राजाओंने भी इस व्रतको किया था। जो इस व्रतका नित्य श्रवण करता है, वह भी उस व्रतके करनेका फल प्राप्त करता है॥ ३४—३६॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'सोमवारव्रतकथन' नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सप्तमोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

सनत्कुमार वक्ष्यामि भौमव्रतमनुत्तमम्। यस्यानुष्ठानमात्रेण अवैधव्यं प्रजायते॥ १॥
विवाहानन्तरं पञ्चवर्षाणि व्रतमाचरेत्। नामास्य मङ्गलागौरीव्रतं पापप्रणाशनम्॥ २॥
विवाहानन्तरं चाद्ये श्रावणे शुक्लपक्षके। प्रथमं भौमवारस्य व्रतमेतत्तु कारयेत्॥ ३॥
पुष्पमण्डपिका कार्या कदलीस्तम्भमण्डिता। नानाविधैः फलैश्चैव पट्टकूलैश्च भूषयेत्॥ ४॥
तत्र संस्थापयेद्देव्याः प्रतिमां स्वर्णनिर्मिताम्। अन्यधातुमयीं वापि स्वशक्त्या तत्र पूजयेत्॥ ५॥
उपचारैः षोडशभिर्मङ्गलागौरिसंज्ञिताम्। दूर्वादलैः षोडशभिरपामार्गदलैस्तथा॥ ६॥
तावत्सङ्ख्यैस्तण्डुलैश्च चणानां शकलैस्तथा। षोडशोन्मितवर्तीभिस्तावद्दीपांश्च दीपयेत्॥ ७॥
दध्योदनं च नैवेद्यं तत्र भक्त्या प्रकल्पयेत्। समीपं स्थापयेद्देव्या दृषदं चोपलं तथा॥ ८॥
एवं कृत्वा तु पञ्चाब्दं तत उद्यापनं चरेत्। मात्रे दद्याद्वायनं तु प्रकारं शृणु तस्य च॥ ९॥
प्रतिमां मङ्गलागौर्याः सुवर्णपलनिर्मिताम्। तदर्धेन तदर्धेन शक्त्या वाप्यथ कारयेत्॥ १०॥
तण्डुलैः पूरिते भाण्डे शक्त्या स्वर्णादिनिर्मिते। संस्थाप्य परिधानीयं रमणीयां च कञ्चुकीम्॥ ११॥
तयोरुपरि देव्यास्तु प्रतिमां स्थापयेत्ततः। समीपभागे संस्थाप्य दृषदं चोपलं तथा॥ १२॥

सातवाँ अध्याय

मंगलागौरीव्रतका वर्णन तथा व्रतकथा

ईश्वर बोले—हे सनत्कुमार! अब मैं अत्युत्तम भौमव्रतका वर्णन करूँगा, जिसके अनुष्ठान करनेमात्रसे वैधव्य नहीं होता है। विवाह होनेके पश्चात् पाँच वर्षोंतक यह व्रत करना चाहिये। इसका नाम मंगलागौरीव्रत है; यह पापोंका नाश करनेवाला है॥ १-२॥ विवाहके पश्चात् प्रथम श्रावणके शुक्ल पक्षमें पहले मंगलवारको यह व्रत [आरम्भ] करना चाहिये॥ ३॥ केलेके खम्भोंसे सुशोभित एक पुष्पमण्डप बनाना चाहिये और उसे अनेक प्रकारके फलों तथा रेशमी वस्त्रोंसे सजाना चाहिये॥ ४॥ उस [मण्डप]-में अपने सामर्थ्यके अनुसार देवीकी सुवर्णमयी अथवा अन्य धातुकी बनी प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये और सोलह उपचारोंसे, सोलह दूर्वादलोंसे, सोलह अपामार्गदलोंसे, सोलह चावलोंसे तथा सोलह चनेकी दालोंसे मंगलागौरी नामक देवीकी पूजा करनी चाहिये और सोलह बत्तियोंसे सोलह दीपक जलाने चाहिये। दही तथा भातका नैवेद्य भक्तिपूर्वक अर्पित करना चाहिये और देवीके पास पत्थरका सिल तथा लोढ़ा स्थापित करना चाहिये। पाँच वर्षतक इस प्रकारसे करनेके पश्चात् उद्यापन करना चाहिये। माताको वायन प्रदान करना चाहिये; अब उसकी विधि सुनिये॥ ५—९॥ अपने सामर्थ्यके अनुसार एक पल प्रमाण सुर्वणकी अथवा उसके आधे प्रमाणकी अथवा उसके भी आधे प्रमाणकी मंगलागौरीकी प्रतिमा निर्मित करानी चाहिये॥ १०॥ अपनी शक्तिके अनुसार स्वर्ण आदिके बने तंडुलपूरित पात्रपर वस्त्र तथा रमणीय कंचुकी (ओढ़नी) रखकर उन दोनोंके ऊपर देवीकी प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये। समीपमें चाँदीसे निर्मित सिल तथा लोढ़ा रखकर माताको वायन प्रदान करना चाहिये।

रौप्येण निर्मितं मात्रे एवं दद्यात्तु वायनम्। षोडशापि सुवासिन्यो भोजनीयाः प्रयत्नतः॥ १३॥
एवं कृते व्रते विप्र सौभाग्यं सप्तजन्मसु। पुत्रपौत्रादिभिश्चैव रमते सम्पदा युता॥ १४॥

सनत्कुमार उवाच

केनेदं व्रतमाचीर्णं कस्य जातं फलं पुरा। यथा स्यात्प्रत्ययः शम्भो कृपां कृत्वा तथा वद॥ १५॥

ईश्वर उवाच

कुरुदेशे पुरा राजा श्रुतकीर्तिरिति श्रुतः। बभूव श्रुतसम्पन्नः कीर्तिमान्हतशात्रवः॥ १६॥
चतुःषष्टिकलाभिज्ञो धनुर्विद्याविशारदः। पुत्रादन्यच्छुभं सर्वं तस्य राज्ञो बभूव ह॥ १७॥
सन्तानविषयेऽथासौ बहुचिन्ताकुलोऽभवत्। देव्या आराधनं चक्रे जपध्यानपुरःसरम्॥ १८॥
क्रूरेण तपसा तस्य देवी तुष्टा बभूव ह। उवाच वचनं तस्मै वरं वरय सुव्रत॥ १९॥

श्रुतकीर्तिरुवाच

यदि देवि प्रसन्नासि पुत्रं मे देहि शोभनम्। अन्यद्देवि त्वत्प्रसादान्न न्यूनं किञ्चिदस्ति मे॥ २०॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा देवी प्राह शुचिस्मिता। दुर्लभं याचितं राजन्दास्ये तुभ्यं कृपावशात्॥ २१॥
परं शृणुष्व राजेन्द्र पुत्रश्चेद् गुणवत्तरः। ईप्सितश्चेत्षोडशाब्दं जीविष्यति न चाधिकम्॥ २२॥
रूपविद्याविहीनश्चेच्चिरञ्जीवी भविष्यति। इति देव्या वचः श्रुत्वा नृपश्चिन्तातुरोऽभवत्॥ २३॥

इसके बाद सोलह सुवासिनियोंको प्रयत्नपूर्वक भोजन कराना चाहिये॥ ११—१३॥ हे विप्र! इस विधिसे व्रत करनेपर सात जन्मोंतक सौभाग्य बना रहता है और पुत्र, पौत्र आदिके साथ सम्पदा विद्यमान रहती है॥ १४॥

सनत्कुमार बोले—सर्वप्रथम इस व्रतको किसने किया था और किसको इसका फल प्राप्त हुआ? हे शम्भो! जिस तरहसे मुझे इसके प्रति निष्ठा हो जाय, कृपा करके वैसे ही बताइए॥ १५॥

ईश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] पूर्वकालमें कुरुदेशमें श्रुतकीर्ति नामक एक विद्वान्, कीर्तिशाली, शत्रुओंका नाश करनेवाला, चौंसठ कलाओंका ज्ञाता तथा धनुर्विद्यामें कुशल राजा हुआ था। पुत्रके अतिरिक्त अन्य सभी शुभ चीजें उस राजाके पास थीं॥ १६-१७॥ अतः वह राजा सन्तानके विषयमें अत्यन्त चिन्तित हुआ और जप-ध्यानपूर्वक देवीकी आराधना करने लगा। तब उसकी कठोर तपस्यासे देवी प्रसन्न हो गयीं और उससे यह वचन बोलीं—हे सुव्रत! वर माँगो॥ १८-१९॥

श्रुतकीर्ति बोला—हे देवि! यदि आप [मुझपर] प्रसन्न हैं तो मुझे सुन्दर पुत्र दीजिये। हे देवि! आपकी कृपासे अन्य किसी भी वस्तुका अभाव नहीं है॥ २०॥ उसका यह वचन सुनकर पवित्र मुसकानवाली देवीने कहा—हे राजन्! तुमने अत्यन्त दुर्लभ वर माँगा है; फिर भी कृपावश मैं तुम्हें [अवश्य] दूँगी। किन्तु हे राजेन्द्र! सुनिये, यदि परम गुणी पुत्र चाहते हो तो वह केवल सोलह वर्ष जीवित रहेगा और यदि रूप तथा विद्यासे विहीन पुत्र चाहते हो तो दीर्घजीवी होगा॥ २१-२२$^{1}/_{2}$॥ देवीका यह वचन सुनकर राजा चिन्तित हो उठा और पुनः अपनी पत्नीसे परामर्श करके उसने गुणवान्

भार्यया सह सम्मन्त्र्य ययाचे गुणभूषितम्। सर्वलक्षणसम्पन्नं षोडशाब्दायुषं सुतम्॥ २४॥
आज्ञापयामास तदा देवी भक्तं नराधिपम्। आम्रवृक्षो मम द्वारे वर्तते नृपनन्दन॥ २५॥
तस्यैकं फलमादाय पत्न्यै देहि ममाज्ञया। भक्षणार्थं च सा धर्त्री गर्भं सद्यो न संशयः॥ २६॥
हृष्टो राजा तथा चक्रे पत्नी गर्भं च सा दधौ। दशमे मासि सुषुवे पुत्रं देवसुतोपमम्॥ २७॥
जातकर्मादिकं चक्रे हर्षशोकसमन्वितः। चिरायुरिति नामास्य पिता चक्रे शिवं भजन्॥ २८॥
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे चिन्तामाप सभार्यकः। ततश्चक्रे विचारं स कष्टलब्धो ह्ययं सुतः॥ २९॥
स्वसमीपे कथं मृत्युर्द्रष्टव्यो दुःखदोऽस्य तु। काशीं प्रस्थापयामास मातुलेन समं विभुः॥ ३०॥
भ्रातरं प्रार्थयामास राजपत्नी यशस्विनी। धृत्वा कार्पटिकं वेषं काशीं प्रति सुतं नय॥ ३१॥
मृत्युञ्जयः प्रार्थितोऽस्ति पुत्रार्थं तु मया पुरा। प्रेषयिष्यामि विश्वेश यात्रार्थं च जगत्पतेः॥ ३२॥
तस्मान्नेयः सुतो मेऽद्य पालनीयश्च यत्नतः। इति श्रुत्वा स्वसुर्वाक्यं स्वस्त्रीयेण समं ययौ॥ ३३॥
दिनानि कतिचिद् गच्छन्नानन्दनगरं ययौ। तत्र राजा वीरसेनो नाम्ना सर्वसमृद्धिमान्॥ ३४॥
तत्कन्या मङ्गलागौरी सर्वलक्षणसंयुता। वयोमध्यगता रम्या रूपलावण्यशालिनी॥ ३५॥
उपमानानि सर्वाणि तुच्छीकृत्योदयं गता। नगरोपवने रम्ये सखीभिः परिवारिता॥ ३६॥

तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, सोलह वर्षकी आयुवाला पुत्र माँगा॥ २३-२४॥

तब देवीने भक्तिसम्पन्न राजासे कहा—हे नृपनन्दन! मेरे मन्दिरके द्वारपर आमका वृक्ष है, उसका एक फल लाकर मेरी आज्ञासे अपनी भार्याको उसे भक्षण करने हेतु प्रदान करो, इससे वह शीघ्र ही गर्भ-धारण करेगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ २५-२६॥ प्रसन्न होकर राजाने वैसा ही किया। उसकी पत्नीने गर्भ-धारण कर लिया और दसवें महीनेमें उसने देवपुत्रतुल्य [सुन्दर] पुत्रको जन्म दिया॥ २७॥ तब हर्ष तथा शोकसे युक्त राजाने [बालकका] जातकर्म आदि संस्कार किया और शिवका स्मरण करते हुए उसका नाम चिरायु रखा॥ २८॥ इसके बाद पुत्रके सोलह वर्षके होनेपर पत्नीसहित राजा चिन्तामें पड़ गये और वे विचार करने लगे कि यह पुत्र बड़े कष्टसे प्राप्त हुआ है; मैं इसकी दुःखद मृत्यु अपने ही सामने कैसे देख सकूँगा—ऐसा विचार करके राजाने पुत्रको उसके मामाके साथ काशी भेज दिया॥ २९-३०॥ [प्रस्थानके समय] राजाकी पत्नीने अपने भाईसे कहा कि कार्पटिकका वेष धारण करके आप मेरे पुत्रको काशी ले जाइये। मैंने भगवान् मृत्युंजयसे पूर्वमें पुत्रके लिये प्रार्थना की थी और कहा था—'हे विश्वेश! आप जगत्पतिकी यात्राके लिये मैं [उस पुत्रको] अवश्य भेजूँगी।' अतः आप मेरे पुत्रको आज ही ले जाइये और सावधानीपूर्वक इसकी रक्षा कीजियेगा॥ ३१-३२ १/२॥ अपनी बहनकी यह बात सुनकर भानजेके साथ वह चल पड़ा। कई दिनोंतक चलते-चलते वह 'आनन्द' नामक नगरमें पहुँचा। वहाँ सभी प्रकारकी समृद्धियोंसे सम्पन्न वीरसेन नामवाला राजा रहता था॥ ३३-३४॥ उस राजाकी एक सर्वलक्षणसम्पन्न, युवावस्थाप्राप्त, मनोहर तथा रूपलावण्यमयी मंगलागौरी नामक कन्या थी। सभी उपमानोंको तुच्छ करके सौन्दर्य-अभिवृद्धिको

ततस्तावपि सम्प्राप्तौ चिरायुर्मातुलश्च सः। विश्रान्तिं प्रापतुस्तत्र तासां दर्शनलालसौ॥ ३७॥
क्रीडन्तीनां विनोदेन कुपिता तत्र काचन। उवाच राजतनयां सा रण्डेत्यति दुर्वचः॥ ३८॥
श्रुत्वा तदशुभं वाक्यमुवाच नृपनन्दिनी। अयोग्यं भाषसे त्वं किं मत्कुले नैव तद्विधा॥ ३९॥
प्रसादान्मङ्गलागौर्यास्तद्व्रतस्य प्रभावतः। मत्करादक्षता यस्य प्रपतिष्यन्ति मूर्धनि॥ ४०॥
विवाहे स चिरायुः स्यादल्पायुरपि चेत्सखि। ततः समस्तास्ताः कन्याः स्वं स्वं वेश्म ययुस्तदा॥ ४१॥
स एव दिवसो राजकन्यायाः पाणिपीडने। राज्ञो बाह्लीकदेशस्य दृढधर्माभिधस्य वै॥ ४२॥
सुकेतुनाम्ने पुत्राय दातुं सा निश्चिताभवत्। स सुकेतुरविद्यश्च कुरूपो बधिरस्तथा॥ ४३॥
ततस्ते मन्त्रयामासुर्नेयोऽन्योऽद्य वरः परः। अथ सिद्धे विवाहे च सुकेतुस्तत्र गच्छतु॥ ४४॥
ततश्चिरायुषं गत्वा याचिरे मातुलं प्रति। देयोऽस्मभ्यमयं बालः कार्यसिद्धिर्हि नो भवेत्॥ ४५॥
परोपकारतुल्यो हि धर्मो नास्त्यपरो भुवि। मातुलस्तद्वचः श्रुत्वा ह्यन्तर्हृष्टमना अभूत्॥ ४६॥
पूर्वं श्रुतं चोपवने कन्यावाक्यमनेन यत्। एकवारं तथाप्याह युष्माभिर्याच्यते कथम्॥ ४७॥
वस्त्रालङ्करणादीनि याच्यं कार्यस्य साधने। न वरो याच्यते क्वापि दीयते गौरवाद्धि वः॥ ४८॥

प्राप्त वह कन्या [किसी समय] सखियोंके साथ नगरके उपवनमें [क्रीडा करनेके लिये] गयी हुई थी॥ ३५-३६॥ उसी समय वह चिरायु तथा उसका मामा—वे दोनों भी वहाँ पहुँच गये और उन कन्याओंको देखनेकी लालसासे वहीं विश्राम करने लगे॥ ३७॥ [इसी बीच] विनोदपूर्वक क्रीडा करती हुई उन कन्याओंमेंसे किसी एकने कुपित होकर राजकुमारीको रंडा—यह कुवचन कह दिया॥ ३८॥ तब उस अशुभ वचनको सुनकर राजकुमारीने कहा—'तुम अनुचित बात क्यों बोल रही हो; मेरे कुलमें इस प्रकारकी तो कोई नहीं है। मंगलागौरीकी कृपासे तथा उनके व्रतके प्रभावसे विवाहके समय जिसके सिरपर मेरे हाथसे अक्षत पड़ेंगे, हे सखि! वह यदि अल्प आयुवाला होगा तो भी चिरंजीवी हो जायगा।' इसके बाद वे सभी कन्याएँ अपने-अपने घर चली गयीं॥ ३९—४१॥ वही दिन राजकुमारीके विवाहका था। बाह्लीक देशके दृढ़धर्मा नामक राजाके सुकेतु नामवाले पुत्रके साथ उसका विवाह निश्चित किया गया था। वह सुकेतु विद्याहीन, कुरूप तथा बहरा था॥ ४२-४३॥ तब [सुकेतुके साथ आये हुए] उन लोगोंने विचार किया कि इस समय कोई दूसरा श्रेष्ठ वर ले जाना चाहिये और विवाह सम्पन्न हो जानेके अनन्तर वहाँ सुकेतु पहुँचे॥ ४४॥ तदनन्तर चिरायुके पास जाकर उन लोगोंने उसके मामासे याचना की कि आप इस बालकको हमें दे दीजिये, जिससे हमारा कार्य सिद्ध हो जाय; इस पृथ्वीपर परोपकारके समान दूसरा कोई धर्म नहीं है॥ ४५१/२॥ उनकी बात सुनकर चिरायुका मामा मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुआ; क्योंकि इसने उपवनमें पहले ही कन्या मंगलागौरीकी बात सुन ली थी। फिर भी उसने एक बार कहा कि आपलोग इसे किसलिये माँग रहे हैं? कार्यकी सिद्धिहेतु वस्त्र, अलंकार आदि माँगे जाते हैं; वर तो कहीं भी माँगा नहीं जाता तथापि आप लोगोंका सम्मान

विवाहं साधयामासुर्नीत्वा तत्र चिरायुषम्। सप्तपद्यादिके जाते रात्रौ गौरीहरान्तिके॥ ४९॥
सहासौ मङ्गलागौर्या सुप्तो हर्षसमन्वितः। तदह्नि षोडशाब्दानि समाप्तानि चिरायुषः॥ ५०॥
निशीथे सर्परूपेण कालस्तत्र समीयिवान्। तदन्तरे भूपसुता जागृता दैवयोगतः॥ ५१॥
सा ददर्श महासर्पं चकम्पे भयविह्वला। धैर्यं कृत्वा तदा बाला पूजयामास सोरगम्॥ ५२॥
उपचारैः षोडशभिर्दुग्धं पातुं ददौ बहु। प्रार्थयामास तं सर्पं दीनवाण्या च तुष्टुवे॥ ५३॥
ययाचे मङ्गलागौरी करिष्ये व्रतमुत्तमम्। जीव्यान्मे पतिरेतस्माच्चिरं जीवेत्तथा कुरु॥ ५४॥
एतस्मिन्नन्तरे सर्पः करके प्रविवेश ह। कञ्चुक्या स्वीयया सा तु चक्रे तन्मुखबन्धनम्॥ ५५॥
एतस्मिन्नन्तरे भर्ता अङ्गमोटनपूर्वकम्। जागृतश्चाब्रवीद्भार्यां क्षुधा मां बाधते प्रिये॥ ५६॥
मातुः सकाशं गत्वा सा आनयामास पायसम्। लड्डुकादि च तद्दत्तं बुभुजे प्रीतमानसः॥ ५७॥
हस्तक्षालनकाले तु तद्धस्तान्मुद्रिकापतत्। ताम्बूलं भक्षयित्वा तु प्रसुप्तः पुनरेव सः॥ ५८॥
ततः सा करकं त्यक्तुमगच्छत्तु विधेर्गतिः। हारकान्तिं बहिर्दृष्ट्वा स्फुरन्तीं विस्मयं ययौ॥ ५९॥
दृष्ट्वा घटस्थं तं हारं स्वकण्ठे च दधार सा। किञ्चिन्निशावशेषे तु मातुलस्तं निनाय सः॥ ६०॥

रखनेके लिये मैं इसे दे रहा हूँ॥ ४६—४८॥

इसके बाद चिरायुको वहाँ ले जाकर उन लोगोंने विवाह सम्पन्न कराया। सप्तपदी आदिके हो जानेपर रात्रिमें शिव-पार्वतीकी प्रतिमाके समक्ष उस चिरायुने हर्षयुक्त होकर मंगलागौरीके साथ शयन किया। उसी दिन चिरायुके सोलह वर्ष पूर्ण हो चुके थे और अर्धरात्रिमें साक्षात् काल सर्परूपमें वहाँ आ गया। इसी बीच संयोगवश वह राजकुमारी जाग गयी॥ ४९—५१॥ उसने उस महासर्पको देखा और वह भयसे व्याकुल होकर काँपने लगी। तब उस कन्याने धैर्य धारण करके सोलहों उपचारोंसे सर्पकी पूजा की और पीनेके लिये उसे दुग्ध प्रदान किया। उसने दीनताभरी वाणीमें उस सर्पकी प्रार्थना और स्तुति की। मंगलागौरी प्रार्थना करने लगी कि मैं उत्तम व्रत करूँगी, इससे मेरे पति जीवित रहें; ये जिस तरहसे चिरकालतक जीवित रहें, आप वैसा कीजिये॥ ५२—५४॥ इतनेमें सर्प [वहाँ स्थित एक] कमण्डलुमें प्रवेश कर गया और उस मंगलागौरीने अपनी कंचुकीसे उस कमण्डलुका मुँह बाँध दिया॥ ५५॥ इसी बीच उसका पति अँगड़ाई लेकर जग गया और अपनी पत्नीसे बोला—हे प्रिये! मुझे भूख लगी है॥ ५६॥ तब अपनी माताके पास जाकर वह खीर, लड्डू आदि ले आयी और उसके द्वारा प्रदत्त भोज्य पदार्थको उसने प्रसन्नमन होकर खाया॥ ५७॥ [भोजनके पश्चात्] हाथ धोते समय उसके हाथसे अँगूठी गिर पड़ी। ताम्बूल खाकर वह पुनः सो गया॥ ५८॥ इसके बाद मंगलागौरी कमण्डलुको फेंकनेके लिये जाने लगी। विधिकी कैसी गति है कि [उस कमण्डलुमेंसे] बाहरकी ओर जगमग करती हुई हारकान्तिको देखकर वह आश्चर्यचकित हो गयी॥ ५९॥ घटमें स्थित उस हारको उसने अपने कण्ठमें धारण कर लिया। इसके बाद

ततस्ते वरपक्षीयाः सुकेतुं तत्र चानयन्। दृष्ट्वा तं मंगलागौरी उवाचायं न मे पतिः॥ ६१॥
तामूचुस्ते ततः सर्वे किमिदं भाषसे शुभे। परिचायकमस्तीह किञ्चित्ते तद्वदस्व नः॥ ६२॥

मङ्गलागौर्युवाच

मे दत्तं येन रात्रौ च नवरत्नाङ्गुलीयकम्। अस्याङ्गुलौ तन्निक्षिप्य पश्यध्वं परिचायकम्॥ ६३॥
पत्या दत्तोऽस्ति मे हारो रात्रौ तद्रत्नसञ्चयः। कीदृशोऽनेन वाच्योऽसौ प्रतिवीरपरान्वितम्॥ ६४॥
किञ्चाम्रसेचने रात्रौ तत्पदं कुङ्कुमान्वितम्। ऊरौ मे वर्तते तच्च सर्वे पश्यन्तु माचिरम्॥ ६५॥
किञ्च रात्रौ भाषणादि भक्षणादि च यत्कृतम्। तदनेन च वक्तव्यं तदा स्यान्मे पतिः स्वयम्॥ ६६॥
एवं श्रुत्वा तु तद्वाक्यं साधु साध्विति चाब्रुवन्। एकस्यापि न योगोऽभूत्तदा सर्वैर्निषेधितः॥ ६७॥
तदा ते वरपक्षीया जग्मुः सर्वे यथागतम्। जनको मङ्गलागौर्याः श्रुतकीर्तिः कुलोद्वहः॥ ६८॥
अन्नपानादिकं सत्रं चकार सुमहामनाः। वरपक्षस्य वृत्तान्तः श्रुतः कर्णापकर्णतः॥ ६९॥
स्वरूपस्य कुरूपत्वादानीतः कश्चनादृतः। स्थापयामास सौधे तु कन्यां जवनिकावृताम्॥ ७०॥
एवं गते हायने तु यात्रां कृत्वा समातुलः। चिरायुः प्रययौ तत्र किं जातमवलोकितुम्॥ ७१॥
तं सा जालान्तराद् दृष्ट्वा लोकोत्तरमुदान्विता। पितरौ कथयामास मम भर्ता समागतः॥ ७२॥

कुछ रात शेष रहते ही चिरायुका मामा [आकर] उसे ले गया॥ ६०॥ इसके बाद वरपक्षके लोग सुकेतुको वहाँ ले आये। उसे देखकर मंगलागौरीने कहा कि यह मेरा पति नहीं है॥ ६१॥ तब उन सभीने उससे कहा—हे शुभे! तुम यह क्या बोल रही हो? यहाँ तुम्हारा कोई परिचायक हो तो उसे हम लोगोंको बताओ॥ ६२॥

मंगलागौरी बोली—जिसने रात्रिमें नौ रत्नोंसे बनी अँगूठी दी है, उसकी अँगुलीमें इसे डालकर परिचायक (निशानी) देख लें। मेरे पतिने रात्रिमें मुझे जो हार दिया था; उसके रत्नोंका समुदाय कैसा है, इस बातको यह बताये; यह तो कोई अन्य ही है। इसके अतिरिक्त रात्रिमें आम सींचते समय उनका पैर कुमकुमसे लिप्त हो गया था; वह मेरी जांघपर अब भी विद्यमान है, उसे आपलोग शीघ्र देख लें। साथ ही रातमें परस्पर भाषण तथा भोजन आदि जो कुछ किया गया था, उसे यह बता दे, तब यह निश्चय ही मेरा पति है॥ ६३—६६॥ इस प्रकार उसका यह वचन सुनकर सभी कहने लगे ठीक है, ठीक है। किन्तु जब एक भी बात न मिली तब सभीने सुकेतुको उसका पति होनेसे निषिद्ध कर दिया और वे वरपक्षवाले जिस तरह आये थे, उसी तरह चले गये॥ ६७१/२॥ तत्पश्चात् अपने वंशको बढ़ानेवाले, महान् यशसे सम्पन्न तथा परम मनस्वी मंगलागौरीके पिताने अन्न, पान आदिका सत्र चलाया। उन्होंने वरपक्षका वृत्तान्त कानों-कान सुन लिया कि स्वरूपसे कुरूप होनेके कारण लोगोंके द्वारा किसी अन्यको वरके रूपमें आदरपूर्वक लाया गया था। तब उन्होंने अपनी कन्याको पर्देके भीतर बैठा दिया॥ ६८—७०॥ इस प्रकार एक वर्ष बीतनेपर यात्रा करके वह अपने मामाके साथ यह देखनेके लिये आया कि [विवाहके पश्चात्] वहाँ क्या हुआ? तब उसे गवाक्षके भीतरसे देखकर वह मंगलागौरी अत्यन्त प्रसन्न हुई और माता-पितासे बोली कि मेरे पति आ गये हैं॥ ७१-७२॥

सुहृद्गणं समाहूय पूर्वोक्तं परिचायकम्। दृष्ट्वा सर्वमपि ह्यस्मै ददौ कन्यां शुचिस्मिताम्॥ ७३॥
शिष्टैः परिणयोत्साहं कारयामास भूपतिः। वस्त्राण्याभरणादीनि सेनामश्वान्गजान् रथान्॥ ७४॥
प्रस्थापयामास नृपो दत्वान्यदपि भूरिशः। पत्न्या सह चिरायुः स मातुलेन समन्वितः॥ ७५॥
स्वपुरं सेनया सार्धं जगाम कुलनन्दनः। श्रुत्वा जनमुखात्तं तु ह्यागतं पितरावुभौ॥ ७६॥
विश्वासं लेभतुर्नैव स्यात्कथं दैवमन्यथा। एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः पित्रोरन्तिकमेव सः॥ ७७॥
पपात पादयोर्भक्त्या पित्रोः स्नेहपरिप्लुतः। मूर्ध्न्यवघ्राय तं पुत्रं परमां मुदमापतुः॥ ७८॥
स्नुषापि मङ्गलागौरी श्वशुरौ प्रणनाम सा। अङ्के निवेश्य तां श्वश्रूः पप्रच्छोदन्तमञ्जसा॥ ७९॥
स्नुषापि मङ्गलागौर्या व्रतमाहात्म्यमुत्तमम्। कथयामास तत्सर्वं यथावृत्तं महामुने॥ ८०॥
इत्येतत्कथितं तुभ्यं मङ्गलागौरिकाव्रतम्। य एतच्छृणुयात्कश्चिद्यश्चापि परिकीर्तयेत्॥ ८१॥
मनोरथास्तस्य सर्वे सिध्यन्त्यत्र न संशयः॥ ८२॥

सूत उवाच

सनत्कुमारमित्येवं कथयामास धूर्जटिः। स चानन्दं परं लेभे श्रुत्वा कार्यकरं व्रतम्॥ ८३॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये मङ्गलागौरीव्रतकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

तब राजाने अपने सुहृज्जनोंको बुलाकर पूर्वमें कहे गये सभी परिचायकों (निशानी)-को देखकर मन्द मुसकानवाली अपनी कन्या चिरायुको सौंप दी। राजाने शिष्टजनोंको साथ लेकर विवाहका उत्सव कराया। इसके बाद राजा वीरसेनने वस्त्र, आभूषण आदि, सेना, घोड़े, हाथी, रथ और अन्य भी बहुत-सी सामग्री देकर उन्हें विदा किया॥ ७३-७४१/२ ॥ इसके बाद अपने कुलको आनन्दित करनेवाला वह चिरायु पत्नी तथा मामाको साथ लेकर सेनाके साथ अपने नगर पहुँचा। तब लोगोंके मुखसे उसे आया हुआ सुनकर उसके माता-पिताको विश्वास नहीं हुआ; उन्होंने सोचा कि प्रारब्ध अन्यथा कैसे हो सकता है!॥ ७५-७६१/२ ॥ इतनेमें वह अपने माता-पिताके पास आ गया और स्नेहसे परिपूर्ण वह चिरायु भक्तिपूर्वक उनके चरणोंपर गिर पड़ा। तब उस पुत्रका मस्तक सूँघकर उन दोनोंने परम आनन्द प्राप्त किया। पुत्रवधू मंगलागौरीने भी सास-ससुरको प्रणाम किया। तब सास उसे अपनी गोदमें बैठाकर सारा वृत्तान्त शीघ्रतापूर्वक पूछने लगी॥ ७७—७९ ॥ हे महामुने! तब पुत्रवधूने भी मंगलागौरीके उत्तम व्रतमाहात्म्य तथा जो कुछ घटित हुआ था, वह सब वृत्तान्त बताया॥ ८० ॥ [हे सनत्कुमार!] मैंने आपसे इस मंगलागौरीव्रतका वर्णन कर दिया। जो कोई भी इसका श्रवण करता है अथवा जो इसे कहता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं; इसमें सन्देह नहीं है॥ ८१-८२ ॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] इस प्रकार शिवजीने सनत्कुमारको यह [मंगलागौरीव्रत] बताया और उन्होंने सभी कार्योंको पूर्ण करनेवाले इस व्रतको सुनकर महान् आनन्द प्राप्त किया॥ ८३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'मंगलागौरीव्रतकथन' नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

बुधगुर्वोरथो वक्ष्ये व्रतं पापप्रणाशनम्। यत्कृत्वा श्रद्धया मर्त्यः परां सिद्धिमवाप्नुयात्॥ १॥
प्रजापतिः शीतरश्मिं द्विजराज्येऽभ्यषेचयत्। स कदाचिद् गुरोर्भार्यां तारानाम्नीं ददर्श ह॥ २॥
रूपयौवनसम्पन्नां लावण्यमदगर्विताम्। मोहितो रूपसम्पत्या कामबाणवशं गतः॥ ३॥
स्वगृहे स्थापयित्वा तु बलात्स बुभुजे च ताम्। एवं बहुतिथे काले गते पुत्रो बभूव ह॥ ४॥
बुधो बुधो रूपशाली सर्वलक्षणसंयुतः। अन्वेषयन्गुरुः पत्नीं ज्ञातवाञ्छशिसद्मनि॥ ५॥
ययाचे देहि मे भार्यां त्वं कथं गुरुतल्पगः। गुरुतल्पकृतात्पापान्निष्कृतिस्ते कथं भवेत्॥ ६॥
महापातकसंयोगे कथं ते बुद्धिरादृता। गुप्तमेव प्रयच्छेमां गुरुभार्यां मम प्रियाम्॥ ७॥
रहसि प्रायश्चित्तं च कृत्वा निष्कल्मषो भव। नोचेदिन्द्रसमीपे ते आगः सङ्कथयाम्यहम्॥ ८॥
इत्येवं बहुधोक्तोऽपि न ददौ तां कलङ्कितः। तदा देवसभां गत्वा कथयामास गीष्पतिः॥ ९॥
चन्द्रेण मे ह्यपहृता भार्या तां न ददाति सः। देवराजोऽसि शक्र त्वं दापनीया त्वयाज्ञया॥ १०॥
नोचेत्ते तत्कृतं पापं सङ्क्रमिष्यत्यसंशयम्। राजा राष्ट्रकृतं पापं भुङ्क्ते शास्त्रविनिर्णयात्॥ ११॥

आठवाँ अध्याय

श्रावणमासमें किये जानेवाले बुध-गुरुव्रतका वर्णन

ईश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] अब मैं समस्त पापोंका नाश करनेवाले बुध-गुरुव्रतका वर्णन करूँगा, जिसे श्रद्धापूर्वक करके मनुष्य परमसिद्धि प्राप्त करता है॥ १॥ ब्रह्माजीने चन्द्रमाको ब्राह्मणोंके राजाके रूपमें अभिषिक्त किया। किसी समय उसने रूप तथा यौवनसे सम्पन्न तारा नामक गुरुपत्नीको देखा। उसकी रूपसम्पदासे मोहित होकर वह कामके वशीभूत हो गया और उसे उसने अपने घरमें रख लिया। इस प्रकार बहुत दिन बीतनेपर उसे बुध नामक एक पुत्र हुआ; जो बुद्धिमान्, सौन्दर्यशाली तथा सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त था॥ २—४$^{१}/_{२}$॥ गुरु बृहस्पतिको ज्ञात हुआ कि तारा चन्द्रमाके घरमें विद्यमान है। तब उन्होंने चन्द्रमासे कहा कि मेरी पत्नीको वापस कर दो, अनेक तरहसे समझानेपर भी जब चन्द्रमाने ताराको नहीं दिया, तब बृहस्पतिने देवताओंकी सभामें जाकर देवराज इन्द्रको यह वृत्तान्त बतलाया और कहा—हे शक्र! आप देवताओंके राजा हैं अत: अपनी आज्ञासे आप उसे दिलायें, अन्यथा उस चन्द्रमाके द्वारा किया गया पाप आपको ही नि:सन्देह लगेगा;

दुर्बलस्य बलं राजा पुराणे त्विति भण्यते। इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं चन्द्रमाहूय वासवः॥ १२॥
आज्ञापयामास रुषा देहि भार्यां गुरोर्विधो। अन्यदाराभिगमनं केवलं पापसंज्ञितम्॥ १३॥
गुरुदाराभिगमनं महापातकसंज्ञितम्। तस्माच्चन्द्र गुरोर्भार्यां देहि त्वमविचारयन्॥ १४॥
देवेन्द्रवचनं श्रुत्वा निशापतिरथाब्रवीत्। दास्ये त्वदाज्ञया भार्यां पुत्रं नैव ददाम्यहम्॥ १५॥
मत्सकाशात्सुतो जातो मम वैभवयुग्यतः। गीष्पतिस्त्वाह मत्तोऽभूत्ततः संशयिताः सुराः॥ १६॥
ततस्ते निर्णयं चक्रुर्माता जानाति चाङ्गजम्। पप्रच्छुस्ते तदा तारां केनायं गर्भ आहितः॥ १७॥
सत्यं वदस्व कल्याणि न मिथ्या वक्तुमर्हसि। तदा लज्जान्विता तारा औरसोऽयं विधोः सुतः॥ १८॥
गीष्पतेः क्षेत्रजश्चातो योग्यः स्यात्तस्य दीयताम्। शास्त्रतस्ते विचार्याथ ददुश्चन्द्राय तं बुधम्॥ १९॥
तदा खिन्नं गुरुं दृष्ट्वा ददुर्देवा वरं तयोः। गच्छस्व त्वं चन्द्र गृहं तवाप्यस्ति सुतो ह्ययम्॥ २०॥
चन्द्रस्य गीष्पतेश्चायं ग्रहत्वं यात्वसौ सुतः। अन्यच्चापि सुराचार्य गृहाणेमं वरं शुभम्॥ २१॥
यः करिष्यति मेधावी मिलित्वा युवयोर्व्रतम्। तस्य स्यात्सकला सिद्धिः सत्यं सत्यं न संशयः॥ २२॥
श्रावणे मासि सम्प्राप्ते शङ्करस्य महाप्रिये। बुधगुर्वोर्वासरयोर्ये करिष्यन्ति पूजनम्॥ २३॥
नैवेद्यं दधिभक्तेन साधने मूलकं भवेत्। युवयोर्मूर्तिमालिख्य स्थानभेदात्फलं लभेत्॥ २४॥
बालान्दोलोपरिस्थाने लिखित्वा पूजयेद्यदि। स पुत्रं लभते दीर्घायुषं सर्वगुणान्वितम्॥ २५॥
कोशागारे लिखित्वा तु पूजयेद्यदि मानवः। तस्य कोशा विवर्धन्ते क्षीयन्ते न कदाचन॥ २६॥

क्योंकि शास्त्रनिर्णयके अनुसार प्रजाके द्वारा किये गये पापको राजा भोगता है। पुराणमें भी ऐसा कहा गया है कि दुर्बलका बल राजा होता है॥ ५—११$^{१}/_{२}$॥ गुरुका यह वचन सुनकर इन्द्रने चन्द्रमाको बुलाकर रोषपूर्वक आदेश दिया—हे विधो! गुरुकी भार्याको वापस दे दो, देवेन्द्रका वचन सुनकर चन्द्रमाने कहा—मैं आपकी आज्ञासे ताराको तो दे दूँगा, किंतु इस पुत्रको नहीं दूँगा; शास्त्रके अनुसार विचार करके देवताओंने उस बुधको चन्द्रमाको दे दिया॥ १२—१९॥

इसके बाद गुरुको उदास देखकर देवताओंने उन दोनोंको वर प्रदान किया—हे चन्द्र! अब तुम घर जाओ, यह तुम्हारा भी पुत्र है और बृहस्पतिका भी है, यह तुम्हारा पुत्र ग्रहोंमें प्रतिष्ठित होगा। हे सुराचार्य! आप यह दूसरा भी शुभ वर ग्रहण कीजिये कि जो बुद्धिमान् व्यक्ति आप दोनों (बुध-गुरु)-का व्रत मिलाकर करेगा, उसकी सम्पूर्ण सिद्धि होगी, यह सत्य है, यह सत्य है; इसमें सन्देह नहीं है। शंकरजीके लिये अत्यन्त प्रिय इस श्रावणमासके आनेपर जो लोग बुधवार तथा गुरुवारको पूजन-व्रत करेंगे, उन्हें सिद्धि प्राप्त होगी॥ २०—२३॥

इस व्रतमें दही तथा भातका नैवेद्य व्रतसिद्धिमें मूल हेतु है। स्थानभेदसे आप दोनोंकी मूर्ति लिखकर पूजन करनेसे भिन्न-भिन्न फल प्राप्त होता है। यदि कोई हिंडोलेके ऊपरी स्थानपर आप दोनोंकी मूर्ति लिखकर पूजन करे तो वह सर्वगुणसम्पन्न तथा दीर्घायु पुत्र प्राप्त करेगा। यदि मनुष्य कोशागारमें मूर्तिको लिखकर पूजन करता है तो उसके कोश

पाकागारे पाकवृद्धिर्देवागारे तु तत्कृपा। शय्यागारे पूजने तु स्त्रीवियोगो न कर्हिचित्॥ २७॥

धान्यागारे धान्यवृद्धिरेवं तत्तत्फलं लभेत्। सप्तवर्षाणि कृत्वैवं तत उद्यापनं चरेत्॥ २८॥

अधिवास्याह्नि पूर्वस्मिन् रात्रौ जागरणं चरेत्। सुवर्णप्रतिमां कृत्वा पूजयित्वा यथाविधि॥ २९॥

उपचारैः षोडशभिस्ततो होमं समाचरेत्। तिलैराज्येन चरुणा तथैव च समिद्धजैः॥ ३०॥

अपामार्गाश्वत्थमयैस्ततः पूर्णाहुतिं चरेत्। स्वस्त्रीयमातुलौ चैव भोजनीयौ प्रयत्नतः॥ ३१॥

ब्राह्मणान्भोजयेदन्यान्भुञ्जीत स्वयमेव च। एवं कृते सप्तवर्षं सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ ३२॥

विद्याकामनया कुर्याद्वेदशास्त्रार्थविद्भवेत्। बुधस्तु बुधतां दद्याद् गुरुस्तु गुरुतां तथा॥ ३३॥

सनत्कुमार उवाच

भगवन्यत्त्वया प्रोक्तं भोज्यौ स्वस्त्रीयमातुलौ। एतन्निमित्तं कथय यदि वक्तुं क्षमं भवेत्॥ ३४॥

ईश्वर उवाच

पुरा कौचिद् द्विजन्मानौ दीनौ स्वस्त्रीयमातुलौ। दरिद्रौ पर्यटन्तौ तावुदरार्थे कृतश्रमौ॥ ३५॥

बढ़ते हैं और वे कभी क्षयको प्राप्त नहीं होते। इसी प्रकार पाकालयमें पूजन करनेसे पाकवृद्धि और देवालयमें पूजन करनेसे उनकी कृपा प्राप्त होती है। शय्यागारमें लिखकर पूजन करनेसे स्त्रीका वियोग कभी नहीं होता है। धान्यागारमें लिखकर पूजन करनेसे धान्यकी वृद्धि होती है। इस प्रकार मनुष्य उन-उन फलोंको प्राप्त करता है॥ २४—२७१/२ ॥ इस प्रकार सात वर्षतक करनेके अनन्तर उद्यापन करना चाहिये। [उद्यापनके] पूर्व दिन अधिवासन करके रात्रिमें जागरण करना चाहिये। सुवर्णकी प्रतिमा बनाकर विधिपूर्वक सोलह उपचारोंसे पूजन करनेके पश्चात् तिल, घृत, चरु और अपामार्ग तथा अश्वत्थसे युक्त समिधाओंसे होम करना चाहिये, अन्तमें पूर्णाहुति देनी चाहिये। तदनन्तर मामा और भानजेको प्रयत्नपूर्वक भोजन कराना चाहिये। इसके बाद ब्राह्मणोंको तथा अन्य लोगोंको भी भोजन कराना चाहिये और स्वयं भी भोजन करना चाहिये॥ २८—३११/२ ॥ इस विधिसे सात वर्षतक करनेपर मनुष्य सभी मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है। जो इसे विद्याकी कामनासे करता है, वह वेद और शास्त्रोंके अर्थोंको जाननेवाला हो जाता है। बुध बुद्धि प्रदान करते हैं और गुरु बृहस्पति गुरुता प्रदान करते हैं॥ ३२-३३ ॥

सनत्कुमार बोले—हे भगवन्! आपने जो यह कहा है कि [इस अवसरपर] मामा तथा भानजेको भोजन करना चाहिये। यदि बतानेयोग्य हो तो इसका कारण बताइये॥ ३४॥

ईश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] पूर्वकालमें अत्यन्त दीन तथा दरिद्र कोई दो ब्राह्मण थे, वे मामा-भानजे थे। उदरपूर्तिहेतु

कस्मिंश्चिन्नगरे रम्ये गतौ धान्यं प्रयाचितुम्। गृहे गृहेऽपश्यतां तौ श्रावणे मासि तद्व्रतम्॥ ३६॥
तत्तद्द्वारे व्रतं तत्तद् बुधगुर्वोर्न कुत्रचित्। अन्योन्यं तौ तदा तत्र विचारं चक्रतुश्चिरात्॥ ३७॥
वासराणां तु सर्वेषां व्रतं सर्वत्र दृश्यते। बुधगुर्वोर्विना तस्मादावाभ्यां तद्व्रतं शुभम्॥ ३८॥
अनुच्छिष्टं यतश्चास्ति तस्मात्कर्तव्यमादरात्। विध्यज्ञानात्परं तस्य संशयं प्रापतुः पुनः॥ ३९॥
तावत्तस्यां निशायां तु स्वप्नोऽभूद्विधिदर्शनः। तथा तौ चक्रतुः पश्चात्परां सम्पदमापतुः॥ ४०॥
प्रत्यहं वृद्धिगा चाभूत्सम्पत्तिः सर्वगोचरा। एवं कृत्वा सप्तवर्षं पुत्रपौत्रादिसंयुतौ॥ ४१॥
साक्षाद्भूतौ बुधगुरू वरं च ददतुस्तयोः। आवाभ्यामावयोर्यस्माद् व्रतमेतत्प्रवर्तितम् ॥ ४२॥
इति चारभ्य तस्माद्यः करिष्यति शुभं व्रतम्। स्वस्त्रीयमातुलौ तेन भोजनीयौ प्रयत्नतः॥ ४३॥
एतद्व्रतप्रभावेण सर्वसिद्धिः परा भवेत्। अन्ते चास्मल्लोकवासो यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ ४४॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये बुधगुरुव्रतकथनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

परिश्रमपूर्वक भ्रमण करते हुए वे दोनों किसी नगरमें अन्न माँगनेके लिये गये थे। उन्होंने घर-घरमें श्रावणमासमें प्रत्येक वारको उस वारका व्रत होते हुए देखा, किंतु कहीं भी बुध-गुरुका व्रत नहीं देखा। तब उन्होंने वहाँ बहुत देरतक परस्पर विचार किया कि सभी वारोंका व्रत तो सर्वत्र दिखायी पड़ रहा है, किंतु बुध-गुरुका कहीं नहीं, अतः चूँकि यह व्रत अनुच्छिष्ट है, इसलिये हम दोनोंको चाहिये कि इस शुभ व्रतका अनुष्ठान आदरपूर्वक करें॥ ३५—३८१/२ ॥ किंतु [हे सनत्कुमार!] इसकी विधि न जाननेके कारण वे दोनों संशयमें पड़ गये। तब उसी रात्रिमें उन्हें स्वप्नमें इस व्रतकी विधि दृष्टिगोचर हो गयी। इसके बाद उन्होंने उसकी विधिके अनुसार व्रतको किया, जिससे उन्होंने अपार सम्पदा प्राप्त की। प्रतिदिन उनकी सम्पत्ति बढ़ने लगी और सभी लोगोंको ज्ञात भी हो गयी। इस प्रकार सात वर्षतक करके वे पुत्र, पौत्र आदिसे सम्पन्न हो गये॥ ३९—४१ ॥ तत्पश्चात् [उनके ऊपर प्रसन्न होकर] बुध और गुरु प्रकट हुए और उन्होंने उन दोनोंको यह वर दिया—आप दोनोंने हमदोनोंके निमित्त इस व्रतको प्रवर्तित किया है, अतः आजसे जो कोई भी इस शुभ व्रतको करे उसे [व्रतकी समाप्तिपर] मामा तथा भानजेको प्रयत्नपूर्वक भोजन कराना चाहिये। इस व्रतके प्रभावसे उसे सभी कामनाओंकी परम सिद्धि हो जाती है और अन्तमें चन्द्रसूर्यपर्यन्त उसका हमारे लोकमें वास होता है॥ ४२—४४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'बुधगुरुव्रतकथन' नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि शुक्रवारकथानकम्। यच्छ्रुत्वा श्रद्धया मर्त्यो मुच्यते सर्वसङ्कटात्॥ १॥

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। सुशीलो नाम राजासीत्पाण्ड्यवंशसमुद्भवः॥ २॥

बहुप्रयत्नशीलोऽपि अपत्यं नैव चाप्तवान्। तस्य भार्या सुकेशीति नाम्ना सर्वगुणान्विता॥ ३॥

अपत्यं न यदा लेभे महाचिन्तामवाप सा। स्त्रीस्वभावात्तदा वस्त्रखण्डानि प्रतिमासिके॥ ४॥

बध्वोदरं महच्चक्रे महासाहसमानसा। अन्वेषयद्गर्भिणीं सा स्वप्रसूत्यनुसारिणीम्॥ ५॥

भाविना दैवयोगेन गृहिणी तत्पुरोधसः। गर्भिण्यासीत्तदा राज्ञः पत्नी कपटकारिणी॥ ६॥

प्रसूतिकारिणीं काञ्चित्तत्कार्ये सा न्ययोजयत्। दत्त्वा बहुधनं तस्यै सूतिकायै रहो गता॥ ७॥

राजा चक्रे पुंसवनं तथैवानवलोभनम्। सीमन्तोन्नयने काले महाहर्षसमन्वितः॥ ८॥

तस्याः प्रसूतिसमयं श्रुत्वा सापि तथाकरोत्। आद्यगर्भवती यस्मात्सा पुरोधःकुटुम्बिनी॥ ९॥

अज्ञा प्रसूतिकाकृत्ये सूतिकावचने स्थिता। तां सूतिका वञ्चयन्ती चक्रे तन्नेत्रबन्धनम्॥ १०॥

नौवाँ अध्याय

शुक्रवार-जीवन्तिकाव्रतकी कथा

ईश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] इसके बाद अब मैं शुक्रवारव्रतका आख्यान कहूँगा, जिसे सुनकर मनुष्य सम्पूर्ण आपदासे मुक्त हो जाता है॥ १॥ लोग इससे सम्बन्धित एक प्राचीन इतिहासका वर्णन करते हैं। पाण्ड्यवंशमें उत्पन्न एक सुशील नामक राजा था। अत्यधिक प्रयत्न करनेपर भी उसे पुत्रप्राप्ति नहीं हो सकी॥ २$^{1}/_{2}$॥ उसकी सर्वगुणसम्पन्न सुकेशी नामक भार्या थी। जब उसे सन्तान न हुई, तब वह बड़ी चिन्तामें पड़ गयी। तब स्त्री-स्वभावके कारण अति साहसयुक्त मनवाली उसने [मासिक धर्मके समय] प्रत्येक महीनेमें वस्त्रके टुकड़ोंको अपने उदरपर बाँधकर उदरको बड़ा बना लिया और अपनी प्रसूतिका अनुकरण करनेवाली किसी अन्य गर्भिणी स्त्रीको ढूँढ़ने लगी॥ ३—५॥ भावी दैवयोगसे उसके पुरोहितकी पत्नी गर्भिणी थी। तब कपट करनेवाली राजाकी पत्नीने किसी प्रसव करानेवालीको इस कार्यमें लगा दिया और उसे एकान्तमें बहुत धन देकर वह रानी चली गयी॥ ६-७॥ तत्पश्चात् [रानीको गर्भिणी जानकर] राजाने उसका पुंसवन और अनवलोभनसंस्कार किया। [आठवाँ महीना होनेपर] सीमन्तोन्नयन-संस्कारके समय राजा अत्यन्त हर्षित हुए॥ ८॥ इसके बाद उस पुरोहितपत्नीका प्रसवकाल सुनकर वह रानी भी उसीके समान [सभी प्रसवसम्बन्धी चेष्टाएँ] करने लगी। पुरोहितकी पत्नी चूँकि पहली बार गर्भवती थी, अतः प्रसूतिकार्यके प्रति वह अनभिज्ञ थी और केवल प्रसव करानेवाली (दाई)-के ही कहनेमें स्थित थी, तब उस दाईने पुरोहितपत्नीके साथ छल करते हुए उसके नेत्रोंपर पट्टी बाँध दी और [प्रसवके अनन्तर]

प्रेषयामास तं पुत्रं सा राजमहिषीं प्रति। कस्यचिद्धस्ततः शीघ्रमज्ञातमपि केनचित्॥ ११॥
राज्ञी गृहीत्वा तं पुत्रं प्रसूतास्मीत्यघोषयत्। पुरोधःस्त्रीनेत्रबन्धं मोक्षयामास सूतिका॥ १२॥
सहानीतं मांसपिण्डं तस्यै प्रादर्शयच्च सा। विस्मयं चैव खेदं च स्वयं चक्रे तदग्रतः॥ १३॥
किमरिष्टमिदं जातं पत्या कार्यं च शान्तिकम्। सन्ततिर्नास्ति चेन्मास्तु स्वदिष्ट्या जीवितासि भोः॥ १४॥
परं संशयिता सासीत्प्रसवस्पर्शचिन्तनात्॥ १५॥

ईश्वर उवाच

राजा श्रुत्वा पुत्रजन्म जातकर्माद्यकारयत्। गजानश्वान् रथांश्चैव ब्राह्मणेभ्यो ददौ नृपः॥ १६॥
बद्धान् कारागृहे सर्वान्मोचयामास हर्षितः। सूतकान्ते नामकर्म संस्कारान्सर्वतोऽकरोत्।
चक्रे प्रियव्रत इति नाम पुत्रस्य भूमिपः॥ १७॥
श्रावणे मासि सम्प्राप्ते पुरोधोदयिता सती। जीवन्तिकां शुक्रवारे पूजयामास भक्तितः॥ १८॥
कुड्ये विलिख्य तन्मूर्तिं बहुबालसमन्विताम्। पुष्पमालिकया पूज्य पञ्चदीपैरदीपयत्॥ १९॥
गोधूमपिष्टसम्भूतैस्तानभक्षयत स्वयम्। अक्षतांश्चैव चिक्षेप यत्र मे बालको भवेत्॥ २०॥
तत्र त्वया रक्षणीयो जीवन्ति करुणार्णवे। इति प्रार्थ्य कथां श्रुत्वा नमश्चक्रे यथाविधि॥ २१॥

उस पुत्रको किसीके हाथसे रानीके पास पहुँचा दिया। इस बातको कोई भी नहीं जान सका॥ ९—११॥

तदनन्तर रानीने उस पुत्रको लेकर यह घोषित कर दिया कि मुझे पुत्र उत्पन्न हुआ है। इसके बाद दाईने पुरोहितकी पत्नीके नेत्रबन्धन खोल दिये। उसने अपने साथ लाये एक मांसपिण्डको उसे दिखा दिया और उसके समक्ष आश्चर्य तथा दुःख प्रकट करने लगी कि यह कैसा अनिष्ट हो गया, अपने पतिसे इसकी शान्ति अवश्य कराना। सन्तान न हुई तो भले ही मत हो, किंतु यह अच्छा हुआ जो तुम अपने भाग्यसे जीवित रह गयी। इसपर उस पुरोहितपत्नीको अपने प्रसवके स्पर्शचिन्तनसे बहुत सन्देह हुआ॥ १२—१५॥

ईश्वर बोले—राजाने पुत्रजन्मका समाचार सुनकर जातकर्म-संस्कार कराया और ब्राह्मणोंको हाथी, घोड़े तथा रथ प्रदान किये। उन नरेशने कारागारमें पड़े सभी कैदियोंको प्रसन्नतापूर्वक मुक्त करा दिया। तत्पश्चात् राजाने सूतकके अन्तमें नामकर्म तथा अन्य सभी संस्कार किये, उन्होंने पुत्रका नाम प्रियव्रत रखा॥ १६-१७॥ [हे सनत्कुमार!] श्रावणमासके आनेपर पुरोहितकी पत्नीने शुक्रवारके दिन भक्तिपूर्वक देवी जीवन्तिकाका पूजन किया। भीतपर अनेक बालकोंसहित देवी जीवन्तिकाकी मूर्ति लिखकर पुष्प तथा मालासे उनकी पूजा करके गोधूमकी पीठीके बनाये गये पाँच दीपक उनके सम्मुख उसने जलाये और स्वयं भी गोधूम-चूर्णका भक्षण किया और उनकी मूर्तिपर चावल फेंका तथा कहा—हे जीवन्ति! हे करुणार्णवे! जहाँ भी मेरा पुत्र विद्यमान हो आप उसकी रक्षा करना—यह प्रार्थना करके उसने कथा सुनकर यथाविधि

जीवन्तिकाप्रसादेन दीर्घायुर्बालकोऽभवत्। ररक्ष तमहोरात्रं देवी तन्मातृगौरवात्॥ २२॥
एवं काले गते राजा कालधर्ममुपेयिवान्। पितृभक्तोऽथ तत्पुत्रश्चक्रे तत्साम्परायिकम्॥ २३॥
प्रियव्रतोऽभिषिक्तोऽभूद्राज्ये मन्त्रिपुरोहितैः। पालयित्वा प्रजा राज्यं भुक्त्वा स कतिचित्समाः॥ २४॥
पित्रर्णस्य विमोक्षाय गयां गन्तुं प्रचक्रमे। राज्यभारममात्येषु स्थाप्य वृद्धेषु भक्तितः॥ २५॥
राजभावं परित्यज्य वेषं कार्पटिकं दधे। मार्गमध्ये क्वचित्पुर्यां कस्यचिद् गृहमेधिनः॥ २६॥
चक्रे वासं गृहे तस्य प्रसूता गृहिणी त्वभूत्। पुरा षष्ठ्या पञ्चमेऽह्नि तत्पुत्राः पञ्च मारिताः॥ २७॥
तदापि पञ्चमदिनेऽप्यासीत्तत्र नृपो गतः। रात्रौ सुप्ते नृपे षष्ठी बालं नेतुं समागता॥ २८॥
जीवन्त्या वारिता सा तु नृपमुल्लङ्घ्य मा व्रज। षष्ठी निषेधाज्जीवन्त्याः सा जगाम यथागता॥ २९॥
जीवितं पञ्चमदिने बालं लेभे गृहाधिपः। एतत्प्रभावः प्रायोऽयं प्रार्थयामास तं नृपम्॥ ३०॥
राजन्नद्यतने चाह्नि तव वासोऽस्तु मे गृहे। तव प्रसादान्मे बालः षष्ठोऽयं जीवितः प्रभो॥ ३१॥
एवं सम्प्रार्थितस्तेन उवाच करुणानिधिः। ततो गतो गयां राजा प्रवृत्तः *पिण्डपातने*॥ ३२॥

नमस्कार किया॥ १८—२१॥ तब जीवन्तिकाकी कृपासे वह बालक दीर्घायु हो गया और वे देवी उसकी माताकी श्रद्धा-भक्तिके कारण दिन-रात उस बालककी रक्षा करने लगीं॥ २२॥

इस प्रकार कुछ समय बीतनेपर राजाकी मृत्यु हो गयी, तब पितृभक्त उनके पुत्रने उनकी पारलौकिक क्रिया सम्पन्न की। इसके बाद मन्त्रियों तथा पुरोहितोंने प्रियव्रतको राज्यपर अभिषिक्त किया। तब कुछ वर्षोंतक प्रजाओंका पालन करके तथा राज्य भोगकर वे पितरोंके ऋणसे मुक्तिके लिये गया जानेकी तैयारी करने लगे। राज्यका भार वृद्ध मन्त्रियोंको भक्तिपूर्वक सौंपकर और स्वयंके राजा होनेके भावका त्याग करके उन्होंने कार्पटिकका वेष धारण कर लिया [और गयाके लिये प्रस्थान किया]॥ २३—२५ $^{१}/_{२}$॥ मार्गमें किसी नगरमें किसी गृहस्थके घरमें उन्होंने निवास किया। [उस समय] उस गृहस्थकी पत्नीको प्रसव हुआ था। इसके पहले षष्ठी देवीने उसके पाँच पुत्रोंको उत्पन्न होनेके पाँचवें दिन मार डाला था। राजा भी उस समय पाँचवें दिन ही वहाँ गये हुए थे॥ २६-२७ $^{१}/_{२}$॥ रातमें राजाके सो जानेपर उस बच्चेको ले जानेके लिये षष्ठी आयी। जीवन्तिका देवीने उस षष्ठीको [यह कहकर] रोका कि राजाको लाँघकर मत जाओ। तब जीवन्तिकाके निषेध करनेसे वह षष्ठी जैसे आयी थी, वैसे ही चली गयी॥ २८-२९॥ इस प्रकार उस गृहस्वामीने उस बालकको पाँचवें दिन जीवित रूपमें प्राप्त किया। ये इतने प्रभाववाले हैं—ऐसा देखकर उसने राजासे प्रार्थना की—हे राजन्! आपका निवास आजके दिन मेरे ही घरमें हो। हे प्रभो! आपकी कृपासे मेरा यह छठा पुत्र जीवित रह गया॥ ३०-३१॥ उसके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर करुणानिधि उस राजाने कहा कि मुझे

विष्णुपादे तत्र किञ्चिद्दत्त्वाश्चर्यमभूत्तदा। पिण्डस्य ग्रहणार्थं हि निःसृतं तु करद्वयम्॥ ३३॥

परं विस्मयमापन्नः संशयं प्राप भूपतिः। ब्राह्मणानुमतः पश्चात्पिण्डं विष्णुपदे ददौ॥ ३४॥

पप्रच्छ ब्राह्मणं कञ्चिज्ज्ञानिनं सत्यवादिनम्। स चाह ब्राह्मणस्तस्मै पितृद्वयकराविमौ॥ ३५॥

किमिदं तद् गृहे गत्वा मात्रे पृच्छ वदिष्यति। ततश्चिन्तापरो दुःखी हृदि नाना व्यचारयत्॥ ३६॥

यात्रां कृत्वा तत्र यातो यत्रासौ जीवितः शिशुः। तदापि पञ्चमदिनमासीत्सैव प्रसूतिका॥ ३७॥

द्वितीयोऽप्यभवत्पुत्रो रात्रौ षष्ठी समाययौ। पुनश्च जीवन्तिकया निषिद्धा साब्रवीच्च ताम्॥ ३८॥

एतस्यावश्यकं किं ते एतन्मात्रा च किं व्रतम्। क्रियते हि यतस्त्वं च एनं रक्षस्यहर्निशम्॥ ३९॥

षष्ठीवाक्यमिति श्रुत्वा जीवन्ती प्राह सुस्मिता। तन्निमित्तं निशि द्रष्टुं जाग्रदासीन्मृषा स्वपन्॥ ४०॥

संवादमुभयो राजा शुश्राव सकलं तदा। श्रावणे भृगुवारे तु एतन्माता ममार्चने॥ ४१॥

व्रतस्य नियमं सर्वं कुरुते तं वदामि ते। परिधत्ते न वसनं हरितं कञ्चुकीं तथा॥ ४२॥

तो गया जाना है, तब वे राजा गयाके लिये प्रस्थित हुए। वहाँ पिण्डदानके लिये राजा प्रवृत्त हुए, तब पिण्डदानके समय विष्णुपद (वेदी)-पर कुछ अद्भुत घटना हुई। उस पिण्डको ग्रहण करनेके लिये दो हाथ निकल आये ॥ ३२-३३ ॥ तब महान् विस्मययुक्त वे राजा संशयमें पड़ गये और पुनः [पिण्डदान करानेवाले] ब्राह्मणके कहनेपर उन्होंने विष्णुपदपर पिण्ड रख दिया ॥ ३४ ॥

इसके बाद उन्होंने किसी ज्ञानी तथा सत्यवादी ब्राह्मणसे [इस विषयमें] पूछा, तब उस ब्राह्मणने उनसे कहा कि ये दोनों हाथ आपके पितरके थे। इसमें सन्देह हो तो घर जाकर अपनी मातासे पूछ लीजिये, वह बता देगी ॥ ३५१/२ ॥ तब राजा चिन्तित तथा दुःखी हुए और मनमें अनेक बातें सोचने-विचारने लगे। वे यात्रा करके पुनः वहाँ गये जहाँ वह बालक जीवित हुआ था। उस समय भी उस स्त्रीको पुत्र उत्पन्न हुआ था और उसका वह पाँचवाँ दिन था। वह जो दूसरा पुत्र हुआ था, उसे लेनेके लिये रातमें षष्ठी आयी ॥ ३६-३७१/२ ॥ तब जीवन्तिकाके द्वारा पुनः रोके जानेपर उस षष्ठीने उससे कहा—इसका ऐसा क्या कृत्य है अथवा क्या इसकी माता तुम्हारा व्रत करती है, जो तुम दिन-रात इसकी रक्षा करती हो? तब षष्ठीका यह वचन सुनकर जीवन्तीने धीरेसे मुसकराकर इसका सम्पूर्ण कारण बता दिया। उस समय राजा शयनका बहाना बनाकर वास्तविकता जाननेके लिये जाग रहे थे, अतः उन्होंने जीवन्ती और षष्ठी—दोनोंकी बातचीत सुन ली। ३८—४०१/२ ॥ [जीवन्तीने कहा—हे षष्ठि!] श्रावणमासमें शुक्रवारको इसकी माता मेरे पूजनमें रत रहती है और व्रतके सम्पूर्ण नियमका पालन करती है, वह सब मैं बताती हूँ—वह हरे रंगका वस्त्र तथा

न धारयति तद्वर्णं काचकङ्कणकं करे। कदापि नोल्लङ्घयति तन्दुलक्षालनोदकम्॥ ४३॥
नैव गच्छत्यधस्ताच्च हरित्पल्लवमण्डपम्। कुकलस्य च शाकं सा नाश्नाति हरिवर्णतः॥ ४४॥
सर्वमेव मम प्रीत्यै मारयिष्यामि मा सुतम्। श्रुत्वा सर्वं नृपः प्रातर्जगाम स्वपुरं प्रति॥ ४५॥
प्रत्युद्गता नागरिका दैशिकाः सर्व एव हि। पप्रच्छ मातरं राजा त्वया जीवन्तिकाव्रतम्॥ ४६॥
क्रियते तु कथं मातर्न वेद्मीति च साब्रवीत्। साद्गुण्यार्थं तु यात्राया ब्राह्मणांश्च सुवासिनीः॥ ४७॥
इच्छन्नृपो भोजयितुं व्रतं चापि परीक्षितुम्। सुवासिनीभ्यो वस्त्राणि कञ्चुक्यः कङ्कणानि च॥ ४८॥
आगन्तव्यं भोजनार्थं सर्वाभी राजसद्मनि। ततः पुरोधसः पत्नी तत्र दूतमुवाच ह॥ ४९॥
हरिद्वर्णं मया किञ्चिद् गृह्यते न कदाचन। दूतो निवेदयामास राज्ञे तस्याः प्रभाषितम्॥ ५०॥
राजा सर्वं रक्तवर्णं तस्यै सम्प्रेषयच्छुभम्। अङ्गीकृत्य च तत्सर्वं सापि राजगृहं ययौ॥ ५१॥
पूर्वद्वारे तण्डुलानां दृष्ट्वा क्षालनजं जलम्। मण्डपं च हरिद्वर्णं दृष्ट्वान्यद्द्वारतो ययौ॥ ५२॥
राजा पुरोधसः पत्नीं नत्वा पप्रच्छ चाखिलम्। निमित्तं नियमस्यास्य सा प्रोवाच व्रतं भृगोः॥ ५३॥
तं दृष्ट्वा तु तदात्यन्तं प्रस्नुतौ तत्पयोधरौ। सिषिञ्चतुस्तं राजानं धाराभिः सर्वतः स्तनौ॥ ५४॥

कंचुकी नहीं पहनती और हाथमें उस रंगकी काँचकी चूड़ी भी नहीं धारण करती। वह चावलके धोनेके जलको कभी नहीं लाँघती, हरे पत्तोंके मण्डपके नीचे नहीं जाती और हरे वर्णका होनेके कारण करैलेका शाक भी वह नहीं खाती है। यह सब मेरी प्रसन्नताके लिये वह करती है, अतः मैं उसके पुत्रको नहीं मारने दूँगी॥ ४१—४४१/२॥

यह सब सुनकर राजा [प्रियव्रत] अपने नगरको चले गये। उनके देशके सभी नागरिक स्वागतके लिये आये। तब राजाने अपनी मातासे पूछा—हे मातः! क्या तुम जीवन्तिका देवीका व्रत करती हो? इसपर उसने कहा—मैं तो इस व्रतको जानती भी नहीं॥ ४५-४६१/२॥ तत्पश्चात् राजाने गयायात्राका समुचित फल प्राप्त करनेके लिये ब्राह्मणों तथा सुवासिनी स्त्रियोंको भोजन करानेकी इच्छासे उन्हें निमन्त्रित किया और व्रतकी परीक्षा लेनेके निमित्त सुवासिनियोंको वस्त्र, कंचुकी तथा कंकण भेजकर उन्हें कहलाया कि आप सभीको भोजनके लिये राजभवनमें आना है॥ ४७-४८१/२॥ तब पुरोहितकी पत्नीने दूतसे कहा कि मैं हरे रंगकी कोई भी वस्तु कभी नहीं ग्रहण करती हूँ। [राजाके पास आकर] दूतने उसके द्वारा कही गयी बात राजाको बता दी। तब राजाने उसके लिये सभी रक्तवर्णके शुभ परिधान भेजे। वह सब धारण करके वह [पुरोहितपत्नी] भी राजभवनमें आयी॥ ४९—५१॥ [राजभवनके] पूर्वी द्वारपर चावलोंके धोनेका जल पड़ा देखकर और वहाँ हरे रंगका मण्डप देखकर वह दूसरे द्वारसे गयी। तब राजाने पुरोहितकी पत्नीको प्रणाम करके इस नियमका सम्पूर्ण कारण पूछा। इसपर उसने इसका हेतु शुक्रवारका व्रत बताया॥ ५२-५३॥ उस प्रियव्रतको देखकर उसके दोनों स्तनोंमेंसे

गयायां करयुग्मेन देव्योः संवादतस्तथा। स्तनयोः प्रस्त्रवाच्चैव राजा प्रत्ययमाप सः॥ ५५॥

पालिकां मातरं गत्वा पप्रच्छ विनयान्वितः। मा भैर्मातर्ब्रूहि सत्यं वृत्तान्तं मम जन्मनः॥ ५६॥

श्रुत्वा सुकेशिनी प्राह याथातथ्येन सर्वशः। हृष्टो भूत्वा नमश्चक्रे पितरौ स्वस्य जन्मदौ॥ ५७॥

सम्पत्त्या वर्धयामास तौ परां मुदमापतुः। एकस्मिन्दिवसे राजा जीवन्तीं प्रार्थयन्निशि॥ ५८॥

जीवन्त्ययं जन्मदो मे गयायां च करौ कथम्। तदा स्वप्नगता देवी प्राह संशयनाशकम्॥ ५९॥

मया त्वत्प्रत्ययार्थेयं कृता माया न संशयः। एतत्ते सर्वमाख्यातं श्रावणे भृगुवासरे॥ ६०॥

एतद् व्रतमनुष्ठाय सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ ६१॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये शुक्रवारजीवन्तिकाव्रतकथनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

बहुत दूध निकलने लगा। दोनों वक्ष:स्थलोंने उस राजाको दुग्धकी धाराओंसे पूर्ण रूपसे सिंचित कर दिया। तब गयामें [विष्णुपदीपर निकले] दोनों हाथों, [जीवन्तिका तथा षष्ठी] दोनों देवियोंके वार्तालाप तथा [पुरोहितपत्नीके] स्तनोंसे दूध निकलनेके द्वारा राजाको विश्वास हो गया [कि मैं इसीका पुत्र हूँ]॥ ५४-५५॥

तदनन्तर पालन-पोषण करनेवाली माताके पास जाकर विनम्रतापूर्वक उन्होंने कहा—हे मात:! डरो मत, मेरे जन्मका वृत्तान्त सत्य-सत्य बता दो। यह सुनकर सुन्दर केशोंवाली रानीने सब कुछ सच-सच बता दिया। तब प्रसन्न होकर उन्होंने जन्म देनेवाले अपने माता-पिताको नमस्कार किया और उन्हें सम्पत्तिसे वृद्धिको प्राप्त कराया। वे दोनों भी परम आनन्दित हुए॥ ५६-५७१/२॥ एक दिन राजा प्रियव्रतने रातमें देवी जीवन्तीसे प्रार्थना की—हे जीवन्ति! मेरे पिता तो ये हैं, तो फिर गयामें वे दोनों हाथ कैसे निकल आये थे? तब देवीने स्वप्नमें आकर संशयका नाश करनेवाला वाक्य कहा—हे प्रियव्रत! मैंने तुम्हें विश्वास दिलानेके लिये ही यह माया की थी, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५८-५९१/२॥ [हे सनत्कुमार!] यह सब मैंने आपको बता दिया। श्रावणमासमें शुक्रवारके दिन इस व्रतका अनुष्ठान करके मनुष्य सभी मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है॥ ६०-६१॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'शुक्रवारजीवन्तिकाव्रत-कथन' नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दशमोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि मन्दवारविधिं तव। सनत्कुमार यत्कृत्वा मन्दत्वं नैव जायते॥ १॥

श्रावणे मासि देवानां त्रयाणां पूजनं शनौ। नृसिंहस्य शनेश्चैव अञ्जनीनन्दनस्य च॥ २॥

कुड्ये स्तम्भेऽथवालिख्य नृसिंहप्रतिमां शुभाम्। हरिद्रायुक्चन्दनेन लक्ष्म्या सह जगत्पतिम्॥ ३॥

सम्पूज्य नीलपुष्पैश्च रक्तैः पीतैश्च शोभनैः। नैवेद्यं खिच्चडीसंज्ञं शाकं कुञ्जरसंज्ञितम्॥ ४॥

स्वयं चैव तदश्नीयाद् ब्राह्मणांश्चैव भोजयेत्। तिलतैलं घृतस्नानं नृसिंहस्य प्रियं भवेत्॥ ५॥

शनैश्चरदिने तैलं प्रशस्तं सर्वकर्मसु। अभ्यज्या ब्राह्मणास्तद्वत्सुवासिन्यस्तु तैलतः॥ ६॥

स्वयमभ्यज्य च स्नायात्कुटुम्बसहितः शनौ। माषान्नं च प्रकर्तव्यं प्रीणाति नरकेसरी॥ ७॥

एवं चतुर्षु वारेषु श्रावणे मासि तद् व्रतम्। कुर्वीत तस्य सदने लक्ष्मीः स्थिरतरा भवेत्॥ ८॥

धनधान्यसमृद्धिश्च अपुत्रः पुत्रवान्भवेत्। इह लोके सुखं भुक्त्वा अन्ते वैकुण्ठमाप्नुयात्॥ ९॥

दिग्व्यापिनी च सत्कीर्तिर्नृसिंहस्य प्रसादतः। एतत्ते कथितं सौम्य नृसिंहव्रतमुत्तमम्॥ १०॥

दसवाँ अध्याय

श्रावणमासमें शनिवारको किये जानेवाले कृत्योंका वर्णन

ईश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] अब मैं आपसे शनिवारव्रतकी विधिका वर्णन करूँगा, जिसका अनुष्ठान करनेसे मन्दत्व नहीं होता है। श्रावणमासमें शनिवारके दिन नृसिंह, शनि तथा अंजनीपुत्र हनुमान्—इन तीनों देवताओंका पूजन करना चाहिये॥ १-२॥ भीतपर अथवा स्तम्भपर नृसिंहकी सुन्दर प्रतिमा बनाकर हल्दीयुक्त चन्दनसे और नीले-लाल तथा पीले सुन्दर पुष्पोंसे लक्ष्मीसहित जगत्पति नृसिंहका भलीभाँति पूजन करके उन्हें खिचड़ीका नैवेद्य तथा कुंजर नामक शाकका भोग अर्पण करना चाहिये। उसीको स्वयं भी खाना चाहिये और ब्राह्मणोंको भी खिलाना चाहिये॥ ३-४१/२॥ तिलका तेल तथा घृतस्नान भगवान् नृसिंहको प्रिय है। शनिवारके दिन तिल सभी कार्योंके लिये प्रशस्त है। शनिवारके दिन तिलके तेलसे ब्राह्मणों तथा सुवासिनी स्त्रियोंको उबटन करना चाहिये और कुटुम्बसहित स्वयं भी [सम्पूर्ण शरीरमें] तेल लगाकर स्नान करना चाहिये और उड़दका भोजन ग्रहण करना चाहिये, इससे भगवान् नृसिंह प्रसन्न होते हैं॥ ५—७॥ इस प्रकार श्रावणमासमें चारों शनिवारोंमें इस व्रतको करना चाहिये। उसके घरमें लक्ष्मी पूर्णरूपसे स्थिर रहती हैं और धनधान्यकी समृद्धि होती है। पुत्रहीन व्यक्ति पुत्रवाला हो जाता है और इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें वैकुण्ठ प्राप्त करता है। नृसिंहकी कृपासे मनुष्यकी दिशाओंमें व्याप्त रहनेवाली उत्तम कीर्ति होती है। हे सौम्य! मैंने आपसे नृसिंहका यह उत्तम व्रत कहा॥ ८—१०॥

एवं शनिप्रीणनाय कर्तव्यं तच्छृणुष्व भोः। खञ्जं ब्राह्मणमेकं तु तदभावे तु कञ्चन॥ ११॥
अभ्यज्य तिलतैलेन स्नापयेदुष्णवारिणा। नृसिंहोक्तेन चान्नेन भोजयेच्छ्रद्धयान्वितः॥ १२॥
तैलं लोहं तिलान्माषान्दद्यात्कम्बलमेव च। शनैश्चरप्रीणनाय शनिर्मे प्रीयतामिति॥ १३॥
शनैश्चरस्याभिषेकं तिलतैलेन कारयेत्। प्रशस्ता अक्षतास्तस्य पूजने तिलमाषयोः॥ १४॥
ध्यानं तस्य च वक्ष्यामि शृणुष्वावहितो मुने। शनैश्चरः कृष्णवर्णो मन्दः काश्यपगोत्रजः॥ १५॥
सौराष्ट्रदेशसम्भूतः सूर्यपुत्रो वरप्रदः। दण्डाकृतिर्मण्डले स्यादिन्द्रनीलसमद्युतिः॥ १६॥
बाणबाणासनधरः शूलधृग्गृध्रवाहनः। यमाधिदैवतश्चैव ब्रह्मप्रत्यधिदैवतः॥ १७॥
कस्तूर्यगुरुगन्धः स्यात्तथा गुग्गुलुधूपकः। कृसरान्नप्रियश्चैवं विधिरस्य प्रकीर्तितः॥ १८॥
प्रतिमा पूजने चास्य कार्या लोहमयी शुभा। अस्योद्देशेन पूजायां दानं कृष्णं द्विजोत्तम॥ १९॥
कृष्णावस्त्रयुगं दद्याद्दद्याद् गां कृष्णवत्सकाम्। एवं सम्पूज्य विधिवत्प्रार्थयेच्च स्तुवीत च॥ २०॥

[हे सनत्कुमार!] अब शनिकी प्रसन्नताके लिये जो करना चाहिये, उसे सुनिये। एक लंगड़े ब्राह्मण और उसके अभावमें किसी ब्राह्मणके शरीरमें तिलका तेल लगाकर उसे उष्ण जलसे स्नान कराना चाहिये और श्रद्धायुक्त होकर नृसिंहके लिये बताये गये अन्न (खिचड़ी)-को उसे खिलाना चाहिये। तत्पश्चात् तेल, लोहा, काला तिल, काला उड़द, काला कम्बल प्रदान करना चाहिये। इसके बाद व्रती यह कहे कि मैंने यह सब शनिकी प्रसन्नताके लिये किया है, शनिदेव मुझपर प्रसन्न हों। तदनन्तर तिलके तेलसे शनिका अभिषेक कराना चाहिये। उनके पूजनमें तिल तथा उड़दके अक्षत प्रशस्त माने गये हैं॥ ११—१४॥ हे मुने! अब मैं शनिका ध्यान बताऊँगा, आप सावधान होकर सुनिये। शनैश्चर कृष्ण वर्णवाले हैं, मन्द गतिवाले हैं, काश्यप गोत्रवाले हैं, सौराष्ट्र देशमें उत्पन्न हुए हैं, सूर्यके पुत्र हैं, वर प्रदान करनेवाले हैं, दण्डके समान आकारवाले मण्डलमें स्थित हैं, इन्द्रनीलमणितुल्य कान्तिवाले हैं, हाथोंमें धनुष-बाण-त्रिशूल धारण किये हुए हैं, गीधपर आरूढ हैं, यम इनके अधिदेवता हैं, ब्रह्मा इनके प्रत्यधिदेवता हैं, ये कस्तूरी-अगुरुका गन्ध तथा गुग्गुलुका धूप ग्रहण करते हैं, इन्हें खिचड़ी प्रिय है, इस प्रकार ध्यानकी विधि कही गयी है॥ १५—१८॥ इनके पूजनके लिये लौहमयी सुन्दर प्रतिमा बनानी चाहिये। हे द्विजश्रेष्ठ! इनके निमित्त की गयी पूजामें कृष्ण वस्तुका दान करना चाहिये। [ब्राह्मणको] काले रंगके दो वस्त्र देने चाहिये और काले बछड़ेसहित काली गौ प्रदान करनी चाहिये। विधिपूर्वक पूजा करके इस प्रकार प्रार्थना तथा स्तुति करनी चाहिये॥ १९-२०॥

यः पुनर्नष्टराज्याय नीलाय परितोषितः। ददौ निजं महाराज्यं स मे सौरिः प्रसीदतु॥ २१॥
शनिं नीलाञ्जनप्रख्यं मन्दचेष्टाप्रसारिणम्। छायामार्तण्डसम्भूतं तन्नमामि शनैश्चरम्॥ २२॥
नमस्ते कोणसंस्थाय पिङ्गलाय नमोऽस्तु ते। प्रसादं कुरु देवेश दीनस्य प्रणतस्य च॥ २३॥
एवं स्तुत्या प्रार्थयित्वा प्रणमेच्च पुनः पुनः। पूजने वैदिको मन्त्रः शन्नोदेवीरिति स्मृतः॥ २४॥
त्रैवर्णानां च शूद्राणां नाममन्त्रः प्रकीर्तितः। य एवं विधिना मन्दं पूजयेत्सुसमाहितः॥ २५॥
तदीयं तु भयं तस्य स्वप्नेऽपि न भविष्यति। एवमेतद् व्रतं विप्र ये करिष्यन्ति मानवाः॥ २६॥
वासरे वासरे प्राप्ते श्रावणे मासि भक्तितः। तेषां शनैश्चरकृतः पीडालेशोऽपि नो भवेत्॥ २७॥
प्रथमो वा द्वितीयो वा चतुर्थः पञ्चमोऽपि वा। सप्तमश्चाष्टमो वापि नवमो द्वादशोऽपि वा॥ २८॥
जन्मराशेः स्थितो मन्दः पीडां च कुरुते सदा। शमग्निरिति मन्त्रस्य तत्प्रसादे जपो मतः॥ २९॥
इन्द्रनीलमणेर्दानं प्रदद्यात्तस्य तुष्टये। अतः परं प्रवक्ष्यामि हनुमत्तुष्टये विधिम्॥ ३०॥
शनिवारे श्रावणे च अभिषेकं समाचरेत्। रुद्रमन्त्रेण तैलेन हनुमत्प्रीणनाय च॥ ३१॥
तैलमिश्रितसिन्दूरलेपं तस्य समर्पयेत्। जपाकुसुममालाभिरर्कमालाभिरेव च॥ ३२॥
मालाभिर्मान्दराभिश्च वटकानां तथैव च। पूजयेदञ्जनीपुत्रं तथान्यैरुपचारकैः॥ ३३॥
यथाविधि यथावित्तं श्रद्धाभक्तिसमन्वितः। जपेद् द्वादश नामानि हनुमत्प्रीतये बुधः॥ ३४॥

[आराधनासे] सन्तुष्ट होकर जिन्होंने नष्ट राज्यवाले राजा नीलको उनका महान् राज्य पुनः प्रदान कर दिया, वे शनिदेव मुझपर प्रसन्न हों। नील अंजनके समान वर्णवाले, मन्दगतिसे चलनेवाले और छायादेवी तथा सूर्यसे उत्पन्न होनेवाले उन शनैश्चरको मैं नमस्कार करता हूँ। मण्डलके कोणमें स्थित आपको नमस्कार है, पिंगल नामवाले आप शनिको नमस्कार है। हे देवेश! मुझ दीन तथा शरणागतपर कृपा कीजिये॥ २१—२३॥ इस प्रकार स्तुतिके द्वारा प्रार्थना करके बार-बार प्रणाम करना चाहिये। तीन वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य)-के लिये शनिके पूजनमें **'शन्नो देवी०'** इस वैदिक मन्त्रका प्रयोग बताया गया है और शूद्रोंके लिये पूजनमें नाममन्त्रका प्रयोग बताया गया है। जो व्यक्ति दत्तचित्त होकर इस विधिसे शनिदेवका पूजन करेगा, उसे स्वप्नमें भी शनिका भय नहीं होगा। हे विप्र! जो मनुष्य श्रावणमासमें प्रत्येक शनिवारके दिन भक्तिपूर्वक इस विधिसे इस व्रतको करेंगे, उन्हें शनैश्चरकृत लेशमात्र भी कष्ट नहीं होगा॥ २४—२७॥ जन्मराशिसे पहले, दूसरे, चौथे, पाँचवें, सातवें, आठवें, नौवें अथवा बारहवें स्थानमें स्थित शनि सदा कष्ट पहुँचाता है। शनिकी शान्तिके लिये **'शमग्नि०'** इस मन्त्रका जप कराना बताया गया है। उसकी प्रसन्नताके लिये इन्द्रनीलमणिका दान करना चाहिये। [हे सनत्कुमार!] इसके बाद अब मैं हनुमान्‌जीकी प्रसन्नताके लिये विधिका वर्णन करूँगा॥ २८—३०॥ हनुमान्‌जीकी प्रसन्नताके लिये श्रावणमासमें शनिवारको रुद्रमन्त्रके द्वारा तेलसे उनका अभिषेक करना चाहिये। तेलमें मिश्रित सिन्दूरका लेप उन्हें समर्पित करना चाहिये। जपाकुसुमकी मालाओंसे, आक (धतूर)-की मालाओंसे, मन्दारपुष्पकी मालाओंसे, बटक (बड़े)-के नैवेद्यसे तथा अन्य उपचारोंसे भी यथाविधि अपने वित्त-सामर्थ्यके अनुसार श्रद्धा-भक्तिसे युक्त होकर अंजनीपुत्र हनुमान्‌जीकी पूजा करनी चाहिये॥ ३१—३३½॥ तत्पश्चात् बुद्धिमान्‌को चाहिये कि

हनुमानञ्जनीसूनुर्वायुपुत्रो महाबलः। रामेष्टः फाल्गुनसखः पिङ्गाक्षोऽमितविक्रमः॥ ३५॥
उदधिक्रमणश्चैव सीताशोकविनाशकः। लक्ष्मणप्राणदाता च दशग्रीवस्य दर्पहा॥ ३६॥
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्। नाशुभं जायते तस्य सर्वसम्पत्प्रजायते॥ ३७॥
श्रावणे मन्दवारे तु एवमाराध्य वायुजम्। वज्रतुल्यशरीरः स्यादरोगो बलवान्नरः॥ ३८॥
वेगवान्कार्यकरणे बुद्धिवैभवभूषितः। शत्रुः संक्षयमाप्नोति मित्रवृद्धिः प्रजायते॥ ३९॥
वीर्यवान्कीर्तिमांश्चैव प्रसादादञ्जनीजनेः। आञ्जनेयालये लक्षं हनुमत्कवचं पठेत्॥ ४०॥
अणिमाद्यष्टसिद्धीनां साधकः स्वामितामियात्। यक्षराक्षसवेताला दर्शनात्तस्य वेगतः॥ ४१॥
पलायन्ते दशदिशः कम्पिता भयविह्वलाः। अश्वत्थालिङ्गनं चैव ह्यश्वत्थस्य च पूजनम्॥ ४२॥
मन्दभिन्ने न कर्तव्यः स्पर्शोऽश्वत्थस्य सत्तम। शनावालिङ्गनं तस्य सर्वसम्पत्समृद्धिदम्।
पूजनं सप्तवारेषु तत्रापि श्रावणेऽधिकम्॥ ४३॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये शनैश्चरनृसिंहहनुमत्पूजनादि-शनैश्चरकृत्यकथनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

हनुमान्‌जीकी प्रसन्नताके लिये उनके बारह नामोंका जप करे। हनुमान्, अंजनीसूनु, वायुपुत्र, महाबल, रामेष्ट, फाल्गुन-सखा, पिंगाक्ष, अमितविक्रम, उदधिक्रमण, सीताशोकविनाशक, लक्ष्मणप्राणदाता और दशग्रीवदर्पहा—ये बारह नाम हैं। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इन बारह नामोंको पढ़ता है, उसका अमंगल नहीं होता और उसे सभी सम्पदा सुलभ हो जाती है ॥ ३४—३७ ॥ इस प्रकार श्रावणमासमें शनिवारके दिन वायुपुत्र हनुमान्‌जीकी आराधना करके मनुष्य वज्रतुल्य शरीरवाला, नीरोग और बलवान् हो जाता है। अंजनीपुत्रकी कृपासे वह कार्य करनेमें वेगवान् तथा बुद्धि-वैभवसे युक्त हो जाता है, उसके शत्रु नष्ट हो जाते हैं, मित्रोंकी वृद्धि होती है और वह वीर्यशाली तथा कीर्तिमान् हो जाता है ॥ ३८-३९ १/२ ॥ यदि साधक हनुमान्‌जीके मन्दिरमें हनुमत्कवचका पाठ करे तो वह अणिमा आदि आठों सिद्धियोंका स्वामित्व प्राप्त कर लेता है और यक्ष, राक्षस तथा वेताल उसे देखते ही कम्पित तथा भयभीत होकर वेगपूर्वक दसों दिशाओंमें भाग जाते हैं ॥ ४०-४१ १/२ ॥ हे सत्तम! शनिवारके दिन पीपलके वृक्षका आलिंगन तथा पूजन करना चाहिये। शनिवारको छोड़कर अन्य किसी दिन पीपलके वृक्षका स्पर्श नहीं करना चाहिये। शनिवारके दिन उसका आलिंगन सभी सम्पदाओंकी प्राप्ति करानेवाला होता है। प्रत्येक मासमें सातों वारोंमें पीपलका पूजन फलदायक है, किंतु श्रावणमें यह पूजन अधिक फलप्रद है ॥ ४२-४३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'शनैश्चरनृसिंहहनुमत्पूजनादिशनैश्चर-कृत्यकथन' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

वारव्रतानि सर्वाणि त्वत्तो देव श्रुतानि मे। तव वागमृतं पीत्वा तृप्तिर्मे नैव जायते॥ १॥
श्रावणेन समो मासो नास्त्यन्यः प्रतिभाति मे। अथातस्तिथिमाहात्म्यं कथयस्व जगत्प्रभो॥ २॥

ईश्वर उवाच

मासानां कार्तिकः श्रेष्ठस्तस्मान्माघः परो मतः। ततोऽपि माधवः श्रेष्ठः सहश्चापि हरिप्रियः॥ ३॥
विश्वरूपेण चत्वारो मासाश्चैते मम प्रियाः। द्वादशस्वपि मासेषु श्रावणः शिवरूपकः॥ ४॥
तिथयः श्रावणे मासि सर्वाश्च व्रतसंयुताः। प्राधान्यतस्तथापि त्वां वच्मि काश्चित्सुशोभनाः॥ ५॥
तिथिवारविमिश्रं तु व्रतमाद्यं वदामि ते। प्रतिपच्छ्रावणे मासि यदा सोमयुता भवेत्॥ ६॥
सोमवारास्तदा पञ्च पतन्त्यत्र हि मासिके। रोटकाख्यं व्रतं तत्र कर्तव्यं श्रावणे नरैः॥ ७॥
सार्धमासत्रयं वापि रोटकाख्यं व्रतं भवेत्। लक्ष्मीवृद्धिकरं प्रोक्तं सर्वकामार्थसिद्धिदम्॥ ८॥
विधानं तस्य वक्ष्यामि शृणुष्वावहितो मुने। श्रावणस्य सिते पक्षे प्रतिपत्सोमवासरे॥ ९॥
प्रातः सङ्कल्पयेद् विद्वान् करिष्ये रोटकव्रतम्। अद्यारभ्य सुरश्रेष्ठ कृपां कुरु जगद्गुरो॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

रोटक तथा उदुम्बरव्रतका वर्णन

सनत्कुमार बोले—हे देव! श्रावणमासके वारोंके सभी व्रतोंको मैंने आपसे सुना, किंतु आपके वचनामृतका पान करके मेरी तृप्ति नहीं हो रही है। हे प्रभो! श्रावणके समान अन्य कोई भी मास नहीं है—ऐसा मुझे प्रतीत होता है, अतः अब आप तिथियोंका माहात्म्य बताइये॥ १—२॥

ईश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] मासोंमें कार्तिकमास श्रेष्ठ है, उससे भी श्रेष्ठ माघ कहा गया है, उस माघसे भी श्रेष्ठ वैशाख है और उससे भी श्रेष्ठ मार्गशीर्ष है; जो श्रीहरिको अत्यन्त प्रिय है। विश्वरूपभगवान्‌से उत्पन्न होनेसे ये चारों मास मुझे प्रिय हैं। किंतु बारहों मासोंमें श्रावण तो साक्षात् शिवका रूप है॥ ३-४॥ [हे सनत्कुमार!] श्रावणमासमें सभी तिथियाँ व्रतयुक्त हैं, फिर भी मैं उनमें प्रधानरूपसे कुछ उत्तम तिथियोंको आपको बता रहा हूँ। सर्वप्रथम मैं तिथि तथा वारसे मिश्रित व्रत आपको बताता हूँ। श्रावणमासमें जब प्रतिपदा तिथिमें सोमवार हो तो उस महीनेमें पाँच सोमवार पड़ते हैं। उस श्रावणमासमें मनुष्योंको रोटक नामक व्रत करना चाहिये। यह रोटक नामक व्रत साढ़े तीन महीनेका भी होता है, यह लक्ष्मीकी वृद्धि करनेवाला तथा सभी मनोरथोंकी सिद्धि करनेवाला है। हे मुने! मैं उसका विधान बताऊँगा, आप सावधान होकर सुनिये॥ ५—८१/२॥ श्रावणमासके शुक्लपक्षमें प्रतिपदा तिथिको जब सोमवार हो, तब विद्वान् प्रातःकाल यह संकल्प करे—मैं आजसे आरम्भ करके रोटक व्रत करूँगा, हे सुरश्रेष्ठ! हे जगद्गुरो! [मुझपर] कृपा कीजिये॥ ९-१०॥

दिने दिने प्रकर्तव्या पूजा देवस्य शूलिनः। बिल्वपत्रैरखण्डैश्च तुलसीपत्रकैस्तथा॥ ११॥
नीलोत्पलैश्च कमलैः कह्लारैः कुसुमैस्तथा। चम्पकैर्मालतीपुष्पैः कुविन्दैरर्कपुष्पकैः॥ १२॥
अन्यैर्नानाविधैः पुष्पैर्ऋतुकालोद्भवैः शुभैः। धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः फलैर्नानाविधैरपि॥ १३॥
नैवेद्यमर्पयेन्मुख्यं रोटकानां विशेषतः। कर्तव्या रोटकाः पञ्च पुरुषाहारमानतः॥ १४॥
द्वौ तु विप्राय दातव्यौ द्वाभ्यां च भोजनं मतम्। एको देवाय दातव्यो नैवेद्यार्थं सदा बुधैः॥ १५॥
शेषपूजां विधायाथ अर्घ्यं दद्याद्विचक्षणः। रम्भाफलं नारिकेलं जम्बीरं बीजपूरकम्॥ १६॥
खर्जूरी कर्कटी द्राक्षा नारङ्गं मातुलिङ्गकम् । अक्षोटकं च दाडिम्बं यच्चान्यदृतुसम्भवम्॥ १७॥
प्रशस्तमर्घ्यदाने स्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु। सप्तसागरसंयुक्तां भूमिं दत्वा तु यत्फलम्॥ १८॥
तत्फलं समवाप्नोति व्रतं कृत्वा विधानतः। पञ्चवर्षं प्रकर्तव्यमतुलं धनमीप्सुभिः॥ १९॥
पश्चादुद्यापनं कुर्याद्रोटकाख्यव्रतस्य तु। उद्यापने तु कर्तव्यौ हेमरूप्यौ च रोटकौ॥ २०॥
पूर्वेद्युरधिवास्याथ प्रातर्होमं समाचरेत्। सर्पिषा शिवमन्त्रेण बिल्वपत्रैश्च शोभनैः॥ २१॥
एवं कृते व्रते तात सर्वान्कामानवाप्नुयात्। सनत्कुमार वक्ष्यामि द्वितीयायां व्रतं शुभम्॥ २२॥
यत्कृत्वा श्रद्धया मर्त्यो लक्ष्मीवान्पुत्रवान्भवेत्। औदुम्बराभिधं चैव तद्व्रतं पापनाशनम्॥ २३॥

तदनन्तर अखण्डित बिल्वपत्रों, तुलसीदलों, नीलोत्पल, कमलपुष्पों, कह्लारपुष्पों, चम्पा तथा मालतीके पुष्पों, कुविन्दपुष्पों, आकके पुष्पों, उस ऋतु तथा कालमें होनेवाले नानाविध अन्य सुन्दर पुष्पों, धूप, दीप, नैवेद्य तथा नाना प्रकारके फलोंसे शूलधारी महादेवकी प्रतिदिन पूजा करनी चाहिये॥ ११—१३॥ विशेषरूपसे रोटकोंका प्रधान नैवेद्य अर्पित करना चाहिये। पुरुषके आहारप्रमाणके समान पाँच रोटक बनाने चाहिये। बुद्धिमान्‌को चाहिये कि उनमेंसे दो रोटक ब्राह्मणको दे, दो रोटकका स्वयं भोजन करे और एक रोटक देवताको नैवेद्यरूपमें अर्पित करे॥ १४-१५॥ बुद्धिमान्‌को चाहिये कि शेषपूजा करनेके अनन्तर अर्घ्य प्रदान करे। केलाका फल, नारियल, जम्बीरी नीबू, बीजपूरक, खजूर, ककड़ी, दाख, नारंगी, मातुलिंग (बिजौरा नीबू), अखरोट, अनार तथा अन्य और भी जो ऋतुमें होनेवाले फल हों—वे सब अर्घ्यदानमें प्रशस्त हैं। उस अर्घ्यदानका फल सुनिये। सातों समुद्रसहित पृथ्वीका दान करके मनुष्य जो फल प्राप्त करता है, वही फल विधानपूर्वक इस व्रतको करके वह पा जाता है। विपुल धनकी इच्छा रखनेवालोंको यह व्रत पाँच वर्षतक करना चाहिये॥ १६—१९॥ इसके बाद रोटक नामक व्रतका उद्यापन करना चाहिये। उद्यापन-कृत्यके लिये सोने तथा चाँदीके दो रोटक बनाये। प्रथम दिन अधिवासन करके प्रातःकाल शिवमन्त्रके द्वारा घृत तथा उत्तम बिल्वपत्रोंसे हवन करे। हे तात! इस विधिसे व्रतके सम्पन्न किये जानेपर मनुष्य सभी वांछित फलोंको प्राप्त कर लेता है॥ २०-२१½॥ हे सनत्कुमार! अब मैं द्वितीयाके शुभ व्रतका वर्णन करूँगा, जिसे श्रद्धापूर्वक करके मनुष्य लक्ष्मीवान् तथा पुत्रवान् हो जाता है। औदुम्बर नामक वह व्रत पापका नाश करनेवाला है॥ २२-२३॥

श्रावणे मासि सम्प्राप्ते द्वितीयायां शुभे तिथौ। प्रातः सङ्कल्प्य विधिवद् व्रतं कुर्याद्विचक्षणः ॥ २४ ॥

नारी वाथ नरो वापि पात्रं स्यात्सर्वसम्पदाम्। साक्षादुदुम्बरः पूज्यस्तदभावे तु कुड्यके ॥ २५ ॥

लिखित्वा पूजयेत्तत्र चतुर्भिर्नाममन्त्रकैः। उदुम्बर नमस्तुभ्यं नमस्ते हेमपुष्पक ॥ २६ ॥

सजन्तुफलयुक्ताय नमो रक्ताण्डशालिने। तत्राधिदेवते पूज्ये शिवः शुक्रस्तथैव च ॥ २७ ॥

त्रयस्त्रिंशत्फलान्यस्य गृहीत्वा भागमाचरेत्। एकादश ब्राह्मणाय दद्यात्तावन्ति दैवते ॥ २८ ॥

तावन्ति स्वयमश्नीयान्नान्नाहारस्तु तद्दिने। शिवं शुक्रं च सम्पूज्य रात्रौ जागरणं चरेत् ॥ २९ ॥

एवं कृत्वा व्रतं तात वर्षाण्येकादशैव तु। पश्चादुद्यापनं कुर्याद् व्रतसम्पूर्णहेतवे ॥ ३० ॥

उदुम्बरः सुवर्णेन फलपुष्पदलान्वितः। तत्र सम्पूजयेद्विद्वान्प्रतिमे शिवशुक्रयोः ॥ ३१ ॥

प्रातर्होमं चरेच्चैव ह्युदुम्बरफलैः शुभैः। कोमलैरल्पमात्रैश्च सङ्ख्ययाष्टोत्तरं शतम् ॥ ३२ ॥

उदुम्बरसमिद्भिश्च तिलैराज्यैश्च होमयेत्। एवं समाप्य होमं तु आचार्यं पूजयेत्ततः ॥ ३३ ॥

शुभ सावनका महीना आनेपर द्वितीया तिथिको प्रातःकाल संकल्प करके बुद्धिमान्‌को विधिपूर्वक व्रत करना चाहिये। इस व्रतको करनेवाला स्त्री हो या पुरुष—वह सभी सम्पदाओंका पात्र हो जाता है॥ २४१/२ ॥ इस व्रतमें प्रत्यक्ष गूलरके वृक्षकी पूजा करनी चाहिये, किंतु उसके (गूलर वृक्ष) न मिलनेपर भीतपर वृक्षका आकार बनाकर इन चार नाममन्त्रोंसे उसकी पूजा करनी चाहिये—हे उदुम्बर! आपको नमस्कार है, हे हेमपुष्पक! आपको नमस्कार है। जन्तुसहित फलसे युक्त तथा रक्त अण्डतुल्य फलवाले आपको नमस्कार है। इसके अधिदेवता शिव तथा शुक्रकी भी पूजा गूलरके वृक्षमें करनी चाहिये॥ २५—२७॥ इसके तैंतीस फल लेकर [तीन बराबर] भाग करे। उनमेंसे ग्यारह फल ब्राह्मणको प्रदान करे, उतने ही (ग्यारह) देवताको अर्पण करे और उतने ही स्वयं भोजन करे। उस दिन अन्नका आहार नहीं करना चाहिये। शिव तथा शुक्रका विधिवत् पूजन करके रातमें जागरण करना चाहिये॥ २८-२९ ॥ हे तात! इस प्रकार ग्यारह वर्षतक व्रतका अनुष्ठान करनेके अनन्तर व्रतकी सम्पूर्णताके लिये उद्यापन करना चाहिये। सुवर्णमय फल, पुष्प तथा पत्रसहित एक गूलरका वृक्ष बनाये और उसमें शिव तथा शुक्रकी प्रतिमाका पूजन करे। तत्पश्चात् प्रातःकाल होम करे। गूलरके शुभ, कोमल तथा छोटे-छोटे एक सौ आठ फलोंसे तथा गूलरकी समिधाओंसे तिल तथा घृतसहित होम करे। इस प्रकार होमकृत्य समाप्त करके आचार्यकी पूजा करे,

ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छतं शक्तौ दशाथ वा। एवं व्रते कृते वत्स फलं यत्स्याच्छृणुष्व तत्॥ ३४॥

बहुजन्तुफलो वृक्षो यथायं साधकस्तथा। भवेदनेकसुतवान्वंशवृद्धिस्तथा भवेत्॥ ३५॥

हेमपुष्पैर्यथा वृक्षस्तथा लक्ष्मीप्रदो भवेत्। अद्यावधि न कस्यापि व्रतमेतत्प्रकाशितम्॥ ३६॥

गोप्याद् गोप्यतरं चैव तवाग्रे कथितं मया। नैवात्र संशयः कार्यो भक्त्या चैतद् व्रतं चरेत्॥ ३७॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये प्रतिपद्रोटकव्रतद्वितीयोदुम्बरव्रतकथनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

तदनन्तर सामर्थ्य हो तो एक सौ अन्यथा दस ब्राह्मणोंको ही भोजन कराये॥ ३०—३३१/२ ॥ हे वत्स! इस प्रकार व्रत किये जानेपर जो फल होता है, उसे सुनिये। जिस प्रकार यह [गूलरका] वृक्ष बहुत जन्तुयुक्त फलोंवाला होता है, उसी प्रकार व्रतकर्ता भी अनेक पुत्रोंवाला होता है और उसके वंशकी वृद्धि होती है। वह व्रत करनेवाला सुवर्णमय पुष्पोंसे युक्त वृक्षकी भाँति लक्ष्मीप्रद हो जाता है॥ ३४-३५१/२ ॥ हे सनत्कुमार! आजतक मैंने किसीको भी यह व्रत नहीं बताया था। गोपनीय-से-गोपनीय इस व्रतको मैंने आपके समक्ष कहा है। इसके विषयमें संशय नहीं करना चाहिये और भक्तिपूर्वक इस व्रतका आचरण करना चाहिये॥ ३६-३७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'प्रतिपद्रोटकव्रतद्वितीयोदुम्बरव्रतकथन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि स्वर्णगौरीव्रतं शुभम्। श्रावणे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां विधातृज॥ १॥
प्रातः स्नात्वा नित्यकर्म कृत्वा सङ्कल्पमाचरेत्। पार्वतीशङ्करौ पूज्यौ षोडशैरुपचारकैः॥ २॥
देवदेव समागच्छ प्रार्थयेऽहं जगत्पते। इमां मया कृतां पूजां गृहाण सुरसत्तम॥ ३॥
वायनानि प्रदेयानि दम्पतीभ्यस्तु षोडश। भवान्याश्च महादेव्या व्रतसम्पूर्णहेतवे॥ ४॥
प्रीतये द्विजवर्याय वायनं प्रददाम्यहम्। धानाषोडशपक्वान्नैर्वेणुपात्राणि षोडश॥ ५॥
कुर्याद्वस्त्रादिभिर्युक्तान्याहूय द्विजदम्पतीन्। व्रतसम्पूर्णतार्थं तु ब्राह्मणेभ्यो ददाम्यहम्॥ ६॥
स्वलङ्कृताः सुवासिन्यः पातिव्रत्येन भूषिताः। मम कार्यसमृद्ध्यर्थं प्रतिगृह्णन्तु शोभनाः॥ ७।
एवं षोडशवर्षाणि ह्यष्टौ चत्वारि वा पुनः। एकवर्षं तु सद्यो वा कृत्वा चोद्यापनं चरेत्॥ ८॥
पूजान्ते च कथां श्रुत्वा वाचकं सम्प्रपूजयेत्॥ ९॥

सनत्कुमार उवाच

केन चीर्णं व्रतमिदं माहात्म्यं चास्य कीदृशम्। उद्यापनं कथं कार्यं तत्सर्वं वद मे प्रभो॥ १०॥

बारहवाँ अध्याय

स्वर्णगौरीव्रतका वर्णन तथा व्रतकथा

ईश्वर बोले—हे ब्रह्मपुत्र! अब मैं स्वर्णगौरीका शुभ व्रत कहूँगा; यह व्रत श्रावणमासमें शुक्लपक्षमें तृतीया तिथिको होता है॥ १॥ [इस दिन] प्रातःकाल स्नान करके नित्यकर्म करनेके अनन्तर संकल्प करे और सोलहों उपचारोंसे पार्वती तथा शंकरकी पूजा करे। [इसके बाद शिवजीसे प्रार्थना करे] 'हे देवदेव! आइये, हे जगत्पते! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ। हे सुरसत्तम! मेरी इस की गयी पूजाको आप स्वीकार करें।'॥ २-३॥ इस दिन भवानी पार्वतीकी प्रसन्नता और व्रतकी पूर्णताके लिये दम्पतियोंको सोलह वायन प्रदान करे और 'द्विजश्रेष्ठकी प्रसन्नताके लिये मैं यह वायन प्रदान करता हूँ'—[ऐसा कहे]। चावलके चूर्णके सोलह पक्वान्नोंसे सोलह बाँसकी टोकरियोंको भरकर तथा उन्हें वस्त्र आदिसे युक्त करे और पुनः सोलह द्विज दम्पतियोंको बुलाकर इस प्रकार कहते हुए प्रदान करे—'व्रतकी सम्पूर्णताके लिये मैं ब्राह्मणोंको यह दे रहा हूँ। मेरे कार्यकी समृद्धिके लिये सुन्दर अलंकारोंसे विभूषित तथा पातिव्रत्यसे सुशोभित ये शोभामयी सुहागिन स्त्रियाँ इन्हें ग्रहण करें'॥ ४—७॥ इस प्रकार सोलह वर्ष अथवा आठ वर्ष या चार वर्ष या एक वर्षतक इस व्रतको करके शीघ्र ही इसका उद्यापन कर देना चाहिये। पूजाके अनन्तर कथाका श्रवण करके वाचककी विधिवत् पूजा करनी चाहिये॥ ८-९॥

सनत्कुमार बोले—हे प्रभो! इस व्रतको सर्वप्रथम किसने किया, इसका माहात्म्य कैसा है और इसका उद्यापन किस

ईश्वर उवाच

साधु पृष्टं महाभाग कथयामि तवाग्रतः। स्वर्णगौरीव्रतं नाम सर्वसम्पत्करं नृणाम्॥ ११॥

पुरा सरस्वतीतीरे सुविलाख्या महापुरी। तत्र चन्द्रप्रभो नाम राजासीद्धनदोपमः॥ १२॥

तस्यास्तां रूपलावण्ये सौन्दर्यस्मेरविभ्रमे। महादेवीविशालाख्ये द्विभार्ये कमलेक्षणे॥ १३॥

तयोः प्रियतरा ज्येष्ठा तस्यासीन्नृपतेर्मता। स कदाचिद्वनं भेजे मृगयासक्तमानसः॥ १४॥

सिंहशार्दूलवाराहवनमाहिषकुञ्जरान् । हत्वा बभ्राम तृष्णार्तः स राजा विपिनं महत्॥ १५॥

चक्रकारण्डवाकीर्णं चञ्चरीकपिकाकुलम्। उत्फुल्लमल्लिकाजातिकुमुदोत्पलमण्डितम् ॥ १६॥

अपूर्वमवनीशोऽसौ ददर्शाप्सरसां सरः। समासाद्य सरस्तीरं पीत्वा जलमनुत्तमम्॥ १७॥

भक्त्या गौरीमर्चयन्तं ददर्शाप्सरसां गणम्। किमेतदिति पप्रच्छ राजा राजीवलोचनः॥ १८॥

स्वर्णगौरीव्रतमिदं क्रियतेऽस्माभिरुत्तमम्। सर्वसम्पत्करं नृणां तत्कुरुष्व नृपोत्तम॥ १९॥

प्रकार करना चाहिये? वह सब आप मुझे बतायें॥ १०॥

ईश्वर बोले—हे महाभाग! आपने उत्तम बात पूछी है, अब मैं आपके समक्ष मनुष्योंको सभी सम्पदाएँ प्रदान करनेवाले स्वर्णगौरी नामक व्रतका वर्णन करता हूँ॥ ११॥ पूर्वकालमें सरस्वती नदीके तटपर सुविला नामक विशाल पुरी थी। उस नगरीमें कुबेरके समान चन्द्रप्रभ नामक एक राजा था॥ १२॥

उस राजाकी रूपलावण्यसे सम्पन्न, सौन्दर्य तथा मन्द मुस्कानसे युक्त और कमलके समान नेत्रोंवाली महादेवी और विशाला नामक दो भार्याएँ थीं। उन दोनोंमें ज्येष्ठ महादेवी नामक भार्या राजाको अधिक प्रिय थी॥ १३$^{१}/_{२}$॥ आखेट करनेमें आसक्त मनवाले वे राजा किसी समय वनमें गये और सिंहों, शार्दूलों, सूकरों, वन्य भैसों तथा हाथियोंको मारकर प्याससे आकुल होकर उस घोर वनमें [इधर-उधर] भ्रमण करते रहे॥ १४-१५॥ उन राजाने [उस वनमें] चकवा-चकवी तथा बत्तखोंसे युक्त, भ्रमरों तथा पिकोंसे समन्वित और विकसित मल्लिका, चमेली, कुमुद तथा कमलसे सुशोभित अप्सराओंका एक सुन्दर सरोवर देखा। उस सरोवरके तटपर आकर उसका उत्तम जल पीकर राजाने भक्तिपूर्वक गौरीका पूजन करती हुई अप्सराओंको देखा। तब कमलके समान नेत्रोंवाले राजाने उनसे पूछा—'आपलोग यह क्या कर रही हैं?'॥ १६—१८॥ इसपर उन सबने कहा—'हमलोग स्वर्णगौरी नामक उत्तम व्रत कर रही हैं, यह व्रत मनुष्योंको सभी

राजोवाच

विधानं कीदृशं ब्रूत किं फलं विस्तरान्मम। ता ऊचुर्योषितः सर्वास्तृतीयायां नभोयुजि॥ २०॥

कर्तव्यं व्रतमेतद्धि स्वर्णगौरीतिसंज्ञितम्। पार्वतीशङ्करौ पूज्यौ भक्त्या परमया मुदा॥ २१॥

दोरकं षोडशगुणं बध्नीयाद्दक्षिणे करे। नरो वामे तु नारीणां गले वा बन्धनं मतम्॥ २२॥

तत्कृत्वा सोऽपि जग्राह व्रतं नियतमानसः। गुणैः षोडशभिर्युक्तं दोरकं दक्षिणे करे॥ २३॥

बध्नामि देवदेवेशि प्रसादं कुरु मे वरम्। एवं देव्या व्रतं कृत्वा आजगाम निजं गृहम्॥ २४॥

पप्रच्छ दोरकं हस्ते दृष्ट्वा ज्येष्ठातिकोपना। त्रोटयित्वा च चिक्षेप बाह्यं शुष्कतरूपरि॥ २५॥

न कर्तव्यं न कर्तव्यमिति राज्ञि वदत्यपि। तेन संस्पृष्टमात्रेण तरुः पल्लवितोऽभवत्॥ २६॥

तद् द्वितीया ततो दृष्ट्वा विस्मयाकुलिताभवत्। तत्रस्थं दोरकं छिन्नं गृहीत्वा सा बबन्ध ह॥ २७॥

ततस्तन्मासमाहात्म्यात्पत्युः प्रियतराभवत्। ज्येष्ठा व्रतापचारेण सा त्यक्ता दुःखिता वनम्॥ २८॥

सम्पदाएँ प्रदान करनेवाला है। हे नृपश्रेष्ठ! आप भी इस व्रतको कीजिये'॥ १९॥

राजा बोले—इसका विधान कैसा है और इसका फल क्या है? मुझे विस्तारसे यह बतायें। तब वे सभी स्त्रियाँ बताने लगीं—[हे राजन्!] यह स्वर्णगौरी नामक व्रत श्रावणमासके शुक्लपक्षमें तृतीया तिथिको किया जाता है। [इस व्रतमें] भक्तिपूर्वक अत्यन्त प्रसन्नताके साथ पार्वती तथा शिवकी पूजा करनी चाहिये। पुरुषको सोलह तारोंवाला एक डोरा दाहिने हाथमें बाँधना चाहिये। स्त्रियोंके लिये बायें हाथमें या गलेमें इस डोरेको बाँधना बताया गया है॥ २०—२२॥ तब संयतचित्तवाले राजाने भी उस व्रतको सम्पन्न करके सोलह धागोंसे युक्त डोरेको अपने दाहिने हाथमें बाँध लिया॥ २३॥

[उन्होंने कहा—] हे देवदेवेशि! मैं इस डोरेको बाँधता हूँ, आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों और मेरा कल्याण करें। इस प्रकार देवीका व्रत करके वे अपने घर आ गये॥ २४॥ उनके हाथमें डोरा देखकर ज्येष्ठ रानी महादेवीने पूछा और [सारी बात सुनकर] अत्यन्त कुपित हो उठी। इसके बाद 'ऐसा मत करो, मत करो'—राजाके इस प्रकार कहनेपर भी उसने उसे तोड़कर बाहर एक सूखे पेड़के ऊपर फेंक दिया। उस डोरेके स्पर्शमात्रसे वह वृक्ष पल्लवोंसे युक्त हो गया॥ २५-२६॥ तत्पश्चात् उसे देखकर दूसरी रानी आश्चर्यचकित हो उठी और उस वृक्षपर स्थित टूटे हुए डोरेको उसने [अपने बायें हाथमें] बाँध लिया। उसी समयसे उसके व्रतके माहात्म्यसे वह रानी राजाके लिये अत्यन्त प्रिय हो गयी। वह ज्येष्ठ रानी

प्रययौ सा महादेवीं ध्यायन्ती मनसा च ह। मुनीनामाश्रमे पुण्ये निवसन्ती क्वचित् क्वचित्॥ २९॥

निवारिता मुनिवरैर्गच्छ पापे यथासुखम्। धावन्ती विपिनं घोरं निर्विण्णा निषसाद ह॥ ३०॥

ततस्तत्कृपया देवी प्रादुरासीत्तदग्रतः। तां दृष्ट्वा दण्डवद्भूमौ नत्वा स्तुत्वा नृपप्रिया॥ ३१॥

जय देवि नमस्तुभ्यं जय भक्तवरप्रदे। जय शङ्करवामाङ्गे जय मङ्गलमङ्गले॥ ३२॥

ततो भक्त्या वरं लब्ध्वा गौरीमभ्यर्च्य यद् व्रतम्। चक्रे तस्य प्रभावेण भर्ता तां चानयद् गृहम्॥ ३३॥

ततो देव्याः प्रसादेन सर्वान्कामानवाप सा। ततस्ताभ्यां नृपो राज्यं चक्रे सर्वं समृद्धिमान्॥ ३४॥

अन्ते शिवपदं प्राप्तः कान्ताभ्यां सहितो नृपः॥ ३५॥

यः शोभनं व्रतमिदं कुरुते शिवायाः कुर्यान्मम प्रियतरो भविता च गौर्याः।
प्राप्य श्रियं समधिकां भुवि शत्रुसङ्घं निर्जित्य निर्मलपदं स शिवस्य याति॥ ३६॥

एतस्योद्यापनविधिं सावधानमना: शृणु। शुभे तिथौ शुभे वारे चन्द्रे ताराबलान्विते॥ ३७॥

व्रतके अपचारके कारण राजासे त्यक्त होकर दु:खित हो वनमें चली गयी। अपने मनमें भगवती देवीका ध्यान करती हुई वह मुनियोंके पवित्र आश्रममें निवास करने लगी, कहीं-कहीं श्रेष्ठ मुनियोंके द्वारा यह कहकर आश्रममें रहनेसे रोक दी जाती थी कि हे पापिनि! अपनी इच्छाके अनुसार यहाँसे चली जाओ। इस प्रकार घोर वनमें [इधर-उधर] भ्रमण करती हुई वह अत्यन्त खिन्न होकर [एक स्थानपर] बैठ गयी॥ २७—३०॥ तब उसके ऊपर कृपा करके देवी उसके समक्ष प्रकट हो गयीं। उन्हें देखकर वह रानी भूमिपर दण्डवत् प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगी—हे देवि! आपकी जय हो, आपको नमस्कार है, हे भक्तोंको वर देनेवाली! आपकी जय हो। शंकरके वामभागमें विराजनेवाली! आपकी जय हो। हे मंगलमंगले! आपकी जय हो॥ ३१-३२॥ तब [देवीकी] भक्तिके द्वारा वरदान प्राप्त करके और उन गौरीकी अर्चना करके उसने जो व्रत किया, उसके प्रभावसे रानीके पति उसे घर ले आये। तत्पश्चात् देवीकी कृपासे उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो गयीं। राजा सभी समृद्धियोंसे सम्पन्न होकर उन दोनोंके साथ पूर्णरूपसे राज्य करने लगे। अन्तमें राजाने उन दोनों रानियोंसहित शिवपदको प्राप्त किया॥ ३३—३५॥

जो स्वर्णगौरीके इस उत्तम व्रतको करता है, वह मेरा तथा गौरीका अत्यन्त प्रिय होता है और विपुल लक्ष्मी प्राप्त करके तथा भूलोकमें शत्रुसमूहको पराजितकर शिवजीके विशुद्ध लोकको जाता है॥ ३६॥ [हे सनत्कुमार!] अब आप

मण्डपेऽष्टदले पद्मे कुम्भं धान्योपरि न्यसेत्। पूर्णपात्रं ताम्रमयं पलषोडशनिर्मितम्॥ ३८॥

तिलपूर्णं तत्र देवीशङ्करप्रतिमे न्यसेत्। श्वेतवस्त्रयुगच्छन्नं श्वेतयज्ञोपवीतिनम्॥ ३९॥

वेदोक्तेन प्रतिष्ठा च कर्तव्या तु यथाविधि। सम्यक्पूजां तु सम्पाद्य रात्रौ जागरणं चरेत्॥ ४०॥

प्रातः पूजां ततः कृत्वा ततो होमं समाचरेत्। ग्रहहोमं पुरा कृत्वा प्रधानं जुहुयात्ततः॥ ४१॥

तिलाश्च यवसम्मिश्रा आज्येन च परिप्लुताः। द्रव्यप्रधाने सङ्ख्या तु सहस्रमथ वा शतम्॥ ४२॥

आचार्यं पूजयेत्पश्चाद्वस्त्रालङ्कारधेनुभिः। वायनानि च देयानि ब्राह्मणांश्चैव भोजयेत्॥ ४३॥

दम्पतीन् भोजयेच्चैव सङ्ख्यया षोडशैव तु। भूयसीं दक्षिणां दद्यात् स्वस्य वित्तानुसारतः।
बन्धुभिः सह भुञ्जीत हर्षोत्सवसमन्वितः॥ ४४॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये तृतीयायां स्वर्णगौरीव्रतकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२॥

दत्तचित्त होकर इस व्रतके उद्यापनकी विधि सुनिये। चन्द्रमा तथा ताराबलसे युक्त शुभ तिथि तथा शुभ वारमें एक मण्डप बनाकर उसके मध्यमें अष्टदलकमलके ऊपर धान्य रखकर उसपर एक कुम्भ स्थापित करे। पुनः उसके ऊपर सोलह पल प्रमाणका बना हुआ एक तिलपूरित ताम्रमय पूर्णपात्र रखे और उसपर पार्वती-शंकरकी दो प्रतिमाएँ स्थापित करे। शिवजीकी प्रतिमा श्वेतवर्णके दो वस्त्रों तथा शुक्लवर्णके यज्ञोपवीतसे सुशोभित हो॥ ३७—३९ ॥ तदनन्तर वेदोक्त मन्त्रोंसे विधिपूर्वक उनकी प्रतिष्ठा करे और भली-भाँति पूजा करके रात्रिमें जागरण करे। इसके अनन्तर प्रातःकाल पूजा करनेके बाद होम करे। सर्वप्रथम ग्रहहोम करके प्रधान होम करे। हवनके लिये यवमिश्रित तिल-घृतसे पूर्णरूपसे सिक्त होना चाहिये, एक हजार अथवा एक सौ आहुति डालनी चाहिये॥ ४०—४२ ॥ तत्पश्चात् वस्त्र, अलंकार तथा गौके द्वारा आचार्यकी पूजा करनी चाहिये और वायन प्रदान करना चाहिये। इसके बाद ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये, साथ ही सोलह दम्पतियों (पति-पत्नी)-को भी भोजन कराना चाहिये। अपने द्रव्य-सामर्थ्यके अनुसार उन्हें भूयसी दक्षिणा देनी चाहिये। अन्तमें हर्षोल्लाससे युक्त होकर बन्धुजनोंके साथ स्वयं भोजन करना चाहिये॥ ४३-४४॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'तृतीयामें स्वर्णगौरीव्रतकथन' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

केन व्रतेन भगवन्सौभाग्यमतुलं भवेत्। पुत्रपौत्रधनैश्वर्यं मनुजः सुखमेधते।
तन्मे वद महादेव व्रतानामुत्तमं व्रतम्॥ १॥

ईश्वर उवाच

अस्ति दूर्वागणपतेर्व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम्। भगवत्या पुरा चीर्णं पार्वत्या श्रद्धया सह॥ २॥
सरस्वत्या महेन्द्रेण विष्णुना धनदेन च। अन्यैश्च देवैर्मुनिभिर्गन्धर्वैः किन्नरैस्तथा।
चीर्णमेतद् व्रतं सर्वैः पुराभून्मुनिसत्तम॥ ३॥
चतुर्थी या भवेच्छुद्धा नभोमासि सुपुण्यदा। तस्यां व्रतमिदं कुर्यात्सर्वपापौघनाशनम्॥ ४॥
गजाननं चतुर्थ्यां तु एकदन्तविपाटितम्। विधाय हेम्ना विघ्नेशं हेमपीठासने स्थितम्॥ ५॥
तदा हेममयी दूर्वा तदाधारे व्यवस्थितम्। संस्थाप्य विघ्नहर्तारं कलशे ताम्रभाजने॥ ६॥
वेष्टिते रक्तवस्त्रेण सर्वतोभद्रमण्डले। पूजयेद्रक्तकुसुमैः पत्रिकाभिश्च पञ्चभिः॥ ७॥
अपामार्गशमीदूर्वातुलसीबिल्वपत्रकैः। अन्यैः सुगन्धैः कुसुमैर्यथालब्धैः सुगन्धिभिः॥ ८॥
फलैश्च मोदकैः पश्चादुपहारं प्रकल्पयेत्। यथावदुपचारैश्च पूजयेद् गिरिजासुतम्॥ ९॥

तेरहवाँ अध्याय

दूर्वागणपतिव्रतविधान

सनत्कुमार बोले—हे भगवन्! किस व्रतके द्वारा अतुलनीय सौभाग्य प्राप्त होता है और मनुष्य पुत्र, पौत्र, धन, ऐश्वर्य तथा सुख प्राप्त करता है? हे महादेव! व्रतोंमें उत्तम उस व्रतको आप मुझे बतायें॥ १॥

ईश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] तीनों लोकोंमें विख्यात दूर्वागणपतिव्रत है। सर्वप्रथम भगवती पार्वतीने श्रद्धाके साथ इस व्रतको किया था। हे मुनिसत्तम! इसी प्रकार पूर्वमें सरस्वती, महेन्द्र, विष्णु, कुबेर, अन्य देवता, मुनिजन, गन्धर्व, किन्नर—इन सभीने भी इस व्रतको किया था॥ २-३॥ श्रावणमासमें [शुक्लपक्षमें] जो शुद्ध तथा महापुण्यदायिनी चतुर्थी तिथि हो, उसी दिन सभी पापसमूहका नाश करनेवाले इस व्रतको करना चाहिये॥ ४॥ उस चतुर्थीके दिन स्वर्णपीठासनस्थित एकदन्त गजानन विघ्नेशकी स्वर्णमयी प्रतिमा बनाकर उसके आधारपर स्वर्णमय दूर्वाको व्यवस्थित करनेके पश्चात् विघ्नेश्वरको रक्तवस्त्रसे वेष्टित ताम्रमय पात्रके ऊपर रखकर सर्वतोभद्रमण्डलमें रक्तपुष्पोंसे, अपामार्ग-शमी-दूर्वा-तुलसी-बिल्वपत्र—इन पाँच पत्रोंसे, अन्य उपलब्ध सुगन्धित पुष्पोंसे, सुगन्धित द्रव्योंसे, फलोंसे तथा मोदकोंसे उनकी पूजा करनी चाहिये और इसके बाद उन्हें उपहार अर्पित करना चाहिये। इस प्रकार अनेक उपचारोंसे भी गिरिजापुत्र विघ्नेशकी पूजा करनी चाहिये॥ ५—९॥

प्रतिमायां स्वर्णमय्यां निर्मितायां यथाविधि। आवाहयामि विघ्नेशमागच्छतु कृपानिधिः॥ १०॥
रत्नबद्धमिदं हैमं सिंहासनमनुत्तमम्। आसनार्थमिदं दत्तं प्रतिगृह्णातु विश्वराट्॥ ११॥
उमासुत नमस्तुभ्यं विश्वव्यापिन्सनातन। विघ्नौघं छिन्धि सकलं मम पाद्यं ददामि ते॥ १२॥
गणेश्वराय देवाय उमापुत्राय वेधसे। अर्घ्यमेतत्प्रयच्छामि गृहाण भगवन्मम॥ १३॥
विनायकाय शूराय वरदाय नमो नमः। इदमाचमनीयं ते ददामि प्रतिगृह्यताम्॥ १४॥
गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्यो मया प्रार्थनयाहृतम्। स्नानार्थं ते मया दत्तं गृहाण सुरपुङ्गव॥ १५॥
सिन्दूरेण यथा लक्ष्म कुङ्कुमै रञ्जितं मया। वस्त्रयुग्ममिदं दत्तं गृहाण च नमोऽस्तु ते॥ १६॥
लम्बोदराय देवाय सर्वविघ्नापहारिणे। उमाङ्गमलसम्भूत चन्दनं प्रतिगृह्यताम्॥ १७॥
अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ रक्तचन्दनचर्चिताः। मया निवेदिता भक्त्या गृहाण सुरसत्तम॥ १८॥
चम्पकैः केतकीपत्रैर्जपाकुसुमसङ्घकैः। गौरीपुत्रं पूजयामि प्रसीद तु ममोपरि॥ १९॥
अनुग्रहाय लोकानां दानवानां वधाय च। अवतीर्णः स्कन्दगुरुर्धूपं गृह्णातु वै मुदा॥ २०॥
परं ज्योतिः प्रकाशाय सर्वसिद्धिप्रदाय च। दीपं तुभ्यं प्रदास्यामि महादेवात्मने नमः॥ २१॥

[इस प्रकार कहे—] सुवर्णनिर्मित इस प्रतिमामें मैं विघ्नेशका आवाहन करता हूँ, कृपानिधि पधारें। इस सुवर्णमय सर्वोत्तम रत्नजटित सिंहासनको मैंने आसनके लिये प्रदान किया है, विश्वके स्वामी इसे स्वीकार करें॥ १०-११॥

हे उमासुत! आपको नमस्कार है। हे विश्वव्यापिन्! हे सनातन! मेरे समस्त कष्टसमूहको आप नष्ट कर दें; मैं आपको पाद्य समर्पित करता हूँ॥ १२॥ गणेश्वर, देव, उमापुत्र तथा [मंगलका] विधान करनेवालेको यह अर्घ्य प्रदान करता हूँ। हे भगवन्! आप मेरे इस अर्घ्यको स्वीकार करें॥ १३॥ विनायक, शूर तथा वर प्रदान करनेवालेको नमस्कार है, नमस्कार है। मैं आपको यह अर्घ्य अर्पित करता हूँ, इसे ग्रहण करें॥ १४॥ मैंने गंगा आदि सभी तीर्थोंसे प्रार्थनापूर्वक यह जल प्राप्त किया है, हे सुरपुंगव! आपके स्नानके लिये मेरे द्वारा प्रदत्त इस जलको स्वीकार कीजिये॥ १५॥

सिन्दूरसे चित्रित तथा कुंकुमसे रंगा हुआ यह वस्त्रयुग्म आपको दिया गया है, इसे आप ग्रहण करें, लम्बोदर तथा सभी विघ्नोंका नाश करनेवाले देवताको नमस्कार है। उमाके शरीरके मलसे आविर्भूत हे गणेशजी! आप इस चन्दनको स्वीकार करें॥ १६-१७॥

हे सुरश्रेष्ठ! मैंने भक्तिके साथ आपको रक्तचन्दनसे मिश्रित अक्षत अर्पण किया है, हे सुरसत्तम! आप इसे स्वीकार करें॥ १८॥ मैं चम्पाके पुष्पों, केतकीके पत्रों तथा जपाकुसुमके पुष्पोंसे गौरीपुत्रकी पूजा करता हूँ, आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों॥ १९॥ [सभी] लोकोंपर अनुग्रह करने तथा दानवोंका वध करनेके लिये स्कन्दगुरुके रूपमें अवतार ग्रहण करनेवाले आप प्रसन्नतापूर्वक यह धूप लीजिये॥ २०॥ परम ज्योति प्रकाशित करनेवाले तथा सभी सिद्धियोंको देनेवाले आप

गणानां त्वेति नैवेद्यमर्पयेन्मोदकादिकम्। अन्नं चतुर्विधं चैव पायसं लड्डुकादिकम्॥ २२॥
कर्पूरैलादिसंयुक्तं नागवल्लीदलान्वितम्। ताम्बूलं ते प्रदास्यामि मुखवासार्थमादरात्॥ २३॥
हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः। दक्षिणां ते प्रदास्यामि ह्यतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ २४॥
गणेश्वर गणाध्यक्ष गौरीपुत्र गजानन। व्रतं सम्पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादादिभानन॥ २५॥
एवं सम्पूज्य विघ्नेशं यथाविभवविस्तरैः। सोपस्करं गणाध्यक्षमाचार्याय निवेदयेत्॥ २६॥
गृहाण भगवन्ब्रह्मन्गणराजं सदक्षिणम्। एतत्त्वद्वचनादद्य पूर्णतां यातु मे व्रतम्॥ २७॥
एवं यः पञ्चवर्षाणि कृत्वोद्यापनमाचरेत्। ईप्सितांल्लभते कामान्देहान्ते शाङ्करं पदम्॥ २८॥
यद्वा वर्षत्रयं कुर्यात्सर्वसिद्धिमवाप्नुयात्। उद्यापनं विना यस्तु करोति व्रतमुत्तमम्॥ २९॥
सर्वं निष्फलतां याति यथाविध्यपि यत्कृतम्। उद्यापनदिने प्रातस्तिलैः स्नानं समाचरेत्॥ ३०॥
हेम्नः पलात्तदर्धार्धात्कृत्वा गणपतिं बुधः। पञ्चगव्यैस्तु संस्नाप्य दूर्वाभिस्तु प्रपूजयेत्॥ ३१॥
मन्त्रैस्तु दशभिर्भक्त्या श्रद्धया सहितो नरः। गणाधीश नमस्तुभ्यमुमापुत्राघनाशन॥ ३२॥

महादेवपुत्रको मैं दीप अर्पण करता हूँ, आपको नमस्कार है॥ २१॥ तत्पश्चात् **'गणानां त्वा०'**—इस मन्त्रसे मोदक, चार प्रकारके अन्न (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य), पायस तथा लड्डू आदिका नैवेद्य अर्पण करे॥ २२॥

मैं आपकी मुखशुद्धिके लिये आदरपूर्वक कपूर, इलायची तथा नागवल्लीके दलसे युक्त ताम्बूल आपको प्रदान करता हूँ॥ २३॥ हिरण्यगर्भके गर्भमें स्थित अग्निके सुवर्णबीजको मैं दक्षिणारूपमें आपको प्रदान करता हूँ, अतः आप मुझे शान्ति प्रदान कीजिये॥ २४॥ हे गणेश्वर! हे गणाध्यक्ष! हे गौरीपुत्र! हे गजानन! हे इभानन! आपकी कृपासे मेरा व्रत पूर्ण हो॥ २५॥ इस प्रकार अपने सामर्थ्यके अनुसार विघ्नेशका विधिवत् पूजन करके उपस्कर (निवेदित सामग्री)-सहित गणाध्यक्षको आचार्यके लिये अर्पण कर देना चाहिये। [उनसे प्रार्थना करे] हे भगवन्! हे ब्रह्मन्! दक्षिणासहित गणराजकी मूर्तिको आप ग्रहण कीजिये, आपके वचनसे मेरा यह व्रत आज पूर्णताको प्राप्त हो॥ २६-२७॥ जो [मनुष्य] पाँच वर्षतक इस प्रकार व्रत करके उद्यापन करता है, वह वांछित मनोरथोंको प्राप्त करता है और देहान्तके बाद शिवलोक जाता है। अथवा तीन वर्षतक जो इस व्रतको करता है, वह भी सभी सिद्धियाँ प्राप्त करता है। जो व्यक्ति उद्यापनके बिना ही इस उत्तम व्रतको करता है, विधिके अनुसार भी उसका जो कुछ किया हुआ होता है, वह सब निष्फल हो जाता है॥ २८-२९½॥ [अब उद्यापनविधि बतायी जाती है।] उद्यापनके दिन प्रातःकाल तिलोंसे स्नान करे। तदनन्तर बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि एक पल अथवा आधा पल अथवा उसके भी आधे पल सुवर्णकी गणपति प्रतिमा बनाकर पंचगव्यसे स्नान कराकर भक्ति तथा श्रद्धाके साथ इन दस नाम-मन्त्रोंसे दूर्वादलोंसे सम्यक् पूजन करे—हे गणाधीश! हे उमापुत्र! हे अघनाशन!

विनायकेशपुत्रेति सर्वसिद्धिप्रदायक। एकदन्तेभवक्त्रेति तथा मूषकवाहन॥ ३३॥
कुमारगुरवे तुभ्यमितिनामपदैः पृथक्। पूर्वेद्युरधिवास्यैव प्रातर्होमं समाचरेत्॥ ३४॥
दूर्वाभिर्मोदकैश्चैव ग्रहहोमपुरःसरम्। पूर्णाहुतिं ततो हुत्वा आचार्यादीन्प्रपूजयेत्॥ ३५॥
गां सवत्सां घटोध्नीं च दद्याद्वित्तानुसारतः। एवं कृते व्रते वत्स सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ ३६॥
मदीयप्रियपुत्रस्य व्रतेनाहं च तोषितः। भुवि दत्त्वा सर्वभोगं ददाम्यन्ते च सद्गतिम्॥ ३७॥
यथा शाखाप्रशाखाभिर्दूर्वा वृद्धिं गता भवेत्। तथैव पुत्रपौत्रादिसन्ततिर्वृद्धिगामिनी॥ ३८॥
इत्येतत्कथितं गुह्यं दूर्वागणपतिव्रतम्। श्रेष्ठाच्छ्रेष्ठतरं चैव कर्तव्यं सुखमीप्सुभिः॥ ३९॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये दूर्वागणपतिव्रतकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

हे विनायक! हे ईशपुत्र! हे सर्वसिद्धिप्रदायक! हे एकदन्त! हे इभवक्त्र! हे मूषकवाहन! आपको नमस्कार है। आप कुमारगुरुको नमस्कार है—इन नाम पदोंसे पृथक्-पृथक् पूजन करे॥ ३०—३३ १/२ ॥

प्रथम दिन अधिवासन करके प्रातःकाल ग्रहहोम करके दूर्वादलों तथा मोदकोंसे होम करना चाहिये। तत्श्चात् पूर्णाहुति देकर आचार्य आदिका विधिवत् पूजन करना चाहिये और घट-तुल्य थनोंवाली वत्ससहित गायका दान अपने वित्तके अनुसार करना चाहिये। हे वत्स! इस प्रकार व्रत करनेपर मनुष्य सभी मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है॥ ३४—३६ ॥ [हे सनत्कुमार!] अपने प्रियपुत्र गणेशके व्रत करनेसे सन्तुष्ट होकर मैं [उस मनुष्यको] पृथ्वीपर सभी सुख प्रदान करके अन्तमें उसे सद्गति देता हूँ। जैसे दूर्वा अपनी शाखा-प्रशाखाओंके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होती है, उसी प्रकार उस मनुष्यकी पुत्र, पौत्र आदि सन्तति निरन्तर बढ़ती रहती है॥ ३७-३८ ॥ [हे सनत्कुमार!] मैंने दूर्वागणपतिका यह अत्यन्त गोपनीय व्रत कहा है, सुख चाहनेवालोंको इस सर्वोत्कृष्ट व्रतको [अवश्य] करना चाहिये॥ ३९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'दूर्वागणपतिव्रतकथन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि श्रावणे शुक्लपक्षके। पञ्चम्यां यच्च कर्तव्यं तच्छृणुष्व महामुने॥ १॥
चतुर्थ्यामेकभुक्तं तु नक्तं स्यात्पञ्चमीदिने। कृत्वा स्वर्णमयं नागमथवा रौप्यसम्भवम्॥ २॥
कृत्वा दारुमयं वापि अथवा मृण्मयं शुभम्। पञ्चम्यामर्चयेद्भक्त्या नागं पञ्चफणान्वितम्॥ ३॥
द्वारस्योभयतो लेख्या गोमयेन विषोल्बणाः। पूजयेद् विधिवच्चैव दधिदूर्वाङ्कुरैः शुभैः॥ ४॥
करवीरैर्मालतीभिर्जातिपुष्पैश्च चम्पकैः। तथा गन्धैरक्षतैश्च धूपैर्दीपैर्मनोहरैः॥ ५॥
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद् घृतमोदकपायसैः। अनन्तं वासुकिं शेषं पद्मनाभं च कम्बलम्॥ ६॥
तथा कर्कोटकं नाम नागमश्वं तथाष्टमम्। धृतराष्ट्रं शङ्खपालं कालीयं तक्षकं तथा॥ ७॥
हरिद्रया चन्दनेन कुड्ये नागकुलाधिपान्। नवकद्रूंश्च संलिख्य पूजयेत्कुसुमादिभिः॥ ८॥
वल्मीके पूजयेन्नागान्दुग्धं चैव तु पाययेत्। घृतयुक्तं शर्कराढ्यं यथेष्टं चार्पयेद् बुधः॥ ९॥
लोहपात्रे पोलिकादि न कुर्यात्तद्दिने नरः। गोधूमपायसं कुर्यान्नैवेद्यार्थं तु भक्तितः॥ १०॥
भर्जिताश्चणकाश्चैव व्रीहयो यावनालिकाः। अर्पणीयाश्च सर्पेभ्यः स्वयं चैव तु भक्षयेत्॥ ११॥

चौदहवाँ अध्याय

नागपंचमीव्रतका माहात्म्य

ईश्वर बोले—हे महामुने! अब श्रावणमासके शुक्लपक्षमें पंचमी तिथिको जो [व्रत] करणीय है, उसे मैं बताऊँगा; आप उसे सुनिये॥ १॥ चतुर्थीको एक बार भोजन करे और पंचमीको नक्त भोजन करे। स्वर्ण, चाँदी, काष्ठ अथवा मिट्टीका पाँच फणोंवाला सुन्दर नाग बनाकर पंचमीके दिन उस नागकी भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये॥ २-३॥ द्वारके दोनों ओर गोबरसे बड़े-बड़े नाग बनाये और दधि, शुभ दूर्वांकुरों, कनेर-मालती-चमेली-चम्पाके पुष्पों, गन्धों, अक्षतों, धूपों तथा मनोहर दीपोंसे उनकी विधिवत् पूजा करे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको घृत, मोदक तथा खीरका भोजन कराये॥ ४-५$^1/_2$॥ इसके बाद अनन्त, वासुकि, शेष, पद्मनाभ, कम्बल, कर्कोटक, अश्व, आठवाँ धृतराष्ट्र, शंखपाल, कालीय तथा तक्षक—इन सब नागकुलके अधिपतियोंको तथा इनकी माता कद्रूको भी हल्दी और चन्दनसे भीतपर लिखकर पुष्प आदिसे इनकी पूजा करे॥ ६—८॥ तदनन्तर बुद्धिमान्‌को चाहिये कि वल्मीक (वामी)-में प्रत्यक्ष नागोंका पूजन करे और उन्हें दूध पिलाये; घृत तथा शर्करामिश्रित पर्याप्त दुग्ध उन्हें अर्पण करे॥ ९॥ उस दिन व्यक्ति लोहेके पात्रमें पूड़ी आदि न बनाये, नैवेद्यके लिये गोधूमका पायस भक्तिपूर्वक अर्पण करे। भुने हुए चने, धानका लावा तथा जौ सर्पोंको अर्पण करना चाहिये और स्वयं भी उन्हें ग्रहण करना चाहिये।

बालकेभ्योऽर्पणीयाश्च दृढा दन्ता भवन्ति हि। वल्मीकस्य समीपे च गायनं वाद्यमेव च॥ १२॥
स्त्रीभिः कार्यं भूषिताभिः कार्यश्चैवोत्सवो महान्। एवं कृते कदाचिच्च सर्पतो न भयं भवेत्॥ १३॥
अन्यच्च शृणुयाद्विप्र लोकानां हितकाम्यया। कथयिष्यामि किञ्चित्ते तच्छृणुष्व महामुने॥ १४॥
नागदष्टो नरो वत्स प्राप्य मृत्युं व्रजत्यधः। अधो गत्वा भवेत्सर्पस्तामसो नात्र संशयः॥ १५॥
पूर्वोक्तविधिना सर्वमेकभुक्तादि कारयेत्। नागनिर्माणपूजादि विप्रैः सह तथादरात्॥ १६॥
एवं द्वादशमासेषु मासि मासि व्रतं चरेत्। पञ्चम्यां शुक्लपक्षस्य पूर्णे संवत्सरे पुनः॥ १७॥
ब्राह्मणांश्च यतींश्चैव नागानुद्दिश्य भोजयेत्। इतिहासविदे नागं काञ्चनं रत्नचित्रितम्॥ १८॥
गां च दद्यात्सवत्सां वै सर्वोपस्करसंयुताम्। दानकाले पठेदेतत्स्मरन्नारायणं विभुम्॥ १९॥
सर्वगं सर्वदातारमनन्तमपराजितम्। ये केचिन्मे कुले सर्पदष्टाः प्राप्ता ह्यधोगतिम्॥ २०॥
व्रतदानेन गोविन्द मुक्तिभाजो भवन्तु ते। इत्युच्चार्याक्षतैर्युक्तं सितचन्दनमिश्रितम्॥ २१॥
वासुदेवाग्रतो भक्त्या तोये तोयं विनिक्षिपेत्। अनेन विधिना सर्वे ये मरिष्यन्ति वा मृताः॥ २२॥
सर्पतस्तेऽभियास्यन्ति स्वर्गतिं मुनिसत्तम। एवं सर्वान्समुद्धृत्य कुलजान्कुलनन्दन॥ २३॥
प्रयाति शिवसान्निध्यं सेव्यमानोऽप्सरोगणैः। वित्तशाठ्यविहीनो यः सर्वमेतत्फलं लभेत्॥ २४॥

बालकोंको भी यही खिलाना चाहिये, इससे उनके दाँत दृढ़ होते हैं। वल्मीकके पास शृंगार आदिसे युक्त स्त्रियोंको गायन तथा वादन करना चाहिये और महान् उत्सव मनाना चाहिये। इस विधिसे व्रत करनेपर सर्पसे कभी भी भय नहीं होता॥ १०—१३॥ हे विप्र! मैं लोकोंके हितकी कामनासे आपसे कुछ और भी कहूँगा, हे महामुने! आप उसे सुनिये॥ १४॥ हे वत्स! नागके द्वारा डँसा गया मनुष्य मृत्यु प्राप्त करके अधोगतिको प्राप्त होता है और अधोगतिमें पहुँचकर वह तामसी सर्प होता है, इसमें सन्देह नहीं है। [इसकी निवृत्तिके लिये] पूर्वोक्त विधिसे एकभुक्त आदि समस्त कृत्य करे और ब्राह्मणोंसे नागनिर्माण तथा पूजा आदि आदरपूर्वक कराये॥ १५-१६॥ इस प्रकार बारहों मासोंमें प्रत्येक मासके शुक्लपक्षकी पंचमी तिथिको इस व्रतका अनुष्ठान करे और वर्षके पूर्ण होनेपर नागोंके निमित्त ब्राह्मणों तथा संन्यासियोंको भोजन कराये। किसी पुराणज्ञाता ब्राह्मणको रत्नजटित सुवर्णमय नाग और सभी उपस्करोंसे युक्त तथा बछड़ेसहित गौ प्रदान करे॥ १७-१८१/२॥ दानके समय सर्वव्यापी, सर्वगामी, सब कुछ प्रदान करनेवाले, अनन्तनारायणका स्मरण करते हुए यह कहना चाहिये—हे गोविन्द! मेरे कुलमें जो कोई भी लोग सर्पसे दंशित होकर अधोगतिको प्राप्त हुए हैं, वे [मेरेद्वारा किये गये] व्रत तथा दानसे मुक्त हो जायँ—ऐसा उच्चारण करके अक्षतयुक्त तथा श्वेतचन्दनमिश्रित जल वासुदेवके समक्ष भक्तिपूर्वक जलमें छोड़ दे॥ १९—२११/२॥ हे मुनिसत्तम! इस विधिसे व्रतके करनेपर [उसके कुलमें] जो सभी लोग सर्पके काटनेसे भविष्यमें मृत्युको प्राप्त होंगे अथवा पूर्वमें मर चुके हैं, वे स्वर्गगति प्राप्त करेंगे। साथ ही हे कुलनन्दन! इस विधिसे व्रत करनेवाला अपने सभी वंशजोंका उद्धार करके अप्सराओंके द्वारा सेवित होता हुआ शिव-

नक्तेन भक्तिसहिताः सितपञ्चमीषु ये पूजयन्ति सुभगान्कुसुमोपहारैः।
तेषां गृहेष्वभयदा हि भवन्ति सर्पा हर्षान्विता मणिमयूखविभासिताङ्गाः॥ २५॥
प्रतिग्रहं ये च कुर्युर्गृहदानस्य वाडवाः। प्रयान्ति सर्पतां तेऽपि घोरां भुक्त्वा तु यातनाम्॥ २६॥
अन्तकाले च ये केचिन्नागहत्यावशादिह। मृतापत्या अपुत्रा वा भवन्ति मुनिसत्तम॥ २७॥
कार्पण्यवशतः स्त्रीणां सर्पतां यान्ति केचन। निक्षेपानृतवादाच्च केचित्सर्पा भवन्ति हि॥ २८॥
अन्यैश्चापि निमित्तैर्ये सर्पतां यान्ति मानवाः। उपायोऽयं विनिर्दिष्टः सर्वेषां निष्कृतौ परः॥ २९॥
वित्तशाठ्यविहीनेन कृता चेन्नागपञ्चमी। तद्धितार्थं हरिं शेषः सर्वनागाधिपो विभुम्॥ ३०॥
बद्धाञ्जलिः प्रार्थयते वासुकिश्च सदाशिवम्। शेषवासुकिविज्ञप्त्या शिवविष्णू प्रसादितौ॥ ३१॥
मनोरथांस्तस्य सर्वान्कुरुतः परमेश्वरौ। नागलोके तु तान्भोगान्भुक्त्वा तु विविधान्बहून्॥ ३२॥
ततो वैकुण्ठमासाद्य कैलासं वापि शोभनम्। शिवविष्णुगणो भूत्वा लभते परमं सुखम्॥ ३३॥
एतत्ते कथितं वत्स नागानां पञ्चमीव्रतम्। अतः परं किमन्यत्त्वं श्रोतुमिच्छसि तद्वद॥ ३४॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये नागपञ्चमीव्रतकथनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

सान्निध्य प्राप्त करता है। जो [मनुष्य] वित्तशाठ्यसे रहित होता है, वही इस व्रतका सम्पूर्ण फल प्राप्त करता है॥ २२—२४॥

जो लोग शुक्लपक्षकी सभी पंचमी तिथियोंमें नक्तव्रत करके भक्तिसम्पन्न होकर पुष्प आदि उपहारोंसे सौभाग्यशाली नागोंका पूजन करते हैं, उनके घरोंमें मणियोंकी किरणोंसे विभूषित अंगोंवाले सर्प उन्हें अभय देनेवाले होते हैं और उनके ऊपर प्रसन्न रहते हैं॥ २५॥ जो ब्राह्मण गृहदानका प्रतिग्रह करते हैं, वे भी घोर यातना भोगकर अन्तमें सर्पयोनि प्राप्त करते हैं। हे मुनिसत्तम! जो कोई भी मनुष्य नागहत्याके कारण इस लोकमें मृत सन्तानोंवाले अथवा पुत्रहीन होते हैं, और जो कोई मनुष्य स्त्रियोंके प्रति कार्पण्यके कारण सर्पयोनिमें जाते हैं, कुछ लोग धरोहर रखकर उसे स्वयं ग्रहण कर लेने अथवा मिथ्याभाषणके कारण सर्प होते हैं अथवा अन्य कारणोंसे भी जो मनुष्य सर्पयोनिमें जाते हैं, उन सभीके प्रायश्चित्तके लिये यह उत्तम उपाय कहा गया है॥ २६—२९॥ यदि कोई मनुष्य वित्तशाठ्यसे रहित होकर नागपंचमीका व्रत करता है, तो उसके कल्याणके लिये सभी नागोंके अधिपति शेषनाग तथा वासुकि हाथ जोड़कर प्रभु श्रीहरिसे तथा सदाशिवसे प्रार्थना करते हैं। तब शेष और वासुकिकी प्रार्थनासे प्रसन्न हुए परमेश्वर शिव तथा विष्णु उस व्यक्तिके सभी मनोरथ पूर्ण कर देते हैं। वह नागलोकमें अनेक प्रकारके विपुल सुखोंका उपभोग करके बादमें उत्तम वैकुण्ठ अथवा कैलासमें जाकर शिव तथा विष्णुका गण बनकर परम सुख प्राप्त करता है॥ ३०—३३॥ हे वत्स! मैंने आपसे नागोंके इस पंचमी व्रतका वर्णन कर दिया, इसके बाद अब आप अन्य कौन-सा व्रत सुनना चाहते हैं, उसे बतलाइये॥ ३४॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'नागपंचमीव्रतकथन' नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

श्रुतमाश्चर्यजनकं नागानां पञ्चमीव्रतम्। षष्ठ्यां कथय देवेश किं व्रतं कीदृशो विधिः॥ १॥

ईश्वर उवाच

शुक्लपक्षे श्रावणे तु षष्ठ्यां कार्यं व्रतं शुभम्। सूपौदनाख्यं विप्रेन्द्र महामृत्युविनाशनम्॥ २॥

शिवालये गृहे वापि शिवं सम्पूज्य यत्नतः। सूपौदनस्य नैवेद्यमर्पयेद्विधिसंयुतः॥ ३॥

आम्रस्य लवणं शाकं साधने परिकल्पयेत्। नैवेद्यस्य पदार्थैस्तु वायनं ब्राह्मणस्य च॥ ४॥

य एतद्विधिना कुर्यात्तस्य पुण्यमनन्तकम्। अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्॥ ५॥

राजासीद्रोहितो नाम बहुकालमपुत्रवान्। पुत्रार्थी स तपश्चक्रे महत्परमदारुणम्॥ ६॥

प्रारब्धे नास्ति ते पुत्रो बोधितोऽपि स वेधसा। निर्बन्धान्न निवृत्तोऽभूत्तपसः सोऽतिलालसः॥ ७॥

ततः सङ्कटमापन्नो वेधाः प्रादुरभूत्पुनः। पुत्रो दत्तस्तव मया अल्पायुः स भविष्यति॥ ८॥

पत्नी राजा मन्त्रयेतां वन्ध्यात्वं तु गमिष्यति। अपुत्रत्वापवादश्च अलमित्येव जायताम्॥ ९॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

सूपौदनषष्ठीव्रत तथा अर्कविवाहविधि

सनत्कुमार बोले—हे देवेश! मैंने नागोंका यह आश्चर्यजनक पंचमीव्रत सुन लिया, अब आप बतायें कि षष्ठी तिथिमें कौन-सा व्रत होता है और उसकी विधि क्या है?॥ १॥

ईश्वर बोले—हे विप्रेन्द्र! श्रावणमासके शुक्ल पक्षमें षष्ठी तिथिको महामृत्युका नाश करनेवाले सूपौदन नामक शुभ व्रतको करना चाहिये॥ २॥ शिवालयमें अथवा घरमें ही प्रयत्नपूर्वक शिवका पूजन करके सूपौदनका नैवेद्य उन्हें विधिपूर्वक अर्पण करना चाहिये। इस व्रतके साधनमें आम्रका लवण मिलाकर शाक और अनेक पदार्थोंके नैवेद्य अर्पित करे, साथ ही ब्राह्मणको वायन प्रदान करे॥ ३-४॥ जो इस विधिसे व्रत करता है, उसका अनन्त पुण्य होता है। इस प्रकरणमें लोग यह एक प्राचीन इतिहास कहते हैं—रोहित नामक एक राजा था। बहुत समयके बाद भी उसे पुत्र नहीं हुआ। तब पुत्रकी अभिलाषावाले उस राजाने अत्यन्त कठोर तप किया॥ ५-६॥ 'तुम्हारे प्रारब्धमें पुत्र नहीं है'—ब्रह्माके द्वारा यह कहनेपर भी पुत्रके लिये अति लालसावाला वह हठवश [अपनी] तपस्यासे विचलित नहीं हुआ। इसके बाद जब राजा [तपस्या करते-करते] संकटग्रस्त हो गये तब ब्रह्माजी पुनः प्रकट हुए और बोले—'मैंने आपको पुत्रका वर दे दिया, किंतु वह अल्पायु होगा'॥ ७-८॥ तब राजा तथा उनकी पत्नीने विचार किया कि इससे मेरा बाँझपन तो दूर हो जायगा;

ततो ब्रह्मवरात्पुत्रो हर्षशोकपरोऽभवत्। जातकर्मादिसंस्कारांश्चक्रे राजा यथाविधि॥ १०॥
राज्ञी सा दक्षिणा नाम राजा चैव स रोहितः। शिवदत्त इति प्रेम्णा चक्रतुर्नाम तस्य तौ॥ ११॥
उपनीतश्च तनयो राज्ञा तु भयचेतसा। विवाहं न चकारास्य भूमिपालो मृतेर्भयात्॥ १२॥
तदा षोडशवर्षेऽसौ मरणं प्राप पुत्रकः। चिन्तामाप परां राजा ब्रह्मचारिमृतिं स्मरन्॥ १३॥
येषां कुले ब्रह्मचारी निधनं प्राप्नुयाद्यदि। तत्कुलं क्षयमायाति सोऽपि दुर्गतिमापतेत्॥ १४॥

सनत्कुमार उवाच

देवदेव जगन्नाथ परिहारोऽस्ति वा न वा। अस्ति चेच्च वदस्वाद्य दोषशान्तिर्यदा भवेत्॥ १५॥

ईश्वर उवाच

स्नातको ब्रह्मचारी च निधनं प्राप्नुयाद्यदि। स योज्यश्चार्कविधिना संयोज्यौ तौ ततःपरम्॥ १६॥
देशकालौ तु सङ्कीर्त्यामुकगोत्रादिनामतः। व्रतं वैसर्गिकं कुर्वे मृतस्य ब्रह्मचारिणः॥ १७॥
हेम्नाभ्युदयिकं कृत्वा प्रतिष्ठाप्य च पावकम्। आघारान्तं च सम्पाद्य चतुर्व्याहृतिभिर्हुनेत्॥ १८॥

सन्तानहीनताकी निन्दा नहीं होगी। कुछ समय पश्चात् ब्रह्माजीके वरदानसे उन्हें हर्ष तथा शोक देनेवाला पुत्र उत्पन्न हुआ। राजाने विधिपूर्वक उसके जातकर्म आदि सभी संस्कार किये। दक्षिणा नामवाली उस रानी तथा राजा रोहितने प्रेमपूर्वक उसका नाम शिवदत्त रखा॥ ९—११॥

[उचित समय आनेपर] भयभीत चित्तवाले राजाने पुत्रका यज्ञोपवीत-संस्कार किया; किंतु राजाने उसकी मृत्युके डरसे उसका विवाह नहीं किया। तदनन्तर सोलहवें वर्षमें वह पुत्र मृत्युको प्राप्त हो गया। तब ब्रह्मचारीकी मृत्युका स्मरण करते हुए राजाको महान् चिन्ता होने लगी कि जिनके कुलमें यदि ब्रह्मचारी मर जाय, उनका कुल विनष्ट हो जाता है और वह [ब्रह्मचारी] भी दुर्गतिमें पड़ जाता है॥ १२—१४॥

सनत्कुमार बोले—हे देवदेव! हे जगन्नाथ! इसके दोष-निवारणका उपाय है अथवा नहीं; यदि हो तो अभी बतायें, जिससे दोषकी शान्ति हो सके॥ १५॥

ईश्वर बोले—यदि कोई स्नातक अथवा ब्रह्मचारी मर जाय तो अर्कविधिसे उसका विवाह कर देना चाहिये। इसके बाद उन दोनों (ब्रह्मचारी तथा आक)-को परस्पर संयुक्त कर देना चाहिये॥ १६॥ [अब अर्कविवाहकी विधि कहते हैं] मृतकका गोत्र, नाम आदि लेकर देशकालका उच्चारण करके कर्ता कहे कि 'मैं मृत ब्रह्मचारीके दोषनिवारणहेतु वैसर्गिक व्रत करता हूँ'॥ १७॥ सर्वप्रथम सुवर्णसे आभ्युदयिक करके अग्निस्थापनकर आघार-होम करके चारों व्याहृतियों (**ॐ भूः**

व्रतपत्यग्नये चैव व्रतानुष्ठानसत्फलम्। सम्पादनाय विश्वेभ्यो देवेभ्यश्च हुनेद् घृतम्॥ १९॥
ततः स्विष्टकृते हुत्वा होमशेषं समापयेत्। देशकालौ पुनः स्मृत्वा करिष्येऽर्कविवाहकम्॥ २०॥
हेम्नाभ्युदयिकं कृत्वा अर्कशाखां शवं तथा। लिप्त्वा तैलहरिद्राभ्यां पीतसूत्रेण वेष्टयेत्॥ २१॥
पीतवस्त्रयुगेनापि अग्निं संस्थापयेत्ततः। आघारान्तेऽग्नये चैव विवाहविधियोजकम्॥ २२॥
बृहस्पतये कामाय चतुर्व्याहृतिभिस्तथा। आज्यं स्विष्टकृतं हुत्वा कर्म चैवं समापयेत्॥ २३॥
अर्कशाखां शवं चैव दाहयेच्च यथाविधि। मृतस्य म्रियमाणस्य षडब्दं व्रतमाचरेत्॥ २४॥
त्रिंशद्भ्यो ब्रह्मचारिभ्यो दद्यात्कौपीनकान्नवान्। हस्तमात्राः कर्णमात्रा दद्यात्कृष्णाजिनानि च॥ २५॥
पादुकां छत्रमाल्यानि गोपीचन्दनमेव च। मणिप्रवालमाल्यं च भूषणानि समर्पयेत्॥ २६॥
एवं कृते विधानेन विघ्नः कोऽपि न जायते।

ईश्वर उवाच

एवं श्रुत्वा ब्राह्मणेभ्यो राजा हृद्यविचारयत्॥ २७॥
भाति मेऽर्कविवाहोऽयमनुकल्पो न मुख्यकः। न ददाति प्रमीतस्य कन्यां कश्चिद्वधूं यतः॥ २८॥

ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः)-से हवन करना चाहिये। इसके बाद व्रतानुष्ठानके उत्तम फलके निमित्त व्रतपति अग्निके सम्पादनार्थ विश्वेदेवोंके लिये घृतकी आहुति डाले। तत्पश्चात् स्विष्टकृत् होम करके अवशिष्ट होम सम्पन्न करे। पुनः देशकालका उच्चारण करके इस प्रकार बोले—'मैं अर्कविवाह करूँगा'॥ १८—२०॥

तत्पश्चात् सुवर्णसे अभ्युदयिक कृत्य करके अर्कशाखा (आक पौधेकी डाली) तथा मृतकके देहको तेल तथा हल्दीसे लिप्त करके पीले सूतसे वेष्टित करे और पीले रंगके दो वस्त्रोंसे उन्हें ढक दे। इसके बाद अग्निस्थापन करे और विवाहविधिमें प्रयुक्त योजक नामक अग्निमें आघार होम करे तथा अग्निके लिये आज्य होम करे। तत्पश्चात् चारों व्याहृतियों (**ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः**)-से बृहस्पति तथा कामदेवके लिये आहुति प्रदान करे। पुनः घृतसे स्विष्टकृत् होम करके सम्पूर्ण हवन कर्म समाप्त करे॥ २१—२३॥ तत्पश्चात् आककी डाली तथा मृतकके शवको विधिपूर्वक जला दे। मृतक अथवा म्रियमाण (मरनेकी स्थितिवाले)-के निमित्त छः वर्षतक इस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। [इस अवसरपर] तीस ब्रह्मचारियोंको नवीन कौपीन वस्त्र प्रदान करना चाहिये और हस्तप्रमाण अथवा कर्ण (कान) तक लम्बाईवाले दण्ड तथा कृष्ण मृगचर्म भी प्रदान करने चाहिये। उन्हें चरणपादुका, छत्र, माला, गोपीचन्दन, प्रवालमणिकी माला तथा अनेक आभूषण समर्पित करने चाहिये। इस विधानसे व्रत करनेपर कोई भी विघ्न नहीं होता है॥ २४—२६१/२॥

ईश्वर बोले—ब्राह्मणोंसे यह सुनकर राजाने मनमें विचार किया कि यह अर्कविवाह तो मुझे गौण प्रतीत होता है,

अहं राजास्मि प्रददे रत्नानि न धनं बहु। ददामि तस्मै यः कश्चिद्दास्यतेऽस्य वधूं यदि॥ २९॥

विप्रः कश्चित्पुरे तस्मिन्नासीद्देशान्तरं गतः। तस्य पूर्वं मृतायास्तु भार्यायाः कन्यका शुभा॥ ३०॥

आसीद् द्वितीया भार्या तु दुष्टचित्ताविचारयत्। सपत्नीद्वेषतश्चापि बहुद्रव्यस्य लोभतः॥ ३१॥

दशवर्षा तु सा बाला दीना मातृवशं गता। सापत्नमाता सा लक्षं गृहीत्वा प्रददौ सुताम्॥ ३२॥

कन्यां गृहीत्वा जग्मुस्ते श्मशानं सरितस्तटे। विवाहं चक्रतुश्चैव शवेन सह कन्यकाम्॥ ३३॥

योजयित्वा विधानेन दग्धुं समुपचक्रमुः। ततः सा कन्यकापृच्छत्किमिदं क्रियते जनाः॥ ३४॥

ततस्ते दुःखिताः प्रोचुर्दह्यतेऽयं पतिस्तव। ततः प्रोवाच सा भीता रुदती बालभावतः॥ ३५॥

पतिः किं दह्यते मेऽसौ दग्धुं नैव ददाम्यहम्। गच्छध्वं सहिताः सर्वे तिष्ठाम्यत्राहमेकिका॥ ३६॥

पत्या सह गमिष्यामि उत्तिष्ठति यदा ह्यसौ। दृष्ट्वा तस्यास्तु निर्बन्धं करुणादीनचेतसः॥ ३७॥

मुख्य बिलकुल नहीं; क्योंकि कोई भी व्यक्ति मरे हुएको अपनी कन्या नहीं देता है। मैं राजा हूँ, अतः मैं उस व्यक्तिको अनेक रत्न तथा बहुत धन दूँगा जो कोई भी इसकी वधूके रूपमें अपनी कन्या प्रदान करेगा॥ २७—२९॥ उस नगरमें कोई ब्राह्मण था। [उस समय] वह किसी दूसरे नगरमें गया हुआ था। उसकी पहले ही मृत हो चुकी भार्यासे एक सुन्दर पुत्री विद्यमान थी॥ ३०॥

ब्राह्मणकी दूसरी पत्नी थी, जो दुष्ट मनवाली थी और उसके प्रति बुरे विचार रखती थी। वह कन्या दस वर्षकी थी, वह दीन थी तथा अपनी सौतेली माताके अधीन थी। अतः सौतपनके द्वेष तथा अत्यधिक धनके लोभके कारण उस सौतेली माताने एक लाख मुद्रा लेकर उस कन्याको [मृतक राजकुमारके निमित्त] दे दिया॥ ३१-३२॥ कन्याको ले करके वे लोग नदीके तटपर श्मशानभूमिमें [राजकुमारके पास] गये और शवके साथ उसका विवाह कर दिया। इसके अनन्तर विधानपूर्वक [शवके साथ] कन्याका योग करके जब वे जलानेकी तैयारी करने लगे, तब उस कन्याने पूछा—हे सज्जनो! आपलोग यह क्या कर रहे हैं?॥ ३३-३४॥ तब वे सभी दुःखित होकर कहने लगे कि हमलोग तुम्हारे इस पतिको जला रहे हैं। इसपर भयभीत होकर बालस्वभावके कारण रोती हुई उस कन्याने कहा—आपलोग मेरे पतिको क्यों जला रहे हैं; मैं जलाने नहीं दूँगी। आप सभी लोग एक साथ चले जाइये, मैं अकेली ही यहाँ बैठी रहूँगी। जब ये उठेंगे, तब मैं इन पतिदेवके साथ चली जाऊँगी॥ ३५-३६१/२॥ उसका हठ देखकर दयाके कारण दीनचित्तवाले कुछ भाग्यवादी वृद्धजन वहाँ इस प्रकार कहने

प्रारब्धवादिनो वृद्धाः केचित्तत्रैवमूचिरे। अहो किं वा भावि कर्म ज्ञायते नैव कस्यचित्॥ ३८॥
दीनपालः कृपालुश्च भगवान् किं करिष्यति। निराश्रिता च कन्येयं मात्रा सापत्नभावतः॥ ३९॥
विक्रीता स्यादतो देवः कदाचित्पालको भवेत्। अतोऽस्माभिरशक्येयं दग्धुं चायं तथा शवः॥ ४०॥
अतोऽस्माभिश्च गन्तव्यं सर्वेषां रोचते यदि। सम्मन्त्र्यैवं तु सर्वेऽपि गतास्ते नगरं प्रति॥ ४१॥
सैका शिवं पार्वतीं च स्मरन्ती भयविह्वला। अजानन्ती बालभावात्किमेतदिति विह्वला॥ ४२॥
तस्याः संस्मरणाद्देव्याः सर्वज्ञौ पार्वतीशिवौ। करुणापूर्णहृदयौ तत्राजग्मतुरञ्जसा॥ ४३॥
वृषारूढौ तु तौ दृष्ट्वा दम्पती तेजसां निधी। ननाम दण्डवद्भूमौ न जानन्त्यपि देवते॥ ४४॥
आश्वासनं परं लेभे आगता संगतिस्त्विति। उवाच च पतिः किं मे जागृतो नैव जायते॥ ४५॥
प्रसन्नौ बालभावेन दयया च परिप्लुतौ। उचतुस्ते जनन्यास्तु व्रतं सूपौदनाभिधम्॥ ४६॥
व्रतं सङ्कल्प्य सतिलं गृहीत्वास्य प्रयच्छ मे। ब्रूहि यन्मज्जनन्यास्ति व्रतं सूपौदनाभिधम्॥ ४७॥
कृतं तस्य प्रभावेण उत्तिष्ठतु पतिर्मम। तया कृतं तथा सर्वं शिवदत्तस्तथोत्थितः॥ ४८॥
उपदिश्य व्रतं तस्यास्तदान्तर्दधतुः शिवौ। शिवदत्तस्तु पप्रच्छ का त्वं क्वेहागतोऽस्म्यहम्॥ ४९॥

लगे—'अहो! होनहार भी क्या होता है। इसे कोई भी नहीं जान सकता। दीनोंकी रक्षा करनेवाले तथा कृपालु भगवान् न जाने क्या करेंगे! सौतकी पुत्रीका भाव रखनेके कारण सौतेली माताने इस असहाय कन्याको बेचा है, अतः सम्भव है कि भगवान् इसके रक्षक हो जायँ। अतः हमलोग इस कन्याको तथा इस शवको नहीं जला सकते, इसलिये यदि सभीको अच्छा लगे तो हमलोगोंको [यहाँसे] चल देना चाहिये।' परस्पर ऐसा निश्चय करके वे सब अपने नगरको चले गये॥ ३७—४१॥

बालस्वभावके कारण 'यह सब क्या है'—इसे न जानती हुई भयसे व्याकुल वह कन्या एकमात्र शिव तथा पार्वतीका स्मरण करती रही। उस कन्याके स्मरण करनेसे सब कुछ जाननेवाले तथा दयासे पूर्ण हृदयवाले शिव-पार्वती शीघ्र ही वहाँ आ गये॥ ४२-४३॥ वृषभ (नन्दी)-पर विराजमान उन तेजनिधान शिव-पार्वतीको देखकर उन देवोंको न जानती हुई भी उस कन्याने पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़कर प्रणाम किया। तब उसे आश्वासन प्राप्त हुआ कि पतिसे तुम्हारे मिलनेका समय अब आ गया है। तब कन्याने कहा कि क्या मेरे पति अब जीवित नहीं होंगे?॥ ४४-४५॥ तब उसके बालभावसे प्रसन्न तथा दयासे परिपूर्ण शिव-पार्वतीने कहा कि तुम्हारी माताने सूपौदन नामक व्रत किया था। उस व्रतका फल संकल्प करके तुम अपने पतिको प्रदान करो। तुम ऐसा कहो कि 'मेरी माताके द्वारा जो सूपौदन नामक व्रत किया गया है, उसके प्रभावसे मेरे पति उठ जायँ।' तब उसने सब कुछ वैसे ही किया और [उसके परिणामस्वरूप] शिवदत्त उठ गया॥ ४६—४८॥ उस कन्याको व्रतका उपदेश करके शिव तथा पार्वती अन्तर्धान हो गये। तब शिवदत्तने [उस कन्यासे]

सा चाह किञ्चिद् वृत्तान्तं रात्रिश्चापि गताभवत्। प्रातर्नदीतीरगता जना राज्ञे न्यवेदयन्॥ ५०॥
राजन् पुत्रः स्नुषा चैव नदीतीरेऽवतिष्ठतः। प्रामाणिकेभ्यः श्रुत्वासौ हर्षं लोकोत्तरं ययौ॥ ५१॥
हर्षभेरीं वादयन्स नदीतीरे समाययौ। जनाश्च मुदिताः सर्वे प्रशशंसुर्जनाधिपम्॥ ५२॥
राजन् गतः कालगृहं पुत्रस्ते पुनरागतः। प्रशशंस स्नुषां राजा किमहं शस्यते जनैः॥ ५३॥
दुरदृष्टोऽधमश्चाहं धन्येयं सुभगा स्नुषा। एतत्पुण्यप्रभावेण पुत्रोऽयं जीवितो मम॥ ५४॥
एवं स्नुषां सुसम्भाव्य राजा ब्राह्मणसत्तमान्। पूजयामास विभवैर्दानमानपुरःसुरम्॥ ५५॥
बहिर्नीतप्रमीतस्य पुनर्ग्रामप्रवेशने। विधिं ब्राह्मणसन्दिष्टं शान्तिकं विधिनाचरत्॥ ५६॥
एतत्ते कथितं वत्स व्रतं सूपौदनाभिधम्। पञ्चवर्षाणि कृत्वैतत्पश्चादुद्यापनं चरेत्॥ ५७॥
प्रतिमां पार्वतीशस्य अर्चयेत्प्रतिवासरे। प्रातर्होमं प्रकुर्वीत चरुणाम्रदलैस्तथा॥ ५८॥
नैवेद्यं वायनं चैव व्रतोक्तविधिनाचरेत्। पुत्रं चिरायुषं लब्ध्वा अन्ते शिवपुरं व्रजेत्॥ ५९॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये सूपौदनषष्ठीव्रतकथनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

पूछा—'तुम कौन हो और मैं यहाँ कैसे आ गया हूँ?'॥ ४९॥ तब उस कन्याने कुछ वृत्तान्त कहा और इस प्रकार रात्रि व्यतीत हो गयी। प्रातः होनेपर नदीके तटपर गये हुए मनुष्योंने [आ करके] राजासे यह निवेदन किया—हे राजन्! आपके पुत्र तथा पुत्रवधू नदीके तटपर विद्यमान हैं। विश्वस्त लोगोंसे यह बात सुनकर वे राजा बहुत हर्षित हुए॥ ५०-५१॥ वे हर्षभेरी बजवाते हुए नदीके तटपर आये। सभी लोग प्रसन्न होकर राजाकी प्रशंसा करने लगे॥ ५२॥

[वे बोले—] हे राजन्! मृत्युके घर गया हुआ आपका पुत्र पुनः लौटकर आ गया है। इसपर राजा पुत्रवधूकी प्रशंसा करने लगे और बोले कि लोग मेरी प्रशंसा क्यों करते हैं [प्रशंसायोग्य तो यह वधू है।], मैं भाग्यहीन और अधम हूँ। धन्य और सौभाग्यशालिनी तो यह पुत्रवधू है; क्योंकि इसीके पुण्यके प्रभावसे मेरा यह पुत्र जीवित हुआ है॥ ५३-५४॥ इस प्रकार अपनी पुत्रवधूकी प्रशंसा करके राजाने दान और सम्मानके साथ श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका पूजन किया और ग्रामसे बाहर ले जाये गये मृत व्यक्तिके पुनः ग्राममें प्रवेश करानेसे सम्बन्धित शान्तिक विधिको ब्राह्मणोंके निर्देशपर विधिपूर्वक सम्पन्न किया॥ ५५-५६॥ हे वत्स! इस प्रकार मैंने आपसे यह सूपौदन नामक व्रत कहा। इसे पाँच वर्षतक करनेके अनन्तर उद्यापन करना चाहिये। पार्वती तथा शिवकी प्रतिमाका प्रतिदिन पूजन करना चाहिये और प्रातःकाल आमके पल्लवोंके साथ चरुका होम करना चाहिये; साथ ही नैवेद्य तथा वायन अर्पित करना चाहिये। मनुष्य यदि व्रतकी बतायी गयी इस विधिके अनुसार आचरण करे तो वह दीर्घजीवी पुत्र प्राप्त करके मृत्युके अनन्तर शिवलोक जाता है॥ ५७—५९॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'सूपौदनषष्ठीव्रतकथन' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

षोडशोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि शीतलासप्तमीव्रतम्। श्रावणे शुक्लपक्षे तु सप्तम्यामाचरेद् व्रतम्॥ १॥
कुड्ये लिखित्वा वापीं तु तथा सलिलदेवताः। सप्तसङ्ख्या दिव्यरूपा अशरीरिणसंज्ञकाः॥ २॥
बालद्वययुता नारी पुरुषत्रयसंज्ञिता। अश्वश्च वृषभश्चैव शिबिका नरवाहना॥ ३॥
पूजा वार्देवतानां स्यात्षोडशैरुपचारकैः। दध्योदनस्य नैवेद्यं साधने कर्कटीफलम्॥ ४॥
द्विजाय वायनं दद्यान्नैवेद्यस्य पदार्थकैः। सप्तवर्षाणि कृत्वैवं सुवासिन्यश्च सप्त वै॥ ५॥
प्रत्यब्दं भोजनीयाः स्युः पश्चादुद्यापनं चरेत्। वार्देवतानां प्रतिमा एकस्मिन् स्वर्णपात्रके॥ ६॥
बालेन सहिताः पूज्याः सायं पूर्वेऽह्नि भक्तितः। प्रातर्होमं च चरुणा ग्रहहोमपुरःसरम्॥ ७॥
व्रतमेतत्पुरा चीर्णं फलितं च तथा शृणु। सौराष्ट्रदेशे नगरमासीच्छोभनसंज्ञितम्॥ ८॥
तत्रासीद्धनिकः कश्चित्सर्वधर्मपरायणः। स वापीं खानयामास निर्जले विजने वने॥ ९॥
पादमार्गां शुभां रम्यां बहुद्रव्यव्ययेन सः। पशूनां जलपानाय अपि योग्यां दृढाश्मभिः॥ १०॥
बद्धां चिरस्थायिनीं च बहिःप्रान्ते द्रुमैर्युतम्। आरामं कारयामास श्रान्तपान्थसुखाय च॥ ११॥

सोलहवाँ अध्याय

शीतलासप्तमीव्रतका वर्णन एवं व्रतकथा

ईश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] अब मैं शीतलासप्तमीव्रतको कहूँगा। श्रावणमासमें शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको यह व्रत करना चाहिये॥ १॥ सर्वप्रथम भीतपर एक वापीका आकार बनाकर अशरीरीसंज्ञक दिव्य रूपवाले सात जलदेवताओं, दो बालकोंसे युक्त पुरुषत्रयसंज्ञक नारी, एक घोड़ा, एक वृषभ तथा नरवाहनसहित एक पालकी भी उसपर लिखे, इसके बाद सोलह उपचारोंसे सातों जलदेवताओंकी पूजा होनी चाहिये। इस व्रतके साधनमें ककड़ी और दधि-ओदनका नैवेद्य अर्पित करना चाहिये। तत्पश्चात् नैवेद्यके पदार्थोंमेंसे ब्राह्मणको वायन देना चाहिये। इस प्रकार सात वर्षतक इस व्रतको करनेके अनन्तर उद्यापन करना चाहिये। [इस व्रतमें] प्रत्येक वर्ष सात सुवासिनियोंको भोजन कराना चाहिये॥ २—५$^{१}/_{२}$॥ जलदेवताओंकी प्रतिमाएँ एक सुवर्णपात्रमें रखकर बालकोंके सहित एक दिन पहले सायंकालमें भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिये। प्रात:काल पहले ग्रह होम करके [देवताओंके निमित्त] चरुसे होम करना चाहिये॥ ६-७॥ जिसने पहले इस व्रतको किया और उसे जो फल प्राप्त हुआ, उसे आप सुनें। सौराष्ट्र देशमें शोभन नामक एक नगर था; उसमें सभी धर्मोंके प्रति निष्ठा रखनेवाला एक धनिक (साहूकार) रहता था। उसने जलरहित एक निर्जन वनमें अत्यधिक धन व्यय करके शुभ तथा मनोहर सीढ़ियोंसे युक्त, पशुओंको जल पीनेहेतु सरलतासे उतरने-चढ़नेयोग्य, दृढ़ पत्थरोंसे बँधी हुई तथा दीर्घकालतक स्थिर रहनेवाली एक बावली खुदवायी। उसने उसके बाहर चारों ओर थके राहियोंके विश्रामके लिये [अनेक प्रकारके] वृक्षोंसे शोभायमान

परं शुष्कं जलं तत्र न लब्धं बिन्दुमात्रकम्। प्रयासो मे वृथा जातो द्रव्यं च व्ययितं वृथा॥ १२॥
इति चिन्तापरश्चासीद्धनिको धनदाभिधः। रात्रौ तत्रैव सुष्वाप स्वप्ने तं जलदेवताः॥ १३॥
आगत्य कथयामासुः शृणूपायं जलागमे। दास्यसे यदि ते पौत्रं बलिमस्माकमादृतः॥ १४॥
तदैव वापिकेयं ते जलपूर्णा भविष्यति। दृष्ट्वैवं गृहमागत्य पुत्रायाकथयद्धनी॥ १५॥
द्रविणो नाम तत्पुत्रः सोऽपि धर्मपरायणः। शृणुष्व मम वत्सस्य भवान्मज्जनको यतः॥ १६॥
तत्राप्येतद्धर्मकार्यं किं विचार्यमिह त्वया। स्थावरश्चास्ति धर्मोऽयं नश्वरं च सुतादिकम्॥ १७॥
अल्पमौल्यं महावस्तु लाभोऽयं दुर्लभः क्रयः। शीतांशुश्चैव चण्डांशुर्वर्तेते तनयौ मम॥ १८॥
शीतांशुर्नाम ज्येष्ठोऽयं बलिर्देयोऽविचारतः। मन्त्रोऽयं सर्वथा स्त्रीभिर्ज्ञातव्यो नैव भोः पितः॥ १९॥
उपायस्तत्र मत्पत्नी गर्भिणी वर्ततेऽधुना। आसन्नप्रसवा चैव गन्त्र्यसौ स्वपितुर्गृहे॥ २०॥
प्रसूत्यर्थं कनिष्ठोऽसौ तया सह गमिष्यति। तदा कार्यमिदं तात निर्विघ्नेन भविष्यति॥ २१॥
इति श्रुत्वा पुत्रवाक्यं पिता तं स तुतोष ह। धन्योऽसि पुत्र धन्योऽहं त्वया पुत्रेण पुत्रवान्॥ २२॥

एक बाग लगवाया; किंतु वह बावली सूखी रह गयी और वहाँ एक बूँद भी जल नहीं प्राप्त हुआ॥ ८—११ १/२ ॥ 'मेरा प्रयास व्यर्थ हो गया और मैंने व्यर्थमें [अपना] धन व्यय किया'—इस चिन्तामें पड़ा हुआ वह धनद नामक धनिक वहींपर रातमें सो गया। तब उसके स्वप्नमें आकर जलदेवताओंने उससे कहा कि '[हे धनद!] जलके आनेका उपाय सुनो; यदि तुम हमलोगोंके लिये आदरपूर्वक अपने पौत्रकी बलि दोगे, तो उसी समय तुम्हारी यह बावली जलसे भर जायगी'॥ १२—१४ १/२ ॥ यह स्वप्न देख करके घर आकर धनिकने अपने पुत्रको बताया। द्रविण नामक उसका वह पुत्र भी धर्मपरायण था। वह कहने लगा—'सुनिये; आप मुझ-जैसे पुत्रके पिता हैं। यह धर्मका कार्य है; इसमें आपको विचार ही क्या करना चाहिये। यह धर्म ही स्थिर रहनेवाला है और पुत्र आदि तो नश्वर हैं। अल्प मूल्यसे महान् वस्तु प्राप्त हो रही है, अत: यह क्रय (खरीददारी) अति दुर्लभ है, इसमें लाभ-ही-लाभ है॥ १५—१७ १/२ ॥ शीतांशु और चण्डांशु—ये मेरे दो पुत्र हैं। इनमें शीतांशु नामक यह जो ज्येष्ठ पुत्र है, उसकी बलि बिना कुछ विचार किये आप प्रदान करें, किंतु हे पिताजी! स्त्रियोंको यह रहस्य किसी भी प्रकार ज्ञात नहीं होना चाहिये। उसमें उपाय यह है कि इस समय मेरी पत्नी गर्भिणी है। उसका प्रसवकाल सन्निकट है और प्रसूतिके लिये वह अपने पिताके घर जानेवाली है; वह कनिष्ठ पुत्र भी उसके साथ जायगा। हे तात! उस समय यह कार्य निर्विघ्न रूपसे सम्पन्न हो जायगा॥ १८—२१ ॥ पुत्रकी यह बात सुनकर पिता उसपर बहुत प्रसन्न हुए और बोले—हे पुत्र! तुम धन्य हो; और मैं भी धन्य हूँ, जो कि तुम-जैसे पुत्रसे पुत्रवान् हूँ॥ २२ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तस्याः सुशीलायाः पितुर्गृहात्। आकारणं समगमत्तदा सा च जगाम ह॥ २३॥
ज्येष्ठोऽस्माकं समीपेऽस्तु कनिष्ठो नीयतां त्वया। सा तथैव सती चक्रे भर्तृश्वशुरवाक्यतः॥ २४॥
तदा तौ पुत्रपितरौ तैलेनाभ्यज्य बालकम्। स्नापयित्वा सुवस्त्रैश्च भूषणैः समलङ्कृतम्॥ २५॥
पूर्वाषाढावारुणर्क्षे स्थापयामासतुर्मुदा। वाप्या वार्देवतास्तुष्टा भवन्त्विति समूचतुः॥ २६॥
तदैव वापी पूर्णाभूत्सुधातुल्येन वारिणा। उभौ गृहं जग्मतुस्तौ हर्षशोकसमन्वितौ॥ २७॥
सा सुशीला पितुर्गेहेऽसूत पुत्रं तृतीयकम्। मासत्रयोत्तरं गेहं निजं गन्तुं च निर्गता॥ २८॥
वापीसमीपं प्राप्तासौ वापीं पूर्णां ददर्श च। विस्मयं परमं प्राप तत्र स्नानं चकार ह॥ २९॥
श्वशुरस्य प्रयासो मे सार्थकश्च धनव्ययः। तद्दिने सप्तमी चासीच्छ्रावणे शुक्लपक्षके॥ ३०॥
सुशीलाया व्रतं चासीच्छीतलासंज्ञितं शुभम्। सा तत्र पाकमकरोदोदनं चानयद् दधि॥ ३१॥
वार्देवताश्च सम्पूज्य दध्यन्नं कर्कटीफलम्। नैवेद्यं कल्पयामास दत्त्वा विप्राय वायनम्॥ ३२॥
स्वयं तदेव बुभुजे सहिता सहवासिभिः। ततो योजनमात्रं तु तस्या ग्रामो बभूव ह॥ ३३॥

इसी बीच उस सुशीलाके पिताके घरसे बुलावा आ गया और वह जाने लगी। [तब उसके श्वसुर तथा पतिने कहा कि] यह ज्येष्ठ पुत्र हमलोगोंके पास ही रहेगा और तुम इस छोटे पुत्रको ले जाओ। इसपर उस साध्वीने पति तथा श्वशुरके कहनेसे वैसा ही किया॥ २३-२४॥ तत्पश्चात् [उसके चले जानेपर] उन पिता-पुत्रने उस बालकके शरीरमें तेलका लेप करके [भलीभाँति] स्नान कराकर सुन्दर वस्त्रों तथा आभूषणोंसे अलंकृत करके पूर्वाषाढ़ा और शतभिषा नक्षत्रमें उसे प्रसन्नतापूर्वक [बावलीके तटपर] खड़ा किया और कहा कि बावलीके जलदेवता [इस बालकके बलिदानसे] प्रसन्न हों। उसी समय वह बावली अमृततुल्य जलसे परिपूर्ण हो गयी और वे दोनों (पिता-पुत्र) हर्ष-शोकसे युक्त होकर घर चले गये॥ २५—२७॥ उस सुशीलाने अपने पिताके घरमें तीसरा पुत्र उत्पन्न किया और तीन महीनेके बाद अपने घर जानेके लिये निकल पड़ी॥ २८॥ [मार्गमें आते समय] वह बावलीके पास पहुँची और उस बावलीको जलसे भरा हुआ देखा; वह बड़े आश्चर्यमें पड़ गयी। उसने उसमें स्नान किया और वह कहने लगी कि मेरे श्वशुरका परिश्रम और धनका व्यय सफल हुआ। उस दिन श्रावणके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथि थी और सुशीलाका शीतला-सप्तमी नामक शुभ व्रत था॥ २९-३०१/२॥ उसने वहींपर भात पकाया और दही ले आयी। इसके बाद जलदेवताओंको विधिवत् पूजन करके दही, भात तथा ककड़ी फलका नैवेद्य अर्पण किया और फिर ब्राह्मणको वायन देकर साथके लोगोंके साथ मिलकर उसी नैवेद्यान्नका भोजन किया। वहाँसे उसका ग्राम एक योजन दूरीपर था॥ ३१—३३॥

ततः सा निर्गता चासीदारुह्य शिबिकां शुभाम्। बालकद्वयसंयुक्ता ततस्ता जलदेवताः॥ ३४॥
ऊचुः परस्परं चास्याः पुत्रो देयो यतोऽनया। अस्माकं व्रतमाचीर्णं प्रज्ञा च विहिता परा॥ ३५॥
एतद्व्रतप्रभावेण नूतनो दीयते सुतः। पूर्वजातो यदि ग्राह्यो ह्यस्मत्तोषस्य किं फलम्॥ ३६॥
विसर्जयामासुरिति चोक्त्वान्योन्यं दयालवः। मातरं दर्शयामासुर्वाप्या निष्कास्य बाह्यतः॥ ३७॥
अधावत्पृष्ठतो मातुर्मातरित्याह्वयञ्छिशुः। संश्रुत्य पुत्रशब्दं सा परावृत्यावलोकयत्॥ ३८॥
दृष्ट्वा सा नन्दनं स्वीयं चकिता साभवद्धृदि। स्थाप्याङ्के मूर्ध्न्यवघ्राय किञ्चित्पप्रच्छ नो सुतम्॥ ३९॥
बिभेष्यतीति बुद्ध्या सा हृदये त्वन्वचिन्तयत्। तस्करैर्यदि वा नीतस्तर्ह्यलङ्कारवान्कथम्॥ ४०॥
पिशाचैर्यदि वा नीतो मोक्षितश्च पुनः कथम्। चिन्तासमुद्रे मग्नाः स्युर्गृहसम्बन्धिनो जनाः॥ ४१॥
इत्येवं चिन्तयन्ती सा नगरद्वारमाप सा। जनाः सङ्कथयामासुः सुशीला सुसमागता॥ ४२॥
श्रुत्वा तु पितृपुत्रौ तौ परां चिन्तामवापतुः। किं वदिष्यति चास्माकमस्माभिर्वा किमुच्यताम्॥ ४३॥
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता पुत्रत्रयसमन्विता। ज्येष्ठं दृष्ट्वा तु तं बालं श्वशुरश्च पतिश्च सः॥ ४४॥

तदनन्तर वह सुन्दर पालकीपर आरूढ़ होकर दोनों पुत्रोंके साथ वहाँसे चल पड़ी। तब वे जलदेवता परस्पर कहने लगे कि हमें इसका पुत्र [जीवित करके] प्रदान करना चाहिये; क्योंकि इसने हमारा व्रत किया है और यह उत्तम बुद्धि रखनेवाली है। इस व्रतके प्रभावसे इसे नूतन पुत्र देना चाहिये। पहले उत्पन्न हुए इसके पुत्रको यदि हमलोग ग्रहण किये रह गये, तब हमारी प्रसन्नताका फल ही क्या? ॥ ३४—३६ ॥ आपसमें ऐसा कहकर उन दयालु जलदेवताओंने बावलीमेंसे [उसके पुत्रको] बाहर निकालकर माताको दिखा दिया और फिर उन्हें विदा किया। तब वह शिशु 'माता'—ऐसा कहकर पुकारता हुआ अपनी माताके पीछे दौड़ पड़ा। अपने पुत्रका शब्द सुनकर उसने पीछे मुड़कर देखा। वहाँ अपने पुत्रको देखकर वह मन-ही-मन बहुत चकित हुई। उसे अपनी गोदमें लेकर उसने उसका मस्तक सूँघा, किंतु 'यह डर जायगा'—इस विचारसे उसने पुत्रसे कुछ भी नहीं पूछा। वह अपने मनमें सोचने लगी कि यदि इसे चोर उठा ले गये थे तो यह आभूषणोंसे युक्त कैसे है और यदि पिशाचोंने इसे पकड़ लिया था तो पुनः छोड़ क्यों दिया? इसके घरके सम्बन्धीजन तो चिन्ताके समुद्रमें निमग्न होंगे ॥ ३७—४१ ॥ इस प्रकार सोचती हुई वह नगरके द्वारपर आ गयी, तब लोग कहने लगे कि सुशीला आयी है। यह सुनकर वे पिता-पुत्र अत्यन्त चिन्तित हुए कि वह न जाने क्या कहेगी और [पुत्रके विषयमें] हम लोग क्या बतायेंगे? ॥ ४२-४३ ॥ इसी बीच वह तीनों पुत्रोंके साथ आ गयी। तब ज्येष्ठ बालक [शीतांशु]-को देखकर

आश्चर्यं परमं प्राप परां मुदमवाप च। त्वया किं पुण्यमाचीर्णं व्रतं वापि शुचिस्मिते॥ ४५॥

पतिव्रतासि धन्यासि पुण्यवत्यसि भामिनि। मासद्वयं तु सञ्जातमकस्मान्नास्त्यभूच्छिशुः॥ ४६॥

स च त्वया पुनर्लब्धो वापी पूर्णापि चाभवत्। एकपुत्रा गतासीस्त्वमागतासि त्रयान्विता॥ ४७॥

त्वयोद्धृतं कुलं सुभ्रु किं त्वां स्तौमि शुभानने। श्वशुरेण स्तुतैवं सा पत्या प्रेम्णा च वीक्षिता॥ ४८॥

श्वश्र्वा चानन्दितोवाच पुण्यं मार्गस्य सर्वशः। प्रापुः सर्वेऽपि चानन्दं भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान्॥ ४९॥

इत्येतत्कथितं वत्स शीतलासप्तमीव्रतम्। दध्योदनं शीतलं च शीतलं कर्कटीफलम्॥ ५०॥

वापीजलं शीतलं तु शीतलाश्चापि देवताः। तापत्रयस्य सन्तापाच्छीतलाव्रतिनस्ततः॥ ५१॥

अतो हेतोः सप्तमीयं शीतलेति यथार्थिका॥ ५२॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये शीतलासप्तमीव्रतकथनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

[सुशीलाके] श्वशुर तथा पिता घोर आश्चर्यमें पड़ गये और बहुत आनन्दित भी हुए॥ ४४१/२ ॥

[वे बोले—] हे शुचिस्मिते! तुमने कौन-सा पुण्य कार्य अथवा व्रत किया था। हे भामिनि! तुम पतिव्रता हो, धन्य हो और पुण्यवती हो। इस शिशुके मृत हुए तो दो माह व्यतीत हो चुके हैं और तुमने इसे फिरसे प्राप्त कर लिया तथा वह बावली भी [जलसे] परिपूर्ण हो गयी। तुम एक पुत्रके साथ [अपने पिताके घर] गयी थी और तीन पुत्रोंके साथ आयी हो। हे सुभ्रु! तुमने तो कुलका उद्धार कर दिया। हे शुभानने! मैं तुम्हारी कितनी प्रशंसा करूँ॥ ४५—४७१/२ ॥ इस प्रकार श्वशुरने उसकी प्रशंसा की, पतिने उसे प्रेमपूर्वक देखा तथा सासने उसे आनन्दित किया। तत्पश्चात् उसने मार्गके पुण्यका समस्त वृत्तान्त कहा। अन्तमें उन सभीने मनोवांछित सुखोंका उपभोग करके बहुत आनन्द प्राप्त किया॥ ४८-४९ ॥ हे वत्स! मैंने इस शीतला सप्तमी-व्रतको आपसे कह दिया। इस व्रतमें दधि-ओदन शीतल, ककड़ीका फल शीतल और बावलीका जल भी शीतल होता है तथा इसके देवता भी शीतल हैं। अतः शीतला-सप्तमीका व्रत करनेवाले तीनों प्रकारके तापोंके सन्तापसे शीतल हो जाते हैं। इसी कारणसे यह सप्तमी 'शीतला-सप्तमी'—इस यथार्थ नामवाली है॥ ५०—५२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'शीतलासप्तमी-व्रतकथन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

अथ वक्ष्यामि देवेश पवित्रारोपणं शुभम्। सप्तम्यामधिवास्याथ ह्यष्टम्यामर्पयेत्तु तत्॥ १॥
पवित्रं कारयेद्यस्तु तस्य पुण्यफलं शृणु। सर्वयज्ञव्रतं दानं सर्वतीर्थाभिषेचनम्॥ २॥
प्राप्नुयान्नात्र सन्देहो यस्मात्सर्वगता शिवा। नाधनो न च दुःखानि न पीडा व्याधयोऽपि च॥ ३॥
न भयं शत्रुजं तस्य न ग्रहैः पीड्यते क्वचित्। सिध्यन्ति सर्वकार्याणि ह्यल्पानि च महान्ति च॥ ४॥
नातः परतरं वत्स ह्यन्यत्पुण्यविवृद्धये। नराणां च नृपाणां च स्त्रीणां चैव विशेषतः॥ ५॥
सौभाग्यजननं तात तव स्नेहात्प्रकाशितम्। श्रावणे शुक्लसप्तम्यामधिवास्य विधातृज॥ ६॥
सर्वोपस्करसंयुक्तो देव्यां सद्भक्तिमांश्च सः। सर्वाणि पूजाद्रव्याणि गन्धपुष्पफलानि च॥ ७॥
नैवेद्यान् विविधांश्चैव वस्त्राद्याभरणानि च। सम्पाद्य शोधयेदेतान्प्राशयेत्पञ्चगव्यकम्॥ ८॥
चरुणा दिग्बलिं दद्यात्कार्यं चैवाधिवासनम्। छादयेत्सदृशैर्वस्त्रैः पत्रैश्चैतत्पवित्रकम्॥ ९॥
देव्यास्तन्मूलमन्त्रेण शतवाराभिमन्त्रितम्। स्थापयेत्पुरतो देव्याः सर्वशोभासमन्वितम्॥ १०॥
देव्यास्तु मण्डपं कृत्वा रात्रौ जागरणं चरेत्। नटनर्तकवेश्यानां कुशलान्विविधान्गणान्॥ ११॥

सत्रहवाँ अध्याय

श्रावणमासकी अष्टमीको देवीपवित्रारोपण, पवित्रनिर्माणविधि तथा नवमीका कृत्य

ईश्वर बोले—हे देवेश! अब मैं शुभ पवित्रारोपणका वर्णन करूँगा। सप्तमी तिथिको अधिवासन करके अष्टमी तिथिमें पवित्रकोंको अर्पण करना चाहिये॥ १॥ जो पवित्रक बनवाता है उसके पुण्यफलको सुनिये—सभी प्रकारके यज्ञ, व्रत तथा दान करने और सभी तीर्थोंमें स्नान करनेका फल मनुष्यको केवल पवित्रधारण करनेसे प्राप्त हो जाता है; क्योंकि भगवती शिवा सर्वव्यापिनी हैं। [इस व्रतसे] मनुष्य धनहीन नहीं होता, उसे दु:ख-पीड़ा तथा व्याधियाँ नहीं होतीं, उसे शत्रुओंसे होनेवाला भय नहीं होता और वह कभी भी ग्रहोंसे पीड़ित नहीं रहता। इससे छोटे-बड़े सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं॥ २—४॥ हे वत्स! मनुष्यों तथा राजाओंके और विशेष करके स्त्रियोंके पुण्यकी वृद्धिके लिये इससे श्रेष्ठ अन्य कोई भी व्रत नहीं है। हे तात! सौभाग्य प्रदान करनेवाले इस व्रतको मैंने आपके प्रति स्नेहके कारण बताया है॥ ५$^{1}/_{2}$॥ हे ब्रह्मपुत्र! श्रावणमासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको अधिवासन करके देवीके प्रति उत्तम भक्तिसे सम्पन्न वह मनुष्य सभी सामग्रियोंसे युक्त होकर सभी पूजाद्रव्यों—गन्ध-पुष्प-फल, अनेक प्रकारके नैवेद्य तथा वस्त्राभरण आदि सम्पादित करके इनकी शुद्धि करे, इसके बाद पंचगव्यका प्राशन कराये, चरुसे दिग्बलि प्रदान करे तथा अधिवासन करे। तत्पश्चात् सदृश वस्त्रों और पत्रोंसे इस पवित्रकको आच्छादित करे; पुन: देवीके उस मूलमन्त्रसे उसे सौ बार अभिमन्त्रित करके सर्वशोभासमन्वित उस पवित्रकको देवीके समक्ष स्थापित करे। तत्पश्चात् देवीका मण्डप बनाकर रात्रिमें जागरण करे और नट, नर्तक तथा वारांगनाओंके अनेकविध कुशलसमूहों और गाने-बजाने तथा नाचनेकी कलामें प्रवीण लोगोंको देवीके

स्थायेद्वाद्यगीतादीन्नृत्यविद्याविशारदान् । प्रत्यूषे विधिवत् स्नात्वा दिग्भ्यो दद्यात्पुनर्बलीन्॥ १२॥
देवीं सम्पूज्य विधिवत् स्त्रियो भोज्यास्तथा द्विजाः। पवित्रमर्पयेद्देव्या आदावन्ते च दक्षिणाम्॥ १३॥
यथाशक्त्या भवेद्व्रत्स नियमः कार्यसाधकः। स्त्रियोऽक्षा मृगया मांसं राज्ञा वर्ज्यं प्रयत्नतः॥ १४॥
स्वाध्यायश्च द्विजाचार्यैर्न कार्यं कर्षणं कृषेः। वणिग्भिर्न च वाणिज्यं सप्तपञ्चदिनानि वा॥ १५॥
अथवा त्रीणि चैकं वा दिनं तस्यार्धमेव वा। देव्या व्यापार आसक्तिः कर्तव्या सततं हृदि॥ १६॥
न करोति विधानेन पवित्रारोपणं बुधः। तस्य सांवत्सरी पूजा निष्फला मुनिसत्तम॥ १७॥
तस्माद्भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्देवीपरायणैः । वर्षे वर्षे प्रकर्तव्यं पवित्रारोपणं शुभम्॥ १८॥
कर्काटकगते सूर्ये तथा सिंहगतेऽपि वा। अष्टम्यां शुक्लपक्षस्य दद्याद्देव्याः पवित्रकम्॥ १९॥
एतस्याकरणे दोषो नित्यमेतत्प्रकीर्तितम्॥ २०॥

सनत्कुमार उवाच

देवदेव महादेव पवित्रं यत्त्वयोदितम्। निर्मितव्यं कथं स्वामिंस्तद्विधिं वद सर्वशः॥ २१॥

ईश्वर उवाच

हेमताम्रक्षौमरूप्यैः सूत्रैः कौशेयपट्टजैः। कुशैः काशैश्च कार्पासैर्ब्राह्मण्या कर्तितैः शुभैः॥ २२॥
कृत्वा त्रिगुणितं सूत्रं त्रिगुणीकृत्य साधयेत्। ततोत्तमं पवित्रं तु षष्ट्या सह शतैस्त्रिभिः॥ २३॥

समक्ष स्थापित करे॥ ६—११½ ॥

तत्पश्चात् प्रात:काल विधिवत् स्नान करके पुन: बलि प्रदान करे। इसके बाद विधिवत् देवीकी पूजा करके स्त्रियों तथा द्विजोंको भोजन कराये। पहले देवीको पवित्रक अर्पण करे और अन्तमें दक्षिणा प्रदान करे॥ १२-१३ ॥ हे वत्स! अपनी सामर्थ्यके अनुसार कार्यसिद्धि करनेवाले उस नियमको धारण करे। राजाको प्रयत्नपूर्वक स्त्रीके प्रति आसक्ति, जुआ, आखेट तथा मांस आदिका परित्याग कर देना चाहिये। ब्राह्मणों तथा आचार्योंको स्वाध्यायका और वैश्योंको खेतीका कार्य तथा व्यवसाय नहीं करना चाहिये। सात, पाँच, तीन, एक अथवा आधा दिन ही त्यागपूर्वक रहना चाहिये और देवीके ही कार्योंमें निरन्तर अपने मनमें आसक्ति बनाये रखनी चाहिये॥ १४—१६ ॥ हे मुनिसत्तम! जो बुद्धिमान् व्यक्ति विधानपूर्वक पवित्रारोपण नहीं करता है, उसकी वर्षभरकी पूजा व्यर्थ हो जाती है। अत: मनुष्योंको चाहिये कि देवीपरायण तथा भक्तिसे सम्पन्न होकर प्रत्येक वर्ष शुभ पवित्रारोपण अवश्य करें। कर्क अथवा सिंहराशिमें सूर्यके प्रवेश करनेपर शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिको देवीको पवित्रक अर्पित करना चाहिये। [हे सनत्कुमार!] इसके न करनेमें दोष होता है, इसे नित्य करना बताया गया है॥ १७—२० ॥

सनत्कुमार बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे स्वामिन्! आपने जिस पवित्रकका कथन किया, वह कैसे बनाया जाना चाहिये, उसकी सम्पूर्ण विधि बतायें॥ २१ ॥

ईश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] सुवर्ण, ताम्र, चाँदी, रेशमीवस्त्रसे निकाले गये, कुश, काशके अथवा ब्राह्मणीके द्वारा काते गये कपासके सूत्रको तिगुना करके फिर उसका तिगुना करके पवित्रक बनाना चाहिये। उनमें तीन सौ साठ तारोंका

सप्तत्या सहितं द्वाभ्यां शताभ्यां मध्यमं स्मृतम्। साशीतिना शतेनैव कनिष्ठं तत्समाचरेत्॥ २४॥
उत्तमं तु शतग्रन्थि पञ्चाशद्ग्रन्थि मध्यमम्। पवित्रकं कनिष्ठं स्यात्षट्त्रिंशद्ग्रन्थि शोभनम्॥ २५॥
अथवाङ्गगुणैर्वेदैर्द्वाभ्यां द्वादशतोऽपि वा। चतुर्विंशद्वा दशाष्टग्रन्थिभिर्वा पवित्रकम्॥ २६॥
अथ चाष्टोत्तरशतं चतुःपञ्चाशदेव वा। सप्तविंशतिरेवैवं ज्येष्ठमध्यकनीयसम्॥ २७॥
अधमं नाभिमात्रं स्यादूरुमात्रं तु मध्यमम्। उत्तमं जानुमात्रं तत्प्रतिमाया निगद्यते॥ २८॥
रञ्ज्याः सर्वाः कुङ्कुमेन पवित्रग्रन्थयः शुभाः। देवीं पूज्य पुरोभागे सर्वतोमण्डले शुभे॥ २९॥
कलशे वेणुपटले पवित्राणि निधापयेत्। त्रिसूत्र्यां ब्रह्मविष्णवीशानावाह्य च ततः शृणु॥ ३०॥
नवसूत्र्यां तथोङ्कारं सोमं वह्निं विधिं तथा। नागांश्चन्द्ररवीशांश्च विश्वेदेवांश्च स्थापयेत्॥ ३१॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि स्थाप्या ग्रन्थिषु देवताः। क्रिया च पौरुषी वीरा विजया चापराजिता॥ ३२॥
मनोन्मनी जया भद्रा मुक्तिरीशा तथैव च। प्रणवादिनमोन्तैश्च नामभिर्ग्रन्थिसङ्ख्यया॥ ३३॥
आवर्त्यमानैरावाह्य पूजयेच्चन्दनादिभिः। धूपितं प्रणवेनाभिमन्त्र्य देव्यै समर्पयेत्॥ ३४॥
एतत्ते कथितं देव्याः पवित्रारोपणं शुभम्। अन्येषां चैव देवानां प्रतिपत्प्रभृतिष्वपि॥ ३५॥

पवित्रक उत्तम और दो सौ सत्तर तारोंका पवित्रक मध्यम कहा गया है। एक सौ अस्सी तारवाले पवित्रकको कनिष्ठ जानना चाहिये॥ २२—२४॥

इसी प्रकार एक सौ ग्रन्थिका पवित्रक उत्तम, पचास ग्रन्थिका पवित्रक मध्यम और छत्तीस ग्रन्थिका सुन्दर पवित्रक कनिष्ठ होता है। अथवा छः, तीन, चार, दो, बारह, चौबीस, दस अथवा आठ ग्रन्थियोंका पवित्रक बनाना चाहिये। अथवा एक सौ आठ ग्रन्थिका पवित्रक उत्तम, चौवन ग्रन्थिका मध्यम और सत्ताईस ग्रन्थिका कनिष्ठ होता है। प्रतिमाके घुटनेतक लम्बा पवित्रक उत्तम, जंघातक लम्बा पवित्रक मध्यम और नाभिपर्यन्त लम्बा पवित्रक अधम कहा जाता है॥ २५—२८॥ पवित्रककी सभी शुभ ग्रन्थियोंको कुंकुमसे रंग दे, इसके बाद अपने समक्ष शुभ सर्वतोभद्रमण्डलपर देवीका पूजन करके कलशके ऊपर बाँसके पात्रमें पवित्रकोंको रखे। तीन तारवाले पवित्रकमें ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवका आवाहन करके स्थापित करे। इसके बाद सुनिये—नौ तारके पवित्रकमें ओंकार, सोम, अग्नि, ब्रह्मा, समस्त नागों, चन्द्रमा, सूर्य, शिव और विश्वेदेवोंकी स्थापना करे॥ २९—३१॥ [हे सनत्कुमार!] अब मैं ग्रन्थियोंमें स्थापित किये जानेवाले देवताओंका वर्णन करूँगा। क्रिया, पौरुषी, वीरा, विजया, अपराजिता, मनोन्मनी, जया, भद्रा, मुक्ति और ईशा—ये देवियाँ हैं। इनके नामोंके पूर्वमें प्रणव तथा अन्तमें '**नमः**' लगाकर ग्रन्थिसंख्याके अनुसार क्रमशः आवाहन करके चन्दन आदिसे इनकी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद प्रणवसे अभिमन्त्रित करके देवीको धूप अर्पण करना चाहिये॥ ३२—३४॥ [हे सनत्कुमार!] मैंने आपसे देवीके इस शुभ पवित्रारोपणका वर्णन कर दिया। इसी प्रकार अन्य देवताओंका भी पवित्रारोपण प्रतिपदा आदि तिथियोंमें करना चाहिये,

पवित्रारोपणं कार्यं देवतास्ता वदामि ते। धनदः श्रीस्तथा गौरी गणेशः सोमराड् गुरुः ॥ ३६ ॥
भास्करश्चण्डिकाम्बा च वासुकिश्च तथर्षयः। चक्रपाणिर्ह्यनन्तश्च शिवः कः पितरस्तथा ॥ ३७ ॥
प्रतिपत्प्रभृतिष्वेताः पूज्यास्तिथिषु देवताः। मुख्याया देवतायास्तु पवित्रारोपणं त्विदम् ॥ ३८ ॥
तदङ्गदेवतायास्तु त्रिसूत्रं स्यात्पवित्रकम् ॥ ३९ ॥

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि कर्तव्यं नवमीदिने। श्रावणे मासि विप्रेन्द्र पक्षयोरुभयोरपि ॥ ४० ॥
कुमारी नामिका दुर्गा पूजनीया यथाविधि। कुर्यान्नक्तव्रतं तत्र क्षीरमाक्षिकभोजनम् ॥ ४१ ॥
उपवासपरो वा स्यान्नवम्यां पक्षयोर्द्वयोः। कुमारी वेति नाम्ना वै चण्डिकामर्चयेत्सदा ॥ ४२ ॥
कृत्वा रौप्यमयीं भक्त्या दुर्गां वै पापनाशिनीम्। करवीरस्य पुष्पैस्तु गन्धैरगरुचन्दनैः ॥ ४३ ॥
धूपेन च दशाङ्गेन मोदकैश्चापि पूजयेत्। कुमारीं भोजयेत्पश्चात्स्त्रियो विप्रांश्च भक्तितः ॥ ४४ ॥
भुञ्जीत वाग्यतः पश्चाद् बिल्वपत्रकृताशनः। एवं यः पूजयेद्दुर्गां श्रद्धया परया युतः ॥ ४५ ॥
स याति परमं स्थानं यत्र देवो गुरुः स्थितः। एतत्ते नवमीकृत्यं कथितं विधिनन्दन ॥ ४६ ॥
सर्वपापप्रशमनं सर्वसम्पत्करं नृणाम्। पुत्रपौत्रादिजननमन्ते सद्गतिदायकम् ॥ ४७ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्येऽष्टम्यां देवीपवित्रारोपणं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

मैं उन देवताओंको आपको बताता हूँ। कुबेर, लक्ष्मी, गौरी, गणेश, चन्द्रमा, बृहस्पति, सूर्य, चण्डिका, अम्बा, वासुकि, ऋषिगण, चक्रपाणि, अनन्त, शिवजी, ब्रह्मा और पितर—इन देवताओंकी पूजा प्रतिपदा आदि तिथियोंमें करनी चाहिये। यह मुख्य देवताका पवित्रारोपण है, उनके अंगदेवताका पवित्रक तीन सूत्रोंका होना चाहिये॥ ३५—३९॥

ईश्वर बोले—हे विप्रेन्द्र! अब मैं श्रावणमासके दोनों पक्षोंकी नवमी तिथियोंके करणीय कृत्यको बताऊँगा। इस दिन कुमारी नामक दुर्गाकी यथाविधि पूजा करनी चाहिये। दोनों पक्षोंकी नवमीके दिन नक्तव्रत करे और उसमें दुग्ध तथा मधुका आहार ग्रहण करे अथवा उपवास करे॥ ४०-४१ १/२॥ [उस दिन] कुमारी नामक उन पापनाशिनी दुर्गा चण्डिकाकी चाँदीकी मूर्ति बनाकर भक्तिपूर्वक सदा उनका अर्चन करे। गन्ध, चन्दन, कनेरके पुष्पों, दशांग धूप और मोदकोंसे उनका पूजन करे। तत्पश्चात् कुमारी कन्या, स्त्रियों तथा विप्रोंको श्रद्धापूर्वक भोजन कराये और इसके बाद मौन धारण करके स्वयं बिल्वपत्रका आहार ग्रहण करे। इस प्रकार जो मनुष्य अत्यन्त श्रद्धाके साथ दुर्गाकी पूजा करता है, वह उस परम स्थानको जाता है, जहाँ देव बृहस्पति विद्यमान हैं॥ ४२—४५ १/२॥ हे विधिनन्दन! यह मैंने आपसे नवमी तिथिका कृत्य कह दिया। यह मनुष्योंके सभी पापोंका नाश करनेवाला, सभी सम्पदाएँ प्रदान करनेवाला, पुत्र-पौत्र आदि उत्पन्न करनेवाला और अन्तमें उन्हें उत्तम गति प्रदान करनेवाला है॥ ४६-४७॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें
'अष्टमी तिथिको देवीपवित्रारोपण' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अष्टादशोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

भगवन्पार्वतीनाथ भक्तानुग्रहकारक। कथयस्व दयासिन्धो माहात्म्यं दशमीतिथेः॥ १॥

ईश्वर उवाच

श्रावणे शुक्लपक्षे तु दशम्यां प्रारभेद् व्रतम्। प्रतिमासे दशम्यां तु शुक्लायां व्रतमाचरेत्॥ २॥

एवं द्वादशमासेषु कृत्वा व्रतमनुत्तमम्। नभःशुक्लदशम्यां तु तत उद्यापनं चरेत्॥ ३॥

राज्याशयो राजपुत्रः कृष्यर्थं च कृषीबलः। वाणिज्यार्थं वणिक्पुत्रः पुत्रार्थं गुर्विणी तथा॥ ४॥

धर्मार्थकामसिद्ध्यर्थं लोकः कन्या वरार्थिनी। यष्टुकामो द्विजवरो रोग्यारोग्यार्थमेव च॥ ५॥

चिरप्रवसिते कान्ते पत्नी तस्यागमाय च। एतेष्वन्येषु कर्तव्यमाशाव्रतमिदं तदा॥ ६॥

यस्माद्यस्य भवेदार्तिः कार्यं तेन तदा व्रतम्। नभःशुक्लदशम्यां तु स्नात्वा सम्पूज्य देवताम्॥ ७॥

नक्तमाशासु पूज्या वै पुष्पपल्लवचन्दनैः। गृहाङ्गणे लेखयित्वा यवपिष्टातकेन वा॥ ८॥

स्त्रीरूपाश्चाधिदेवस्य शस्त्रवाहनचिह्निताः। दत्त्वा घृताक्तं नैवेद्यं पृथग्दीपांश्च दापयेत्॥ ९॥

अठारहवाँ अध्याय

आशादशमीव्रतका विधान

सनत्कुमार बोले—हे भगवन्! हे पार्वतीनाथ! हे भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले! हे दयासागर! अब आप दशमी तिथिका माहात्म्य बताइये॥ १॥

ईश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] श्रावणमासमें शुक्लपक्षकी दशमी तिथिसे यह व्रत प्रारम्भ करे, पुनः प्रत्येक महीनेमें शुक्लपक्षकी दशमी तिथिको यह व्रत करे। इस प्रकार बारहों महीनेमें इस उत्तम व्रतको करके बादमें श्रावणमासमें शुक्लपक्षकी दशमी तिथिपर इसका उद्यापन करे॥ २-३॥ राज्यकी इच्छा रखनेवाले राजपुत्र, [उत्तम] कृषिके लिये कृषक, व्यवसायके लिये वैश्यपुत्र, पुत्रप्राप्तिके लिये गर्भिणी स्त्री, धर्म-अर्थ-कामकी सिद्धिके लिये सामान्य जन, [श्रेष्ठ] वरकी अभिलाषा रखनेवाली कन्या, यज्ञ करनेकी कामनावाले ब्राह्मणश्रेष्ठ, आरोग्यके लिये रोगी और दीर्घकालतक पतिके परदेश रहनेपर उसके आनेके लिये पत्नी—इन सबको तथा [इसके अतिरिक्त] अन्य लोगोंको भी इस दशमीव्रतको करना चाहिये॥ ४—६॥ जिस कारणसे जिसे कष्ट हो, तब उसके निवारणहेतु उस मनुष्यको यह व्रत करना चाहिये। श्रावणमें शुक्लपक्षकी दशमीके दिन स्नान करके देवताका विधिवत् पूजनकर घरके आँगनमें दसों दिशाओंमें पुष्प-पल्लव, चन्दनसे अथवा जौके आटेसे अधिदेवताकी शस्त्रवाहनयुक्त स्त्रीरूपा शक्तियोंका अंकन करके नक्तवेलामें दसों दिशाओंमें उनकी पूजा करनी चाहिये। घृतमिश्रित नैवेद्य अर्पण करके उन्हें पृथक्-पृथक् दीपक प्रदान करना चाहिये॥ ७—९॥

फलानि कालजातानि ततः कार्यं निवेदयेत्। आशाः स्वाशाः सदा सन्तु सिध्यन्तु मे मनोरथाः ॥ १० ॥
भवतीनां प्रसादेन सदा कल्याणमस्त्विति। एवं सम्पूज्य विधिवद् दद्याद्विप्राय दक्षिणाम्॥ ११ ॥
अनेन क्रमयोगेन मासि मासि सदाचरेत्। वर्षमेकं मुनिश्रेष्ठ तत उद्यापनं चरेत्॥ १२ ॥
सौवर्णीः कारयेदाशा रौप्याः पिष्टातकेन वा। ज्ञातिबन्धुजनैः सार्धं स्नातः सम्यगलङ्कृतः ॥ १३ ॥
पूजयेद्भक्तियुक्तेन चेतसा दश देवताः। स्थापयेत्क्रमयोगेन मन्त्रैरेभिर्गृहाङ्गणे ॥ १४ ॥
त्वयि सन्निहितः शक्रः सुरासुरनमस्कृतः। स्वामी च भुवनस्यास्य ऐन्द्रीदिग्देवते नमः ॥ १५ ॥
अग्नेः परिग्रहादाशे त्वमाग्नेयीति पठ्यसे। तेजोरूपा पराशक्तिरतस्त्वं वरदा भव॥ १६ ॥
धर्मराजः समाश्रित्य लोकान्संयमयत्यसौ। तेन संयमिनी चासि याम्ये सत्कामदा भव॥ १७॥
खड्गहस्तातिविक्रान्ता निर्ऋतिस्थानमाश्रिता। तेन निर्ऋतिरूपासि त्वमाशां पूरयस्व मे॥ १८ ॥
त्वय्यास्ते भुवनाधारो वरुणो यादसां पतिः। कार्यार्थं मम धर्मार्थं वारुणि प्रवणा भव॥ १९ ॥
अधिष्ठितासि यस्मात्त्वं वायुना जगदादिना। वायव्ये त्वमतः शान्तिं नित्यं यच्छ ममालये॥ २० ॥

उस समय उपलब्ध फल भी चढ़ाना चाहिये। इसके बाद अपने कार्यकी सिद्धिके लिये इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये— हे दिग्देवता! मेरी आशाएँ पूर्ण हों और मेरे मनोरथ सिद्ध हों, आपलोगोंकी कृपासे सदा कल्याण हो। इस प्रकार विधिवत् पूजन करके ब्राह्मणको दक्षिणा देनी चाहिये॥ १०-११॥ हे मुनिश्रेष्ठ! इसी क्रमसे प्रत्येक महीनेमें [दशमी तिथिको] सदा करना चाहिये और एक वर्षतक इसके करनेके अनन्तर उद्यापन करना चाहिये। [पूजनकी विधि कही जाती है] सुवर्ण अथवा चाँदीकी अथवा आटेसे ही दसों दिशाओंको बनवाये। तत्पश्चात् स्नान करके भलीभाँति [वस्त्राभूषणसे] अलंकृत होकर बन्धु-बान्धवोंके साथ भक्तिपूर्ण मनसे दसों दिग्देवताओंका पूजन करना चाहिये॥ १२-१३ $^{१}/_{२}$॥ घरके आँगनमें क्रमसे इन मन्त्रोंके द्वारा [दिग्देवताओंको] स्थापित करे—इस भुवनके स्वामी और देवताओं तथा दानवोंसे नमस्कार किये जानेवाले इन्द्र आपके ही समीप रहते हैं, आप ऐन्द्री नामक दिग्देवताको नमस्कार है॥ १४-१५॥ हे आशे! अग्निके साथ परिग्रह (विवाह) होनेके कारण आप 'आग्नेयी' कही जाती हैं। आप तेजस्वरूप तथा पराशक्ति हैं, अतः मुझे वर देनेवाली हों॥ १६॥ आपका ही आश्रय लेकर वे धर्मराज सभी लोगोंको दण्डित करते हैं, इसीलिये आप संयमिनी [नामवाली] हैं। हे याम्ये! आप मेरे लिये उत्तम मनोरथ पूर्ण करनेवाली हों॥ १७॥ हाथमें खड्ग धारण किये हुए मृत्युदेवता आपका ही आश्रय ग्रहण करते हैं, अतः आप निर्ऋतिरूपा हैं। आप मेरी आशाको पूर्ण कीजिये॥ १८॥ हे वारुणि! समस्त भुवनोंके आधार तथा जलजीवोंके स्वामी वरुणदेव आपमें निवास करते हैं, अतः मेरे कार्य तथा धर्मको पूर्ण करनेके लिये आप तत्पर हों॥ १९॥ आप जगत्के आदिस्वरूप वायुदेवके साथ अधिष्ठित हैं, इसलिये आप 'वायव्या' हैं। हे वायव्ये! आप मेरे घरमें नित्य शान्ति प्रदान करें॥ २०॥

धनाधिपाधिष्ठितासि प्रख्याता त्वमिहोत्तरा। निरुत्तरा भवास्मासु दत्त्वा सद्यो मनोरथम्॥ २१॥
ऐशानि जगदीशेन शम्भुना त्वमलङ्कृता। पूरयस्व शुभे देवि वाञ्छितानि नमो नमः॥ २२॥
सर्वलोकोपरिगता सर्वदा त्वं शिवप्रदा। सनकाद्यैः परिवृता मां त्राहि त्राहि सर्वदा॥ २३॥
नक्षत्राणि च सर्वाणि ग्रहास्तारागणास्तथा। नक्षत्रमातरो याश्च भूतप्रेतविनायकाः॥ २४॥
पूजितास्तु मया भक्त्या भक्तिप्रवणचेतसा। सर्वे ममेष्टसिद्ध्यर्थं भवन्तु प्रवणाः सदा॥ २५॥
भुजङ्गनकुलेन त्वं सेवितासि यतो ह्यधः। नागाङ्गनाभिः सहिता तुष्टा भव ममाद्य वै॥ २६॥
एभिर्मन्त्रैः समभ्यर्च्य पुष्पधूपादिना ततः। अलङ्कारांश्च वासांसि फलानि च निवेदयेत्॥ २७॥
ततो वाद्यादिनादेन गीतनृत्यादिमङ्गलैः। नृत्यन्तीभिर्वरस्त्रीभिर्जागरेण निशां नयेत्॥ २८॥
कुङ्कुमाक्षतताम्बूलदानमानादिभिः सुखम्। अतिवाह्य च तां रात्रिं हर्षयुक्तेन चेतसा॥ २९॥
प्रभाते प्रतिमा अर्च्य ब्राह्मणाय निवेदयेत्। अनेन विधिना कृत्वा क्षमाप्य प्रणिपत्य च॥ ३०॥
भुञ्जीत मित्रैः सहितः सुहृद्बन्धुजनेन च। एवं यः कुरुते तात दशमीव्रतमादरात्॥ ३१॥
सर्वान्कामानवाप्नोति मनसोऽभिमतान्नरः। स्त्रीभिर्विशेषतः कार्यं व्रतमेतत्सनातनम्॥ ३२॥

आप धनके स्वामी कुबेरके साथ अधिष्ठित हैं, अतः आप इस लोकमें 'उत्तरा' नामसे विख्यात हैं, हमें शीघ्र ही मनोरथ प्रदान करके आप निरुत्तर हों॥ २१॥ हे ऐशानि! आप जगत्के स्वामी शम्भुके साथ सुशोभित होती हैं। हे शुभे! हे देवि! मेरी अभिलाषाओंको पूर्ण कीजिये, आपको नमस्कार है, नमस्कार है॥ २२॥ आप समस्त लोकोंके ऊपर अधिष्ठित हैं, सदा कल्याण करनेवाली हैं और सनक आदि मुनियोंसे घिरी रहती हैं; आप सदा मेरी रक्षा करें, रक्षा करें॥ २३॥ सभी नक्षत्र, ग्रह, तारागण तथा जो नक्षत्रमाताएँ हैं और जो भूत-प्रेत तथा विघ्न करनेवाले विनायक हैं—उनकी मैंने भक्तियुक्त मनसे भक्तिपूर्वक पूजा की है, वे सब मेरे अभीष्टकी सिद्धिके लिये सदा तत्पर हों॥ २४-२५॥ नीचेके लोकोंमें आप सर्पों तथा नेवलोंके द्वारा सेवित हैं, अतः नागपत्नियोंसहित आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों॥ २६॥ इन मन्त्रोंके द्वारा पुष्प, धूप आदिसे पूजन करके वस्त्र, अलंकार तथा फल निवेदित करना चाहिये॥ २७॥ इसके बाद वाद्यध्वनि, गीत-नृत्य आदि मंगलकृत्यों और नाचती हुई श्रेष्ठ स्त्रियोंके सहित जागरण करके रात्रि व्यतीत करनी चाहिये। कुमकुम, अक्षत, ताम्बूल, दान, मान आदिके द्वारा भक्तिपूर्ण मनसे उस रात्रिको सुखपूर्वक व्यतीत करके प्रातःकाल प्रतिमाओंकी पूजा करके ब्राह्मणको प्रदान कर देना चाहिये। इस विधिसे व्रतको करके क्षमा-प्रार्थना तथा प्रणाम करके मित्रों तथा प्रिय बन्धुजनोंको साथ लेकर भोजन करना चाहिये॥ २८—३०$^{१}/_{२}$॥ हे तात! जो मनुष्य इस विधिसे आदरपूर्वक दशमीव्रत करता है, वह सभी मनोवांछित फल प्राप्त करता है॥ ३१$^{१}/_{२}$॥ विशेषरूपसे स्त्रियोंको इस सनातनव्रतको करना चाहिये; क्योंकि मनुष्यजातिमें स्त्रियाँ [अधिक] श्रद्धा-कामनापरायण होती हैं॥ ३२$^{१}/_{२}$॥

प्राणिवर्गे यतो नार्यः श्रद्धाकामपरायणाः। धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामफलप्रदम्॥ ३३॥

कथितं च मुनिश्रेष्ठ मया व्रतमिदं तव। नानेन सदृशं चान्यद् व्रतमस्ति जगत्त्रये॥ ३४॥

ये मानवा विधिजपुङ्गव कामकामाः सम्पूजयन्ति दशमीषु सदा दशाशाः।
तेषामशेषनिहितान्हृदयेऽतिकामानाशाः फलन्ति किमिहास्ति बहूदितेन॥ ३५॥

मोक्षप्रदं व्रतं ह्येतन्नात्र कार्या विचारणा। व्रतं चानेन सदृशं न भूतं न भविष्यति॥ ३६॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये आशादशमीव्रतकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

हे मुनिश्रेष्ठ! धन प्रदान करनेवाले, यश देनेवाले, आयु बढ़ानेवाले तथा सभी कामनाओंका फल प्रदान करनेवाले इस व्रतको मैंने आपसे कह दिया, तीनों लोकोंमें अन्य कोई भी व्रत इसके समान नहीं है॥ ३३-३४॥ हे ब्रह्मपुत्रोंमें श्रेष्ठ! वांछित फलकी कामना करनेवाले जो मनुष्य दशमी तिथिको दसों दिशाओंकी सदा पूजा करते हैं, उनके हृदयमें स्थित सभी बड़ी-बड़ी कामनाओंको वे दिशाएँ फलीभूत कर देती हैं, इसमें अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन?॥ ३५॥ [हे सनत्कुमार!] यह व्रत मोक्षदायक है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये, इस व्रतके समान न कोई व्रत है और न तो होगा॥ ३६॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'आशादशमीव्रतकथन' नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

अथ वक्ष्ये नभोमासि पक्षयोरुभयोरपि। एकादश्यां तु यत्कृत्यं तच्छृणुष्व महामुने॥ १॥

न कस्यचिन्मयाख्यातं गुह्यमेतदनुत्तमम्। महापुण्यप्रदं वत्स महापातकनाशनम्॥ २॥

वाञ्छितार्थप्रदं नृणां श्रुतं पापापहारकम्। श्रेष्ठं व्रतानां सर्वेषां शुभमेकादशीव्रतम्॥ ३॥

तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि समाहितमनाः शृणु। दशम्यामुषसि स्नात्वा कृतसन्ध्यादिकः शुचिः॥ ४॥

प्राप्याज्ञां वेदविदुषः पुराणज्ञान् जितेन्द्रियान्। सम्पूज्य देवदेवेशं षोडशैरुपचारकैः॥ ५॥

एकादश्यां निराहारः स्थित्वाहमपरेऽहनि। भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत॥ ६॥

कुर्याच्च नियमं वत्स गुरुदेवाग्निसन्निधौ। तद्दिने भूमिशायी स्यात्कामक्रोधविवर्जितः॥ ७॥

ततः प्रभाते विमले केशवार्पितमानसः। श्रीधरेति तदा वाक्यं क्षुतप्रस्खलनादिषु॥ ८॥

पाखण्डादिभिरालापं दर्शनं श्रवणं तथा। त्यजेद्दिनत्रयं वत्स व्रतं कैवल्यकारकम्॥ ९॥

ततो मध्याह्नसमये नद्यादौ विमले जले। स्नानं कुर्याज्जितक्रोधः पञ्चगव्यपुरःसरम्॥ १०॥

उन्नीसवाँ अध्याय

श्रावणमासकी दोनों पक्षोंकी एकादशियोंके व्रतोंका वर्णन तथा विष्णुपवित्रारोपण-विधि

ईश्वर बोले—हे महामुने! अब मैं श्रावणमासमें दोनों ही पक्षोंकी एकादशी तिथिको जो किया जाता है, उसे कहता हूँ, आप सुनिये॥ १॥ हे वत्स! रहस्यमय, अतिश्रेष्ठ, महान् पुण्य प्रदान करनेवाले तथा महापातकोंका नाश करनेवाले इस व्रतको मैंने किसीसे नहीं कहा है॥ २॥ यह एकादशीव्रत श्रवणमात्रसे मनुष्योंको वांछित फल प्रदान करनेवाला, पापोंका नाश करनेवाला, सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ तथा शुभ है। इसे मैं आपसे कहूँगा, एकाग्रचित्त होकर सुनिये॥ ३॥ दशमी तिथिमें प्रात:काल स्नान करके शुद्ध होकर सन्ध्या आदि कर ले और वेदवेत्ता, पुराणज्ञ तथा जितेन्द्रिय विप्रोंसे आज्ञा लेकर सोलहों उपचारोंसे देवाधिदेव भगवान्‌का विधिवत् पूजन करके [इस प्रकार प्रार्थना करे—] हे पुण्डरीकाक्ष! मैं एकादशीको निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा, हे अच्युत! आप मेरे शरणदाता होइये॥ ४—६॥ हे वत्स! गुरु, देवता तथा अग्निकी सन्निधिमें नियम धारण करे और उस दिन काम-क्रोधरहित होकर भूमिपर शयन करे॥ ७॥ तत्पश्चात् प्रात:काल होनेपर भगवान् केशवमें मनको लगाये। भूख लगने तथा प्रस्खलन (गिरना, ठोकर आदि लगना) आदिके समय 'श्रीधर'—इस शब्दका उच्चारण करे। हे वत्स! यह व्रत मोक्ष प्रदान करनेवाला है, अत: तीन दिनोंतक पाखण्डी आदि लोगोंके साथ बातचीत, उन्हें देखना तथा उनकी बातें सुनना—इन सबका त्याग कर देना चाहिये॥ ८-९॥ तदनन्तर क्रोधरहित होकर

आदित्याय नमस्कृत्य श्रीधरं शरणं व्रजेत्। स्ववर्णाचारविधिना कृतकृत्यो गृहं व्रजेत्॥ ११॥
पूजयेच्छ्रीधरं तत्र श्रद्धाभक्तिपुरःसरम्। पुष्पधूपैस्तथा दीपैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि॥ १२॥
गीतवाद्यैः कथाभिश्च जागरं कारयेन्निशि। कुम्भं संस्थापयित्वा तु रत्नगर्भं सकाञ्चनम्॥ १३॥
छादितं वस्त्रयुग्मेन सितचन्दनचर्चितम्। प्रतिमां देवदेवस्य शङ्खचक्रगदाभृताम्॥ १४॥
कृत्वा यथावत्सम्पूज्य प्रभाते विमले सति। द्वादश्यां कृतकृत्यस्तु श्रीधरेति जपेद् बुधः॥ १५॥
पूजयेद्देवदेवेशं शङ्खचक्रगदाधरम्। विप्राय दद्यात्कलशं हेमदक्षिणयान्वितम्॥ १६॥
विशेषान्नवनीतं तु तत्र देयं द्विजातये। श्रीधरः प्रीयतां मेऽद्य श्रियं पुष्णात्वनुत्तमाम्॥ १७॥
इत्युच्चार्य मुनिश्रेष्ठ समभ्यर्च्य जगद्गुरुम्। सम्भोज्य विप्रमुख्यांश्च दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम्॥ १८॥
भृत्यादीन्भोजयित्वा तु यवसं गोषु दापयेत्। स्वयं भुञ्जीत च ततः सुहृद्बन्धुसमन्वितः॥ १९॥
सनत्कुमार कथितस्ते शुक्लैकादशीविधिः। एवमेव नभोमासि कृष्णायामपि साधयेत्॥ २०॥

पंचगव्य लेकर मध्याह्नके समय नदी आदिके निर्मल जलमें स्नान करना चाहिये। सूर्यको नमस्कार करके भगवान् श्रीधरकी शरणमें जाना चाहिये और वर्णाचारकी विधिसे सभी कृत्य सम्पन्न करके घर आना चाहिये॥ १०-११॥

वहाँ पुष्प, धूप तथा अनेक प्रकारके नैवेद्योंसे श्रद्धाभक्तिपूर्वक श्रीधरकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर सुवर्णमय, पंचरत्नयुक्त, श्वेत चन्दनसे लिप्त तथा दो वस्त्रोंसे आच्छादित कलशको स्थापित करके और शंख, चक्र, गदायुक्त देवाधिदेव श्रीधरकी प्रतिमा स्थापितकर उनकी पूजा करके गीत, वाद्य तथा कथाश्रवणके साथ रात्रिमें जागरण करना चाहिये। इसके बाद विमल प्रभात होनेपर द्वादशीके दिन विधिवत् पूजन करके कृतकृत्य होकर बुद्धिमान्‌को चाहिये कि 'श्रीधर'—इस नामका जप करे। इसके बाद उन शंख, चक्र तथा गदा धारण करनेवाले देवदेवेश [श्रीधर]-की पुनः पूजा करे और सुवर्ण-दक्षिणासहित कलश ब्राह्मणको प्रदान करे। उस समय ब्राह्मणको विशेष करके नवनीत अवश्य प्रदान करे। [यह प्रार्थना करे—] भगवान् श्रीधर आज आप मुझपर प्रसन्न हों और मुझे अत्युत्तम लक्ष्मी प्रदान करें॥ १२—१७॥ हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार उच्चारण करके जगद्‌गुरु श्रीधरसे प्रार्थना करके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर अपने सामर्थ्यके अनुसार दक्षिणा देनी चाहिये। तत्पश्चात् सेवकों आदिको भोजन कराकर गायोंको घास खिलाना चाहिये, इसके बाद मित्रों तथा बन्धु-बान्धवोंसमेत स्वयं भोजन करना चाहिये॥ १८-१९॥ हे सनत्कुमार! मैंने आपको यह श्रावणमासकी शुक्लपक्षकी एकादशीव्रतविधि बतला दी, इसी प्रकार

अनुष्ठानं तुल्यमेव देवनाम्नि परं भिदा। जनार्दनः प्रीयतां मे वाक्यमेतदुदीरयेत्॥ २१॥

शुक्लायां श्रीधरो देवः कृष्णायां तु जनार्दनः। एतत्ते सम्यगाख्यातमुभयैकादशीव्रतम्॥ २२॥

नानेन सदृशं पुण्यं न भूतं न भविष्यति। इदं त्वया गोपनीयं न देयं दुष्टमानसे॥ २३॥

ईश्वर उवाच

अथ वक्ष्यामि द्वादश्यां पवित्रारोपणं हरेः। उक्तः प्रायो विधिर्देव्याः पवित्रारोपणे तव॥ २४॥

विशेषो यश्च तं वक्ष्ये सावधानमनाः शृणु। अत्राधिकारी सन्दिष्टस्तं शृणुष्व महामुने॥ २५॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्तथा स्त्री शूद्र एव च। स्वधर्मावस्थिताः सर्वे भक्त्या कुर्युः पवित्रकम्॥ २६॥

अतो देवेति मन्त्रेण द्विजो विष्णोर्निवेदयेत्। स्त्रीशूद्राणां नाममन्त्रो येन सम्पूजयेद्धरिम्॥ २७॥

कद्रुद्रायेति मन्त्रेण द्विजः शम्भोर्निवेदयेत्। स्त्रीशूद्राणां नाममन्त्रो येन सम्पूजयेद्धरम्॥ २८॥

कृते मणिमयं कार्यं त्रेतायां हेमसम्भवम्। पट्टजं द्वापरे सूत्रं कार्पासं तु कलौ स्मृतम्॥ २९॥

यतिभिर्मानसं कार्यं पवित्रारोपणं शुभम्। कृतानि च पवित्राणि वैणवे पट्टले शुभे॥ ३०॥

कृष्णपक्षकी एकादशीमें भी करना चाहिये। [दोनों व्रतोंमें] अनुष्ठान समान है, केवल देवताओंके नाममें भेद है। 'जनार्दन' मुझपर प्रसन्न हों—यह वाक्य बोलना चाहिये। शुक्ल एकादशीके देवता श्रीधर हैं और कृष्ण एकादशीके देवता जनार्दन हैं। [हे सनत्कुमार!] यह मैंने आपसे दोनों एकादशीव्रतोंका वर्णन कर दिया, इस [एकादशीव्रत]-के समान पुण्यप्रद व्रत न तो कभी हुआ और न होगा, आपको यह व्रत गुप्त रखना चाहिये और दुष्ट हृदयवालेको नहीं प्रदान करना चाहिये॥ २०—२३॥

ईश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] अब मैं द्वादशी तिथिमें होनेवाले श्रीहरिके पवित्रारोपणव्रतका वर्णन करूँगा। पूर्वमें देवीकी कही गयी पवित्रारोपणविधिके समान ही इसका भी पवित्रारोपण है। इसमें जो विशेष बात है, उसे मैं बताऊँगा, सावधानचित्त होकर सुनिये। हे महामुने! इस व्रतके लिये जो अधिकारी बताया गया है, उसे आप सुनें॥ २४-२५॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा स्त्री—इन सभीको अपने धर्ममें स्थित होकर भक्तिपूर्वक पवित्रारोपण करना चाहिये॥ २६॥ द्विजको चाहिये कि '**अतो देवा०**' इस मन्त्रसे विष्णुकी पूजा करे। स्त्रियों तथा शूद्रोंके लिये नाममन्त्र है, जिसके द्वारा वे विष्णुकी पूजा करें। इसी प्रकार द्विज '**कद्रुद्राय०**' इस मन्त्रसे शिवजीकी पूजा करें और स्त्रियों तथा शूद्रोंके लिये नाममन्त्र है, जिसके द्वारा वे शिवजीकी पूजा करें॥ २७-२८॥ सत्ययुगमें मणिमय, त्रेतामें सुवर्णमय, द्वापरमें रेशमका और कलियुगमें कपासका सूत्र पवित्रकके लिये बताया गया है। संन्यासियोंको शुभ मानस पवित्रारोपण करना चाहिये। बनाये गये पवित्रकोंको सर्वप्रथम

संस्थाप्य शुचिवस्त्रेण पिधाय्य पुरतो न्यसेत्। क्रियालोपविधानार्थं यत्त्वया पिहितं प्रभो॥ ३१॥
मयैतत्क्रियते देव तव तुष्ट्यै पवित्रकम्। न मे विघ्नो भवेद्देव कुरु नाथ दयां मयि॥ ३२॥
सर्वथा सर्वदा देव मम त्वं परमा गतिः। एतत्पवित्रतोऽहं त्वां तोषयामि जगत्पते॥ ३३॥
कामक्रोधादयोऽप्येते न मे स्युर्व्रतघातकाः। अद्यप्रभृति देवेश यावत् स्याद्वार्षिकं दिनम्॥ ३४॥
तावद्रक्षा त्वया कार्या त्वद्भक्तस्य नमोऽस्तु ते। देवं सम्प्रार्थ्य कलशे पात्रे वेणुमये शुभे॥ ३५॥
संस्थितस्य पवित्रस्य कुर्यात्प्रार्थनमादृतः। संवत्सरकृतार्चायाः पवित्रीकरणाय भोः॥ ३६॥
विष्णुलोकात्पवित्राद्य आगच्छेह नमोऽस्तु ते। विष्णुतेजोद्भवं रम्यं सर्वपापप्रणाशनम्॥ ३७॥
सर्वकामप्रदं देव तवाङ्गे धारयाम्यहम्। आमन्त्रितोऽसि देवेश पुराणपुरुषोत्तम॥ ३८॥
अतस्त्वां पूजयिष्यामि सान्निध्यं कुरु ते नमः। निवेदयाम्यहं तुभ्यं प्रातरेतत्पवित्रकम्॥ ३९॥
ततः पुष्पाञ्जलिं दत्वा रात्रौ जागरणं चरेत्। एकादश्यामधिवसेद् द्वादश्यामर्चयेदुषः॥ ४०॥
गन्धदूर्वाक्षतैर्युक्तं समादाय पवित्रकम्। देवदेव नमस्तुभ्यं गृहाणेदं पवित्रकम्॥ ४१॥
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम्। पवित्रं मां कुरुष्वाद्य यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥ ४२॥

बाँसकी सुन्दर टोकरीमें रखकर शुद्ध वस्त्रसे ढँककर भगवान्‌के सम्मुख रखे [और इस प्रकार कहे—] हे प्रभो! क्रियालोपके विधानके लिये जो आपने आच्छादन किया है, हे देव! आपकी प्रसन्नताके लिये मैं इसे करता हूँ। हे देव! मेरे इस कार्यमें विघ्न न उत्पन्न हो, हे नाथ! मुझपर दया कीजिये। हे देव! सब प्रकारसे सर्वदा आप ही मेरी परम गति हैं। हे जगत्पते! मैं इस पवित्रकसे आपको प्रसन्न करता हूँ। ये काम, क्रोध आदि मेरे व्रतका नाश करनेवाले न हों। हे देवेश! आप आजसे लेकर वर्षपर्यन्त अपने भक्तकी रक्षा करें, आपको नमस्कार है॥ २९—३४१/२॥ इस प्रकार कलशमें देवताकी प्रार्थना करके बाँसके शुभ पात्रमें स्थित पवित्रककी आदरपूर्वक प्रार्थना करनी चाहिये—॥ ३५१/२॥

'हे पवित्रक! वर्षभर की गयी पूजाकी पवित्रताके लिये विष्णुलोकसे आप इस समय यहाँ पधारें, आपको नमस्कार है। हे देव! मैं विष्णुके तेजसे उत्पन्न, मनोहर, सभी पापोंका नाश करनेवाले तथा सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले इस पवित्रकको आपके अंगमें धारण कराता हूँ। हे देवेश! हे पुराणपुरुषोत्तम! आप मेरे द्वारा आमन्त्रित हैं। अतः आप मेरे समीप पधारें, मैं आपका पूजन करूँगा, आपको नमस्कार है। मैं प्रातःकाल आपको यह पवित्रक निवेदन करूँगा।' तत्पश्चात् पुष्पांजलि देकर रात्रिमें जागरण करना चाहिये॥ ३६—३९१/२॥ एकादशीके दिन अधिवासन करे और द्वादशीके दिन प्रातःकाल पूजन करे। पुनः [हाथमें] गन्ध, दूर्वा तथा अक्षतके साथ पवित्रक लेकर ऐसा कहे—हे देवदेव! आपको नमस्कार है, वर्षपर्यन्त की गयी पूजाका फल देनेवाले इस पवित्रकको पवित्रीकरणहेतु आप ग्रहण कीजिये। मैंने जो भी दुष्कृत किया

शुद्धो भवाम्यहं देव त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर। मूलसम्पुटितैरेतैर्मन्त्रैर्दद्यात्पवित्रकम् ॥ ४३ ॥
महानैवेद्यकं दत्त्वा नीराज्य प्रार्थयेत्ततः । मूलमन्त्रेण जुहुयाद्वह्नौ सघृतपायसम् ॥ ४४ ॥
विसर्जयित्वा मन्त्रेण अनेनैव पवित्रकम्। सांवत्सरीं शुभां पूजां सम्पाद्य विधिवन्मम ॥ ४५ ॥
व्रजेदानीं पवित्र त्वं विष्णुलोकं विसर्जितम्। उत्तार्य ब्राह्मणे दद्यात्तोये वाथ विसर्जयेत् ॥ ४६ ॥
एतत्ते कथितं वत्स पवित्रारोपणं हरेः। इह लोके सुखं भुक्त्वा ह्यन्ते वैकुण्ठमाप्नुयात् ॥ ४७ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये उभयैकादशीव्रतकथनं द्वादश्यां विष्णुपवित्रारोपणकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

है, उसके लिये आप मुझे आज पवित्र कीजिये। हे देव! हे सुरेश्वर! आपके अनुग्रहसे मैं शुद्ध हो जाऊँ—इस प्रकार मूलमन्त्रसे सम्पुटित इन मन्त्रोंके द्वारा पवित्रक अर्पण करे॥ ४०—४३॥ तत्पश्चात् महानैवेद्य अर्पित करके नीराजनकर प्रार्थना करे और मूलमन्त्रसे घृतसहित खीरका अग्निमें हवन करे। तदनन्तर इसी मन्त्रसे पवित्रकका विसर्जन करके इस प्रकार बोले—हे पवित्रक! वर्षभर की गयी मेरी शुभ पूजाको पूर्ण करके अब आप विसर्जित होकर विष्णुलोकको प्रस्थान करें। इसके बाद पवित्रकको उतारकर ब्राह्मणको प्रदान कर दे अथवा जलमें विसर्जित कर दे॥ ४४—४६॥ हे वत्स! मैंने आपसे श्रीहरिके इस पवित्रारोपणका वर्णन कर दिया। [इसे करनेवाला] इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें वैकुण्ठ प्राप्त करता है॥ ४७॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'उभयैकादशीव्रतकथन और द्वादशीमें विष्णुपवित्रारोपणकथन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

विंशोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

त्रयोदशीदिने कृत्यं कथयामि तवाग्रतः। अत्रानङ्गः पूजनीयः षोडशैरुपचारकैः॥ १॥
अशोकैर्मालतीपुष्पैः पद्मैर्देवप्रियैस्तथा। कौसुम्भैर्बकुलैः पुष्पैस्तथान्यैरपि मादकैः॥ २॥
रक्ताक्षतैः पीतगन्धैर्द्रव्यैः सौगन्धिकैः शुभैः। पुष्टिकाजनकैर्द्रव्यै रेतोवृद्धिकरैः परैः॥ ३॥
नैवेद्यमर्पयेच्चैव ताम्बूलं मुखरोचकम्। ताम्बूले योजयेद् द्रव्यं चिक्कणं क्रमुकं शुभम्॥ ४॥
खादिरं चूर्णकं जातित्वचं जातिफलं तथा। लवङ्गैलानारिकेलबीजस्य शकलं लघु॥ ५॥
स्वर्णरूप्याणि पत्राणि कर्पूरं केसरं तथा। जातानि मगधे देशे नागवल्लीदलानि च॥ ६॥
श्वेतवर्णानि पक्वानि जीर्णानि च दृढानि च। रसयुक्तानि देयानि प्रीतये शम्बरद्विषः॥ ७॥
माक्षीकमलसारेण निर्मिताभिश्च वर्तिभिः। नीराजयेच्चित्तभवं पुष्पाञ्जलिमथार्पयेत्॥ ८॥
प्रार्थयेन्नामभिस्तस्य तानि ते कथयाम्यहम्। सर्वोपमानसौन्दर्यः प्रद्युम्नाख्यो हरेः सुतः॥ ९॥
मीनकेतनकन्दर्पकानङ्ग मन्मथस्तथा। मारः कामात्मसम्भूतो झषकेतुर्मनोभवः॥ १०॥
रतिपीनघनोत्तुङ्गस्तनयोः पत्रवल्लिका। यस्य वक्षसि कस्तूर्याः शोभते परिरम्भणात्॥ ११॥
पुष्पधन्वञ्छम्बरारे कुसुमेषो रतेः पते। मकरध्वज पञ्चेषो मदन स्मर सुन्दर॥ १२॥

बीसवाँ अध्याय

श्रावणमासमें त्रयोदशी और चतुर्दशीको किये जानेवाले कृत्योंका वर्णन

ईश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] अब मैं आपके समक्ष त्रयोदशी तिथिका कृत्य कहता हूँ। इस दिन सोलहों उपचारोंसे कामदेवका पूजन करना चाहिये। अशोक, मालतीपुष्प, देवताओंको प्रिय कमल, कौसुम्भ तथा बकुल पुष्पों और अन्य प्रकारके भी सुगन्धित पुष्पों, रक्त अक्षत, पीले चन्दन, शुभ सुगन्धित द्रव्यों एवं पुष्टि प्रदान करनेवाले तथा तेजकी वृद्धि करनेवाले अन्य पदार्थोंसे पूजन करना चाहिये॥ १—३॥ नैवेद्य और मुखके लिये रोचक ताम्बूल अर्पित करना चाहिये। ताम्बूलमें चिकनी उत्तम सुपारी, खैर, चूना, जावित्री, जायफल, लवंग, इलायची, नारिकेलबीजके छोटे टुकड़े, सोने तथा चाँदीके पत्र (तबक), कपूर और केसर—इन पदार्थोंको मिलाना चाहिये। मगध देशमें उत्पन्न होनेवाले, श्वेतवर्ण, पके हुए, पुराने, दृढ़ तथा रसमय ताम्बूल शम्बरासुरके शत्रु कामदेवकी प्रसन्नताके लिये अर्पित करना चाहिये॥ ४—७॥ तत्पश्चात् मोमसे बनायी गयी बत्तियोंसे कामदेवका नीराजन करे और पुनः पुष्पांजलि प्रदान करे॥ ८॥ इसके बाद उनके नामोंसे प्रार्थना करे, मैं उन नामोंको कहता हूँ—समस्त उपमानोंमें सुन्दर तथा भगवान्‌का पुत्र 'प्रद्युम्न', मीनकेतन, कन्दर्पक, अनंग, मन्मथ, मार, कामात्मसम्भूत, झषकेतु और मनोभव। कस्तूरीसे सुशोभित जिनका वक्षःस्थल आलिंगनके चिह्नोंसे अलंकृत है। हे पुष्पधन्वन्! हे शम्बरासुरके शत्रु! हे कुसुमेष! हे रतिपते! हे मकरध्वज! हे पंचेष!

देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं शिवक्षिप्तहुताशन। परोपकारसीमानं ध्वनयंस्तेन कर्मणा॥ १३॥
निमित्तमात्रं विजये वसन्तस्य सहायता। त्वन्मनोरञ्जने शक्रस्तिष्ठत्येव दिवानिशि॥ १४॥
स्वपदभ्रंशने यस्मात्तपस्विभ्यो बिभेति सः। त्वदन्यः शम्भुना कोऽन्यो विरुध्येद् दृढमानसः॥ १५॥
परब्रह्मानन्दसमानन्ददस्त्वदृतेऽत्र कः। महामोहस्य सैन्येषु त्वादृशः कोऽस्ति वीर्यवान्॥ १६॥
अनिरुद्धपतिः कृष्णात्मजो यश्च सुरप्रभुः। मलयाचलसम्भूतचन्दनागरुवासितः ॥ १७॥
दक्षिणादिङ्मातरिश्वा सहायस्ते जगज्जये। शरत्सुधांशुसन्मित्र जगत्सर्जनकारण॥ १८॥
नाथ त्वदस्त्रं परमममोघमतिदूरगम्। मर्मच्छिदामकरुणं रहितं प्रतिकारतः॥ १९॥
सुकुमारं श्रुतमपि निःसीमक्षोभकारणम्। स्वतुल्यस्य पदार्थस्य दर्शनादपि साधकम्॥ २०॥
प्रवृत्तिर्मुख्यालङ्कारः सहायेन जगज्जये। सर्वे श्रेष्ठास्त्वया देवा उपहास्याः कृता विभो॥ २१॥
ब्रह्मा कन्यालम्पटोऽभूद् वृन्दासक्तो हरिः स्मृतः। परदारकलङ्केन *अस्पृष्टव्यः शिवो यतः॥ २२॥*

हे मदन! हे स्मर! हे सुन्दर! देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये आप शिवजीके द्वारा दग्ध हो गये, उसी कार्यसे आप परोपकारकी मर्यादा कहे जाते हैं॥ ९—१३॥ आपके दिग्विजय करनेमें वसन्तकी सहायता निमित्तमात्र है। इन्द्र दिन-रात आपका मनोरंजन करनेमें लगे रहते हैं; क्योंकि अपने पदसे च्युत होनेकी शंकामें वे तपस्वियोंसे भयभीत रहते हैं। आपके अतिरिक्त दृढ़ मनवाला दूसरा कौन है, जो शिवजीसे विरोध कर सकता है॥ १४-१५॥ परब्रह्मानन्दके समान आनन्द देनेवाला आपके अतिरिक्त दूसरा कौन है तथा महामोहकी सेनाओंमें आपके समान तेजस्वी कौन है॥ १६॥ अनिरुद्धके स्वामी और मलयगिरिपर उत्पन्न चन्दन तथा अगरुसे सुवासित विग्रहवाले जो देवेश कृष्णपुत्र हैं, वह आप ही हैं॥ १७॥ हे शरत्कालीन चन्द्रमाके उत्तम मित्र! हे जगत्‌की सृष्टिके कारण! जगत्पर विजयके समय दक्षिण दिशा तथा पनवनदेव आपके सहायक थे। हे नाथ! आपका अस्त्र महान्, निष्फल न होनेवाला, अत्यन्त दूरतक जानेवाला, मर्मस्थलका छेदन करनेवाला, करुणाशून्य तथा प्रतिकाररहित है। सुना गया है कि वह अत्यन्त कोमल होते हुए भी महान् क्षोभ करनेवाला और अपने तुल्य पदार्थको भी दर्शनमात्रसे ही क्षुभित करनेवाला है॥ १८—२०॥ जगत्पर विजय करनेमें सहायक होनेसे प्रवृत्ति ही [आपका] मुख्य अलंकार है। हे विभो! आपने सभी श्रेष्ठ देवताओंको उपहासके योग्य बना दिया; क्योंकि ब्रह्माजी [अपनी] पुत्रीमें कामासक्त हो गये, विष्णुजी वृन्दामें अनुरक्त कहे गये हैं और

स्वशक्त्यामेव निरतो बहुकालं व्यवायवान्। दुष्कर्मनिरतश्चेन्द्रो गौतमस्य वधूं प्रति॥ २३॥
द्विजराजो गुरोर्भार्यां बलादेवापहारवान्। विश्वामित्रस्तपोभ्रष्टः केनाकारि च भूयसा॥ २४॥
उक्ताः प्राधान्यतस्त्वेते किं बहूक्तेन मानद। विरलाः सन्ति लोकेऽस्मिन्ब्राह्मणा वशवर्तिनः॥ २५॥
तस्मात्प्रसीद भगवन्कृतया पूजयानया। पूजितः श्रावणे शुक्लत्रयोदश्यां मनोभवः॥ २६॥
प्रवृत्तिलम्पटस्यातिवीर्यं पुष्टिं ददात्यलम्। निवृत्तिमार्गनियतः स्वविकारं हरत्यपि॥ २७॥
सकामस्य स्त्रियो रम्याः पीनोत्तुङ्गपयोधराः। शरत्पूर्णसुधारश्मिवदनाः कमलेक्षणाः॥ २८॥
लम्बातिनीलकुरलस्निग्धकेश्यः सुनासिकाः। रम्भोरूर्वा गुप्तगुल्फा गतिनिर्जितकुञ्जराः॥ २९॥
कामागारा जिताश्वत्थपलाशा अतिशोभनाः। बृहच्छ्रोण्यः कम्बुकण्ठ्यो बृहज्जघनशोभिताः॥ ३०॥
बिम्बोष्ठ्यः सिंहकट्यश्च नानालङ्कारभूषिताः। मनोरमा ददात्येष सन्तुष्टः श्रावणेऽर्चया॥ ३१॥
शुक्लपक्षे त्रयोदश्यां ददाति च सुतान्बहून्। चिरायुषो गुणाढ्यांश्च सुखरूपान्सुसन्ततीन्॥ ३२॥
कर्तव्यं यत् त्रयोदश्यामेतत्ते कथितं शुभम्। अतः परं चतुर्दश्यां कर्तव्यं शृणु मानद॥ ३३॥
अष्टम्यां कथितं देव्याः पवित्रारोपणं तव। तत्र चेन्न कृतं तर्हि चतुर्दश्यां तु कारयेत्॥ ३४॥
पवित्रं तु त्रिनेत्रस्य चतुर्दश्यां समर्पयेत्। पवित्रसाधनं सर्वं देवीविष्णुपवित्रवत्॥ ३५॥
ऊहः परं प्रकर्तव्यः प्रार्थनादिषु नामसु। शैवागमे मया प्रोक्तं जाबालादिषु यत्परम्॥ ३६॥

शिवजी परस्त्रीके कलंकके कारण अस्पृश्य हो गये। हे मानद! यह वर्णन मैंने मुख्य रूपसे किया है, अधिक कहनेसे क्या लाभ! इस लोकमें अपने वशमें रहनेवाले ब्राह्मण विरले हैं। अतः हे भगवन्! इस की गयी पूजासे आप प्रसन्न हों॥ २१—२५१/२ ॥

श्रावणमासमें शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिके दिन पूजा प्राप्त करके कामदेव प्रवृत्तिमार्गके विषयासक्त व्यक्तिको अत्यधिक पराक्रम तथा शक्ति प्रदान करते हैं और निवृत्तिमार्गमें संलग्न व्यक्तिसे अपने विकारको हर लेते हैं। श्रावणमासमें शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिमें अपनी पूजाके द्वारा सन्तुष्ट होकर ये कामदेव सकाम पुरुषको अनेक प्रकारके अलंकारोंसे भूषित तथा मनोरम स्त्रियाँ प्रदान करते हैं और दीर्घजीवी, गुणोंसे सम्पन्न, सुख देनेवाले तथा श्रेष्ठ वंशपरम्परावाले अनेक पुत्र देते हैं॥ २६—३२ ॥ हे मानद! त्रयोदशी तिथिका जो शुभ कृत्य है, उसे मैंने कह दिया, अब चतुर्दशी तिथिमें जो करना चाहिये, उसे सुनिये॥ ३३ ॥

अष्टमीको देवीका पवित्रारोपण करनेको मैंने आपसे कहा है, वह यदि उस दिन न किया गया हो तो चतुर्दशीके दिन पवित्रक धारण कराये॥ ३४ ॥ चतुर्दशी तिथिको त्रिनेत्र शिवको पवित्रक अर्पण करना चाहिये। इसमें पवित्रक धारण करानेकी विधि देवी तथा विष्णुकी पवित्रक विधिके ही समान है, केवल प्रार्थना तथा नाम आदिमें अन्तर कर लेना चाहिये।

विकल्पात्कश्चिदस्तीह विशेषस्तं वदामि ते। एकादशाथ वा सूत्रैस्त्रिंशता चाष्टयुक्तया॥ ३७॥
पञ्चाशता वा कर्तव्यं तुल्यग्रन्थ्यन्तरालकम्। द्वादशाङ्गुलमानानि तथा चाष्टाङ्गुलानि वा॥ ३८॥
लिङ्गविस्तारमानानि चतुरङ्गुलिकानि वा। अर्पयेच्छिवतुष्ट्यर्थं विधिः पूर्वोक्त एव हि॥ ३९॥
फलादि पूर्वमेवोक्तमन्ते कैलासमाप्नुयात्। एतत्ते कथितं वत्स किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥ ४०॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये त्रयोदशीचतुर्दशीकर्तव्यकथनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

शैव, आगम तथा जाबाल आदि ग्रन्थोंमें इसकी जो विधि है, उसीको मैंने कहा है, विकल्पसे इसमें जो कुछ विशेष है, उसे मैं आपको बताता हूँ॥ ३५-३६१/२ ॥ ग्यारह अथवा अड़तीस अथवा पचास तारोंका समानग्रन्थि तथा समान अन्तराल (ग्रन्थियोंके बीचकी दूरी)-वाला पवित्रक बनाना चाहिये। पवित्रक बारह अंगुल प्रमाणके, आठ अंगुल प्रमाणके, चार अंगुलप्रमाणके अथवा [पूजित] शिवलिंगके विस्तारके प्रभाववाले बनाकर शिवजीकी प्रसन्नताके लिये अर्पण कर देने चाहिये। विधि पहले बतायी गयी है, फल आदि पहले कहे जा चुके हैं। जो इस व्रतको करता है, वह कैलास-लोक प्राप्त करता है। हे वत्स! मैंने यह सब आपसे कह दिया, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ३७—४० ॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'त्रयोदशी-चतुर्दशीकर्तव्यकथन' नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

पौर्णमास्या विधिं ब्रूहि कृपां कृत्वा दयानिधे। माहात्म्यं शृण्वतां स्वामिञ्छ्रवणेच्छा प्रवर्धते॥ १॥

ईश्वर उवाच

उत्सर्जनमुपाकर्म अध्यायानां भवेदिह। पौषपूर्णा माघपूर्णा अथवोत्सर्जने तिथिः॥ २॥

पौषस्य प्रतिपद्वापि माघमासस्य वा भवेत्। ऋक्षं वा रोहिणीसंज्ञमुत्सर्जनकृतौ भवेत्॥ ३॥

अथवान्येषु कालेषु स्वस्वशाखानुसारतः। सहप्रयोगो युक्तः स्यादुत्सर्गप्रकृतिद्वये॥ ४॥

अतो नभःपौर्णमास्यामुत्सर्जनमिहेष्यते। उपाकर्मणि चैवं स्याच्छ्रवणर्क्षं तु बह्वृचाम्॥ ५॥

चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां प्रतिपद्दिवसेऽपि वा। यत्र वा श्रवणर्क्षं स्याद् बह्वृचानां तु तद्दिने॥ ६॥

यजुषां पौर्णमास्यां स्यात्सामगानां तु हस्तभे। शुक्रगुर्वोरस्तमये उपाकर्म चरेत्सुखम्॥ ७॥

आरम्भः प्रथमो न स्यादिति शास्त्रविदां मतम्। ग्रहसङ्क्रान्तदुष्टे तु काले कालान्तरे भवेत्॥ ८॥

पञ्चम्यां हस्तयुक्तायां पूर्णायां वा नभस्यके। स्वस्वगृह्यानुसारेण उत्सर्जनमुपाकृतिः॥ ९॥

इक्कीसवाँ अध्याय

श्रावणपूर्णिमापर किये जानेवाले कृत्योंका संक्षिप्त वर्णन तथा रक्षाबन्धनकी कथा

सनत्कुमार बोले—हे दयानिधे! कृपा करके अब आप पौर्णमासीव्रतकी विधि कहिये; क्योंकि हे स्वामिन्! इसका माहात्म्य सुननेवालोंकी श्रवणेच्छा बढ़ती है॥ १॥

ईश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] इस श्रावणमासमें पूर्णिमा तिथिको उत्सर्जन तथा उपाकर्म सम्पन्न होते हैं। पौषकी पूर्णिमा तथा माघकी पूर्णिमा तिथि उत्सर्जन-कृत्यके लिये होती है अथवा उत्सर्जनकृत्यहेतु पौषकी प्रतिपदा अथवा माघकी प्रतिपदा तिथि विहित है अथवा रोहिणी नामक नक्षत्र उत्सर्जन-कृत्यके लिये प्रशस्त होता है अथवा अन्य कालोंमें भी अपनी-अपनी शाखाके अनुसार उत्सर्जन तथा उपाकर्म—दोनोंका साथ-साथ करना उचित माना गया है॥ २—४॥ अत: श्रावणमासकी पूर्णिमाको उत्सर्जन-कृत्य प्रशस्त होता है। साथ ही ऋग्वेदियोंके लिये उपाकर्महेतु श्रवणनक्षत्र होना चाहिये। चतुर्दशी, पूर्णिमा अथवा प्रतिपदा तिथियोंमें जिस दिन श्रवणनक्षत्र हो, उसी दिन ऋग्वेदियोंको उपाकर्म करना चाहिये॥ ५-६॥ यजुर्वेदियोंका उपाकर्म पूर्णिमामें और सामवेदियोंका उपाकर्म हस्तनक्षत्रमें होना चाहिये। शुक्र तथा गुरुके अस्तकालमें भी सुखपूर्वक उपाकर्म करना चाहिये, किंतु इस कालमें इसका आरम्भ पहले नहीं होना चाहिये, ऐसा शास्त्रविदोंका मत है। ग्रहण तथा संक्रान्तिसे दूषित कालके अनन्तर ही इसे करना चाहिये॥ ७-८॥ हस्तनक्षत्रयुक्त पंचमी तिथिमें अथवा भाद्रपद

मलमासे तु सम्प्राप्ते शुद्धे मासि तु सा भवेत्। नित्यं कर्मद्वयं चेदं प्रत्यब्दं नियमाच्चरेत्॥ १०॥

उपाकर्मसमाप्तौ तु संस्थितेषु द्विजातिषु। अर्पणीयः सभादीपो योषिद्भिस्तत्र संसदि॥ ११॥

आचार्यः प्रतिगृह्णाति दद्याद्वान्यद्द्विजातये। सौवर्णे राजते वापि पात्रे ताम्रमयेऽपि वा॥ १२॥

प्रस्थमात्रं तु गोधूमा दीपं तत्पिष्टसम्भवम्। दीपपात्रं संविधाय ज्वालयेत्तत्र दीपकम्॥ १३॥

आज्येन वाथ तैलेन वर्तित्रयसमन्वितम्। सदक्षिणं सताम्बूलं ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ १४॥

दीपं सम्पूज्य विप्रं च मन्त्रमेतमुदीरयेत्। सदक्षिणः सताम्बूलः सभादीपोऽयमुत्तमः॥ १५॥

अर्पितो देवदेवस्य मम सन्तु मनोरथाः। सभादीपप्रदानेन पुत्रपौत्रादिकं कुलम्॥ १६॥

सर्वं ह्युज्ज्वलतां याति वर्धते यशसा सह। स्वरङ्गनाभिः सदृशं रूपं जन्मान्तरे लभेत्॥ १७॥

सौभाग्यं चैव लभते भर्तुः प्रियतरा भवेत्। एवं कृत्वा पञ्चवर्षं तत उद्यापनं चरेत्॥ १८॥

पूर्णिमा तिथिमें उपाकर्म करे, अपने-अपने गृह्यसूत्रके अनुसार उत्सर्जन तथा उपाकर्म करे। अधिकमास आनेपर इसे शुद्धमासमें करना चाहिये। ये दोनों कर्म आवश्यक हैं, अतः प्रत्येक वर्ष इन्हें नियमपूर्वक करना चाहिये॥ ९-१०॥

उपाकर्मकी समाप्तिपर द्विजातियोंके विद्यमान रहनेपर स्त्रियोंको सभामें सभादीप निवेदन करना चाहिये। उस दीपकको आचार्य ग्रहण करे या किसी अन्य ब्राह्मणको प्रदान कर दे॥ ११½॥ [दीपकी विधि बतायी जाती है—] सुवर्ण, चाँदी अथवा ताँबेके पात्रमें सेरभर गेहूँ भरकर गेहूँके आटेका दीपक बनाकर उसमें उस दीपकको जलाये। वह दीपक घीसे अथवा तेलसे भरा हो और तीन बत्तियोंसे युक्त हो, दक्षिणा तथा ताम्बूलसहित उस दीपकको ब्राह्मणको अर्पण कर दे। दीपककी तथा विप्रकी विधिवत् पूजा करके यह मन्त्र बोले—

सदक्षिणः सताम्बूलः सभादीपोऽयमुत्तमः। अर्पितो देवदेवस्य मम सन्तु मनोरथाः॥

दक्षिणा तथा ताम्बूलसे युक्त यह उत्तम सभादीप मैंने देवदेवको निवेदित किया है, मेरे मनोरथ पूर्ण हों॥ १२—१५½॥

सभादीप प्रदान करनेसे पुत्र-पौत्र आदिसे युक्त कुल (वंश) उज्ज्वलताको प्राप्त होता है और यशके साथ निरन्तर बढ़ता है। [इसे करनेवाली स्त्री] दूसरे जन्ममें देवांगनाओंके समान रूप प्राप्त करती है, [वह स्त्री] सौभाग्यवती हो जाती है और अपने पतिकी अत्यधिक प्रिय पात्र होती है॥ १६-१७½॥ इस प्रकार पाँच वर्षतक इसे करनेके पश्चात् उद्यापन करना चाहिये और अपने

विप्राय दक्षिणां दद्याद्यथाशक्ति च भक्तितः। सभादीपस्य माहात्म्यमेतत्ते कथितं शुभम्॥ १९॥

श्रवणाकर्मसंस्था च तस्यामेव निशि स्मृता। तदुत्तरं सर्पबलिस्तत्रैव च विधीयते॥ २०॥

इदं संस्थाद्वयं कुर्यात्स्वस्वगृह्यमवेक्ष्य च। हयग्रीवस्यावतारस्तस्यामेव तिथौ मतः॥ २१॥

हयग्रीवजयन्त्यास्तु अतोऽत्रैव महोत्सवः। उपासनावतां तस्य नित्यस्तु परिकीर्तितः॥ २२॥

श्रावण्यां श्रवणे पूर्वं जातो हयशिरा हरिः। जगौ स सामवेदं तु सर्वकिल्बिषनाशनम्॥ २३॥

सिन्धूनदीवितस्तायां प्रवृत्तस्तत्र सङ्गमे। श्रवणर्क्षे ततस्तत्र स्नानं सर्वार्थसिद्धिदम्॥ २४॥

तत्र सम्पूजयेद्विष्णुं शार्ङ्गचक्रगदाधरम्। श्रोतव्यान्यथ सामानि पूज्या विप्राश्च सर्वथा॥ २५॥

क्रीडितव्यं च भोक्तव्यं तत्रैव स्वजनैः सह। जलक्रीडा च कर्तव्या नारीभिर्भर्तृलब्धये॥ २६॥

स्वस्वदेशे स्वस्वगृहे अपि कुर्यान्महोत्सवम्। पूजयेच्च हयग्रीवं जपेन्मन्त्रं च तं शृणु॥ २७॥

प्रणवादिर्नमः शब्दस्ततो भगवते इति। धर्मायाथ चतुर्थ्यन्तं योज्यं चात्मविशोधनम्॥ २८॥

सामर्थ्यके अनुसार भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको दक्षिणा देनी चाहिये। [हे सनत्कुमार!] यह मैंने आपसे सभादीपका शुभ माहात्म्य कह दिया॥ १८-१९॥ उसी रात्रिमें श्रवणाकर्मका करना बताया गया है। तत्पश्चात् वहींपर सर्पबलि की जाती है। अपना-अपना गृह्यसूत्र देखकर ये दोनों ही कृत्य करने चाहिये॥ २०१/२॥

हयग्रीवका अवतार उसी तिथिमें कहा गया है, अतः इस तिथिपर हयग्रीवजयन्तीका महोत्सव मनाना चाहिये। उनकी उपासना करनेवालोंके लिये यह उत्सव नित्य करना बताया गया है। श्रावणपूर्णिमाके दिन श्रवणनक्षत्रमें भगवान् श्रीहरि हयग्रीवके रूपमें प्रकट हुए और सर्वप्रथम उन्होंने सभी पापोंका नाश करनेवाले सामवेदका गान किया॥ २१—२३॥ इन्होंने सिन्धू और वितस्ता नदियोंके संगमस्थानमें श्रवणनक्षत्रमें जन्म लिया था। अतः श्रावणीके दिन वहाँ स्नान करना सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला होता है॥ २४॥ [उस दिन] वहाँ शार्ङ्गधनुष, चक्र तथा गदा धारण करनेवाले विष्णुकी विधिवत् पूजा करे। इसके बाद सामगानका श्रवण करे, ब्राह्मणोंकी हर प्रकारसे पूजा करे और अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ वहाँ क्रीड़ा करे तथा भोजन करे। स्त्रियोंको चाहिये कि उत्तम पति प्राप्त करनेके उद्देश्यसे जलक्रीड़ा करें॥ २५-२६॥ [उस दिन] अपने-अपने देशमें तथा घरमें भी इस महोत्सवको मनाना चाहिये और हयग्रीवकी पूजा करनी चाहिये तथा उनके मन्त्रका जप करना चाहिये, उस मन्त्रको सुनिये॥ २७॥ आदिमें '**प्रणव**' तथा उसके बाद '**नमः**' शब्द लगाकर बादमें '**भगवते धर्माय**'

पुनरन्ते नमः शब्दो मन्त्रश्चाष्टादशाक्षरः। सर्वसिद्धिकरश्चायं षट्प्रयोगैकसाधकः॥ २९॥
पुरश्चरणमेतस्य अक्षराणां तु सङ्ख्यया। लक्षं वाथ सहस्रं वा कलौ तु स्याच्चतुर्गुणम्॥ ३०॥
एवं कृते हयग्रीवस्तुष्टः सत्कामदो भवेत्। एतस्यामेव पूर्णायां रक्षाबन्धनमिष्यते॥ ३१॥
सर्वरोगोपशमनं सर्वाशुभविनाशनम्। शृणु त्वं मुनिशार्दूल इतिहासं पुरातनम्॥ ३२॥
इन्द्राण्या यत्कृतं पूर्वमिन्द्रस्य जयसिद्धये। देवासुरमभूद्युद्धं पुरा द्वादशवार्षिकम्॥ ३३॥
शक्रं दृष्ट्वा तदा श्रान्तं देवी प्राह सुरेश्वरम्। अद्य भूतदिनं देव प्रातः सर्वं भविष्यति॥ ३४॥
अहं रक्षां विधास्यामि तेनाजेयो भविष्यसि। इत्युक्त्वा पौर्णमास्यां सा पौलोमी कृतमङ्गला॥ ३५॥
बबन्ध दक्षिणे पाणौ रक्षां मोदप्रदां ततः। बद्धरक्षस्ततः शक्रः कृतस्वस्त्ययनो द्विजैः॥ ३६॥
दुद्राव दानवानीकं क्षणाज्जिग्ये प्रतापवान्। वासवो विजयी भूत्वा पुनरेव जगत्त्रये॥ ३७॥
एष प्रभावो रक्षायाः कथितस्ते मुनीश्वर। जयदः सुखदश्चैव पुत्रारोग्यधनप्रदः॥ ३८॥

जोड़कर उसके भी बाद '**आत्मविशोधन**' शब्दकी चतुर्थी विभक्ति (**आत्मविशोधनाय**) लगानी चाहिये। पुनः अन्तमें '**नमः**' शब्द प्रयुक्त करनेसे अठारह अक्षरोंवाला (**ॐ नमो भगवते धर्माय आत्मविशोधनाय नमः**) मन्त्र बनता है। यह मन्त्र सभी सिद्धियाँ प्रदान करनेवाला और छः प्रयोगोंको सिद्ध करनेवाला है॥ २८-२९॥ इस मन्त्रका पुरश्चरण अठारह लाख अथवा अठारह हजार जपका है, कलियुगमें इसका पुरश्चरण इससे भी चार गुने जपसे होना चाहिये॥ ३०॥

इस प्रकार करनेपर हयग्रीव प्रसन्न होकर उत्तम वांछित फल प्रदान करते हैं। इसी पूर्णिमाके दिन रक्षाबन्धन मनाया जाता है, जो सभी रोगोंको दूर करनेवाला तथा सभी अशुभोंका नाश करनेवाला है। हे मुनिश्रेष्ठ! इसी प्रसंगमें एक प्राचीन इतिहास सुनिये, इन्द्रकी विजयप्राप्तिके लिये इन्द्राणीने जो किया था, उसे मैं बता रहा हूँ॥ ३१-३२१/२॥ पूर्वकालमें बारह वर्षोंतक देवासुर संग्राम होता रहा। तब इन्द्रको थका हुआ देखकर देवी इन्द्राणीने उन सुरेन्द्रसे कहा—हे देव! आज चतुर्दशीका दिन है, प्रातः होनेपर सब ठीक हो जायगा। मैं रक्षाबन्धन-अनुष्ठान करूँगी, उससे आप अजेय हो जायँगे॥ ३३-३४१/२॥ तब ऐसा कहकर इन्द्राणीने पूर्णमासीके दिन मंगलकार्य सम्पन्न करके इन्द्रके दाहिने हाथमें आनन्ददायक रक्षा बाँध दी। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंके द्वारा स्वस्त्ययन किये गये तथा रक्षाबन्धनसे युक्त इन्द्रने दानवसेनापर आक्रमण किया और क्षणभरमें उसे जीत लिया। इस प्रकार विजयी होकर इन्द्र तीनों लोकोंमें पुनः प्रतापवान् हो गये॥ ३५—३७॥ हे मुनीश्वर! मैंने आपसे रक्षाबन्धनके इस प्रभावका वर्णन

सनत्कुमार उवाच

क्रियते केन विधिना रक्षाबन्धः सुरोत्तम। कस्यां तिथौ कदा देव एतन्मे वक्तुमर्हसि॥ ३९॥
यथा यथा हि भगवन्विचित्राणि प्रभाषसे। तथा तथा न मे तृप्तिर्बह्वर्थाः शृण्वतः कथाः॥ ४०॥

ईश्वर उवाच

सम्प्राप्ते श्रावणे मासि पौर्णमास्यां दिनोदये। स्नानं कुर्वीत मतिमान् श्रुतिस्मृतिविधानतः॥ ४१॥
सन्ध्याजपादि सम्पाद्य पितॄन्देवानृषींस्तथा। तर्पयित्वा ततः कुर्यात्स्वर्णपात्रविनिर्मिताम्॥ ४२॥
हेमसूत्रैश्च सम्बद्धां मौक्तिकादिविभूषिताम्। कौशेयतन्तुभिः कीर्णैर्विचित्रैर्मलवर्जितैः॥ ४३॥
विचित्रग्रन्थिसंयुक्तां पदगुच्छैश्च राजिताम्। सिद्धार्थैश्चाक्षतैश्चैव गर्भितां सुमनोहराम्॥ ४४॥
संस्थाप्य कलशं तत्र पूर्णपात्रे तु तां न्यसेत्। उपविश्यासने रम्ये सुहृद्भिः परिवारितः॥ ४५॥
वेश्यानर्तनगानादिकृतकौतुकमङ्गलः। ततः पुरोधसा कार्यो रक्षाबन्धः समन्त्रकः॥ ४६॥
येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः। तेन त्वामनुबध्नामि रक्षे मा चल मा चल॥ ४७॥

कर दिया, जो विजय प्रदान करनेवाला, सुख देनेवाला और पुत्र, आरोग्य तथा धन प्रदान करनेवाला है॥ ३८॥

सनत्कुमार बोले—हे देवश्रेष्ठ! यह रक्षाबन्धन किस विधिसे, किस तिथिमें तथा कब किया जाता है? हे देव! कृपा करके इसे बतायें। हे भगवन्! जैसे-जैसे आप अद्भुत बातें बताते जा रहे हैं, वैसे-वैसे अनेक अर्थोंसे युक्त कथाओंको सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं हो रही है॥ ३९-४०॥

ईश्वर बोले—बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि श्रावणका महीना आनेपर पूर्णिमा तिथिको सूर्योदयके समय श्रुति-स्मृतिके विधानसे स्नान करे॥ ४१॥ इसके बाद सन्ध्या, जप आदि करके देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण करनेके अनन्तर सुवर्णमय पात्रमें बनायी गयी, सुवर्णसूत्रोंसे बँधी हुई, मुक्ता आदिसे विभूषित, विचित्र तथा स्वच्छ रेशमी तन्तुओंसे निर्मित, विचित्र ग्रन्थियोंसे सुशोभित, पदगुच्छोंसे अलंकृत और सर्षप तथा अक्षतोंसे गर्भित एक अत्यन्त मनोहर रक्षा (राखी) बनाये। तदनन्तर कलश-स्थापन करके उसके ऊपर पूर्णपात्र रखे और पुनः उसपर रक्षाको स्थापित कर दे। तत्पश्चात् रम्य आसनपर बैठकर सुहृज्जनोंके साथ वारांगनाओंके नृत्यगान आदि तथा क्रीड़ा-मंगलकृत्यमें संलग्न रहे॥ ४२—४५१/२॥ तदनन्तर यह मन्त्र पढ़कर पुरोहित रक्षाबन्धन करे—'**येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः। तेन त्वामनुबध्नामि रक्षे मा चल मा चल॥**' जिस बन्धनसे महान् बलसे सम्पन्न दानवोंके पति राजा बलि बाँधे गये थे, उसीसे मैं आपको बाँधता

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चैवान्यमानवैः। रक्षाबन्धः प्रकर्तव्यो द्विजान्सम्पूज्य यत्नतः॥ ४८॥
अनेन विधिना यस्तु रक्षाबन्धनमाचरेत्। स सर्वदोषरहितः सुखी संवत्सरं भवेत्॥ ४९॥
यः श्रावणे विमलमासि विधानविज्ञो रक्षाविधानमिदमाचरते मनुष्यः।
आस्ते सुखेन परमेण स वर्षमेकं पुत्रैश्च पौत्रसहितः ससुहृज्जनश्च॥ ५०॥
भद्रायां च न कर्तव्यो रक्षाबन्धः शुचिव्रतैः। बद्धा रक्षा तु भद्रायां विपरीतफलप्रदा॥ ५१॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये उपाकर्मोत्सर्जन-श्रवणाकर्मसर्पबलिसभादीपहयग्रीवजयन्तीरक्षाबन्धविधिकथनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

हूँ, हे रक्षे! चलायमान मत होओ, चलायमान मत होओ॥ ४६-४७॥ ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों तथा अन्य मनुष्योंको चाहिये कि यत्नपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करके रक्षाबन्धन करें॥ ४८॥ जो इस विधिसे रक्षाबन्धन करता है, वह सभी दोषोंसे रहित होकर वर्षपर्यन्त सुखी रहता है॥ ४९॥ विधानको जाननेवाला जो मनुष्य शुद्ध श्रावणमासमें इस रक्षाबन्धन अनुष्ठानको करता है, वह पुत्रों, पौत्रों तथा सुहृज्जनोंके सहित एक वर्षभर अत्यन्त सुखसे रहता है॥ ५०॥ उत्तम व्रत करनेवालोंको चाहिये कि भद्रामें रक्षाबन्धन न करें; क्योंकि भद्रामें बाँधी गयी रक्षा विपरीत फल देनेवाली होती है॥ ५१॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'उपाकर्मोत्सर्जनश्रवणाकर्म-सर्पबलिसभादीप हयग्रीवजयन्तीरक्षाबन्धनविधिकथन' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

श्रावणे बहुले पक्षे चतुर्थ्यां मुनिसत्तम। व्रतं सङ्कष्टहरणं सर्वकामफलप्रदम्॥ १॥

सनत्कुमार उवाच

क्रियते केन विधिना किं कार्यं किं च पूजनम्। उद्यापनं कदा कार्यं तन्मे वद सुविस्तरम्॥ २॥

ईश्वर उवाच

चतुर्थ्यां प्रातरुत्थाय दन्तधावनपूर्वकम्। ग्राह्यं व्रतमिदं पुण्यं सङ्कष्टहरणं शुभम्॥ ३॥

निराहारोऽस्मि देवेश यावच्चन्द्रोदयो भवेत्। भोक्ष्यामि पूजयित्वा त्वां सङ्कष्टात्तारयस्व माम्॥ ४॥

एवं सङ्कल्प्य वैधात्र स्नात्वा कृष्णतिलैः शुभैः। विधाय चाह्निकं सर्वं पश्चात्पूज्यो गणाधिपः॥ ५॥

त्रिभिर्माषैस्तदर्धेन तृतीयांशेन वा पुनः। यथाशक्त्याथ वा हैमीं प्रतिमां कारयेद् बुधः॥ ६॥

हेमाभावे तु रूप्यस्य ताम्रस्यापि यथासुखम्। सर्वथा तु दरिद्रेण कर्तव्या मृण्मयी शुभा॥ ७॥

वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं कृते कार्यं विनश्यति। रम्येऽष्टदलपद्मे तु कुम्भं वस्त्रयुतं न्यसेत्॥ ८॥

बाईसवाँ अध्याय

श्रावणमासमें किये जानेवाले संकष्टहरणव्रतका विधान

ईश्वर बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! श्रावणमासमें कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिके दिन सभी वांछित फल प्रदान करनेवाला संकष्टहरण नामक व्रत करना चाहिये॥ १॥

सनत्कुमार बोले—किस विधिसे यह व्रत किया जाता है, इस व्रतमें क्या करना चाहिये, किस देवताका पूजन करना चाहिये और इसका उद्यापन कब करना चाहिये? उसके विषयमें मुझे विस्तारपूर्वक बताइये॥ २॥

ईश्वर बोले—चतुर्थीके दिन प्रातः उठकर दन्तधावन करके इस संकष्टहरण नामक शुभ व्रतको करनेके लिये यह संकल्प ग्रहण करना चाहिये—हे देवेश! आज मैं चन्द्रमाके उदय होनेतक निराहार रहूँगा और [रात्रिमें] आपकी पूजा करके भोजन करूँगा, संकटसे मेरा उद्धार कीजिये॥ ३-४॥ हे ब्रह्मपुत्र! इस प्रकार संकल्प करके शुभ काले तिलों [-से युक्त जल]-से स्नान करके समस्त आह्निक कृत्य सम्पन्न करनेके अनन्तर गणपतिकी पूजा करनी चाहिये॥ ५॥ बुद्धिमान्‌को चाहिये कि तीन माशे अथवा उसके आधे (डेढ़ माशे) परिमाण अथवा तृतीय अंश (एक माशे) सुवर्णसे अथवा अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णकी प्रतिमा बनाये। सुवर्णके अभावमें चाँदी अथवा ताँबेकी ही प्रतिमा सुखपूर्वक बनाये। यदि निर्धन हो तो वह मिट्टीकी ही शुभ प्रतिमा बना ले। किंतु इसमें [वित्तशाठ्य] न करे; क्योंकि वित्तशाठ्य करनेपर कार्य

जलपूर्णं तत्र पूर्णपात्रे देवं प्रपूजयेत्। षोडशैरुपचारैस्तु मन्त्रैर्वैदिकतान्त्रिकैः॥ ९॥
मोदकान्कारयेद्विप्र तिलयुक्तान्दशोत्तमान्। देवाग्रे स्थापयेत्पञ्च पञ्च विप्राय दापयेत्॥ १०॥
पूजयित्वा तु तं विप्रं भक्तिभावेन देववत्। दक्षिणां तु यथाशक्त्या दत्वा च प्रार्थयेत्ततः॥ ११॥
विप्रवर्य नमस्तुभ्यं मोदकांस्ते ददाम्यहम्। सफलान्पञ्चसङ्ख्याकान्देव दक्षिणया युतान्॥ १२॥
आपदुद्धरणार्थाय गृहाण द्विजसत्तम। अबद्धमतिरिक्तं वा द्रव्यहीनं मया कृतम्॥ १३॥
तत्सर्वं पूर्णतां यातु विप्ररूप गणेश्वर। ब्राह्मणान्भोजयेच्चैव स्वाद्वन्नेन यथासुखम्॥ १४॥
चन्द्रायार्घ्यं प्रदातव्यं शृणु तन्मन्त्रमादितः। क्षीरसागरसम्भूत सुधारूप निशाकर॥ १५॥
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गणेशप्रीतिवर्धन। एवं कृते विधाने तु प्रसन्नः स्याद् गणाधिपः॥ १६॥
ददाति वाञ्छितान्कामांस्तस्मात्तद् व्रतमाचरेत्। विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम्॥ १७॥
पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति मोक्षार्थी लभते गतिम्। कार्यार्थी कार्यमाप्नोति रोगी रोगाद्विमुच्यते॥ १८॥

नष्ट हो जाता है॥ ६-७१/२ ॥ रम्य अष्टदल कमलपर जलसे पूर्ण तथा वस्त्रयुक्त कलश स्थापित करे और उसके ऊपर पूर्णपात्र रखकर उसमें वैदिक तथा तान्त्रिक मन्त्रोंद्वारा सोलहों उपचारोंसे देवताकी पूजा करे॥ ८-९ ॥

हे विप्र! तिलयुक्त दस उत्तम मोदक बनाये, [उनमेंसे] पाँच मोदक देवताके समक्ष निवेदित करे और पाँच मोदक ब्राह्मणको प्रदान करे। भक्तिभावसे उस विप्रकी देवताकी भाँति पूजा करे और यथाशक्ति दक्षिणा देकर यह प्रार्थना करे—हे विप्रवर्य! आपको नमस्कार है। हे देव! मैं आपको फल तथा दक्षिणासे युक्त पाँच मोदक प्रदान करता हूँ। हे द्विजश्रेष्ठ! मेरी विपत्तिको दूर करनेके लिये इसे ग्रहण कीजिये। हे विप्ररूप गणेश्वर! मेरेद्वारा जो भी न्यून, अधिक अथवा द्रव्यहीन [कृत्य] किया गया हो, वह सब पूर्णताको प्राप्त हो। इसके बाद स्वादिष्ट अन्नसे ब्राह्मणोंको प्रसन्नतापूर्वक भोजन कराये॥ १०—१४॥ तत्पश्चात् चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे, उसका मन्त्र प्रारम्भसे सुनिये—हे क्षीरसागरसे प्रादुर्भूत! हे सुधारूप! हे निशाकर! हे गणेशकी प्रीतिको बढ़ानेवाले! मेरे द्वारा दिये गये अर्घ्यको ग्रहण कीजिये॥ १५१/२ ॥ इस विधानके करनेपर गणेश्वर प्रसन्न होते हैं और वांछित फल प्रदान करते हैं, अतः इस व्रतको [अवश्य] करना चाहिये। [इस व्रतका अनुष्ठान करनेसे] विद्यार्थी विद्या प्राप्त करता है, धन चाहनेवाला धन पा जाता है, पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाला पुत्र प्राप्त करता है, मोक्ष चाहनेवाला [उत्तम] गति प्राप्त करता है, कार्यकी सिद्धि चाहनेवालेका कार्य सिद्ध हो जाता है और रोगी रोगसे

आपत्सु वर्तमानानां नृणां व्याकुलचेतसाम्। चिन्तया ग्रस्तमनसां वियोगः सुहृदां तथा॥ १९॥
सर्वसङ्कष्टहरणं सर्वाभीष्टफलप्रदम्। पुत्रपौत्रादिजननं सर्वसम्पत्करं नृणाम्॥ २०॥
पूजने च जपे चैव मन्त्रं ते कथयाम्यहम्। तारोत्तरं नमः शब्दं हेरम्बं मदमोदितम्॥ २१॥
चतुर्थ्यन्तं प्रशस्तं च सङ्कष्टस्य निवारणम्। स्वाहान्तं च वदेन्मन्त्रमेकविंशतिवर्णकम्॥ २२॥
इन्द्रादिलोकपालांश्च समन्तादर्चयेत्सुधीः। मोदकानां प्रकारं च अन्यं ते कथयाम्यहम्॥ २३॥
पक्वमुद्गतिलैर्युक्ता मोदका घृतपाचिताः। अर्पणीया गणेशाय नारिकेलेन गर्भिताः॥ २४॥
ततो दूर्वाङ्कुरान् गृह्णन्नेभिर्नामपदैः पृथक्। पूजयेद् गणनाथं च तानि नामानि मे शृणु॥ २५॥
गणाधिप नमस्तेऽस्तु उमापुत्राघनाशन। एकदन्तेभवक्त्रेति तथा मूषकवाहन॥ २६॥
विनायकेशपुत्रेति सर्वसिद्धिप्रदायक। विघ्नराज स्कन्दगुरो सर्वसङ्कष्टनाशन॥ २७॥
लम्बोदर गणाध्यक्ष गौर्यङ्गमलसम्भव। धूमकेतो भालचन्द्र सिन्दूरासुरमर्दन॥ २८॥
विद्यानिधान विकट शूर्पकर्णेति चैव हि। पूजयेद् गणपं चैवमेकविंशतिनामभिः॥ २९॥

मुक्त हो जाता है। विपत्तियोंमें पड़े हुए, व्याकुल चित्तवाले, चिन्तासे ग्रस्त मनवाले तथा जिन्हें अपने सुहृज्जनोंका वियोग हो गया हो—उन मनुष्योंका दुःख दूर हो जाता है। यह व्रत मनुष्योंके सभी कष्टोंका निवारण करनेवाला, उन्हें सभी अभीष्ट फल प्रदान करनेवाला, पुत्र-पौत्र आदि देनेवाला तथा सभी प्रकारकी सम्पत्तिकी प्राप्ति करानेवाला है॥ १६—२०॥

[हे सनत्कुमार!] अब मैं पूजन तथा जपके मन्त्रको आपसे कहता हूँ—'**प्रणव**' के पश्चात् '**नमः**' शब्द लगाकर बादमें '**हेरम्ब**', '**मदमोदित**' तथा '**संकष्टस्य निवारण**'—इन शब्दोंका चतुर्थ्यन्त जोड़कर पुनः अन्तमें '**स्वाहा**' प्रयुक्त करके इस इक्कीस वर्णवाले मन्त्र (**ॐ नमो हेरम्बाय मदमोदिताय संकष्टस्य निवारणाय स्वाहा**)-को बोलना चाहिये॥ २१-२२॥ बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि इन्द्र आदि लोकपालोंकी सभी दिशाओंमें पूजा करे। अब मैं मोदकोंकी दूसरी विधि आपको बताता हूँ—पके हुए मूँग तथा तिलोंसे युक्त घृतमें पकाये गये तथा गरीके छोटे-छोटे टुकड़ोंसे मिश्रित मोदक गणेशजीको निवेदित करे। तत्पश्चात् दूर्वाके अंकुर लेकर इन नामपदोंसे पृथक्-पृथक् गणेशजीकी पूजा करे, उन नामोंको मुझसे सुनिये॥ २३—२५॥ हे गणाधिप! हे उमापुत्र! हे अघनाशन! हे एकदन्त! हे इभवक्त्र! हे मूषकवाहन! हे विनायक! हे ईशपुत्र! हे सर्वसिद्धिप्रदायक! हे विघ्नराज! हे स्कन्दगुरो! हे सर्वसंकष्टनाशन! हे लम्बोदर! हे गणाध्यक्ष! हे गौर्यंगमलसम्भव! हे धूमकेतो! हे भालचन्द्र! हे सिन्दूरासुरमर्दन! हे विद्यानिधान! हे विकट! हे शूर्पकर्ण! आपको नमस्कार

प्रार्थयेच्च ततो देवं भक्तिनम्रः प्रसन्नधीः। विघ्नराज नमस्तेऽस्तु उमापुत्राघनाशन॥ ३०॥

यदुद्दिश्य कृतं मेऽद्य यथाशक्ति प्रपूजनम्। तेन तुष्टो ममाद्याशु हृत्स्थान्कामान्प्रपूरय॥ ३१॥

विघ्नान्नाशय मे सर्वान्विविधोपस्थितान्प्रभो। त्वत्प्रसादेन कार्याणि सर्वाणीह करोम्यहम्॥ ३२॥

शत्रूणां बुद्धिनाशं च मित्राणामुदयं कुरु। ततो होमं प्रकुर्वीत शतमष्टोत्तरं तथा॥ ३३॥

मौदकैर्वायनं दद्याद् व्रतसम्पूर्णहेतवे। लड्डुकैर्मोदकैर्वापि सप्तभिः फलसंयुतम्॥ ३४॥

गणेशप्रीणनार्थाय ब्राह्मणाय ददाम्यहम्। कथां श्रुत्वा ततः पुण्यां दद्यादर्घ्यं प्रयत्नतः॥ ३५॥

चन्द्राय पञ्चवारं तु मन्त्रेणानेन सत्तम॥ ३६॥

क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिगोत्रसमुद्भव। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं रोहिण्या सहितः शशिन्॥ ३७॥

ततः क्षमापयेद्देवं शक्त्या विप्रांश्च भोजयेत्। स्वयं भुञ्जीत तच्छेषं यदेव ब्राह्मणार्पितम्॥ ३८॥

है। इस प्रकार इन इक्कीस नामोंसे गणेशजीकी पूजा करे॥ २६—२९॥ तदनन्तर भक्तिसे नम्र होकर प्रसन्नबुद्धिसे गणेश देवतासे इस प्रकार प्रार्थना करे—हे विघ्नराज! आपको नमस्कार है। हे उमापुत्र! हे अघनाशन! जिस उद्देश्यसे मैंने यथाशक्ति आज आपका पूजन किया है, उससे प्रसन्न होकर शीघ्र ही मेरे हृदयस्थित मनोरथोंको पूर्ण कीजिये। हे प्रभो! मेरे समक्ष उपस्थित विविध प्रकारके समस्त विघ्नोंका नाश कीजिये, मैं यहाँ सभी कार्य आपकी ही कृपासे करता हूँ, [मेरे] शत्रुओंकी बुद्धिका नाश कीजिये तथा मित्रोंकी उन्नति कीजिये॥ ३०—३२१/२॥

इसके बाद एक सौ आठ आहुति देकर होम करे। तत्पश्चात् व्रतकी सम्पूर्णताके लिये मोदकोंका वायन प्रदान करे। [उस समय यह कहे—] गणेशजीकी प्रसन्नताके लिये मैं सात लड्डुओं तथा सात मोदकोंका वायन फलसहित ब्राह्मणको प्रदान करता हूँ॥ ३३-३४१/२॥ तदनन्तर हे सत्तम! पुण्यदायिनी कथा सुनकर इस मन्त्रके द्वारा पाँच बार प्रयत्नपूर्वक चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे—

क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिगोत्रसमुद्भव। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं रोहिण्या सहितः शशिन्॥

क्षीरसागरसे उत्पन्न तथा अत्रिगोत्रमें उत्पन्न हे चन्द्र! रोहिणीसहित आप मेरे द्वारा प्रदत्त अर्घ्यको स्वीकार कीजिये॥ ३५—३७॥ तत्पश्चात् [अपने अपराधके लिये] देवतासे क्षमाप्रार्थना करे और अपने सामर्थ्यके अनुसार ब्राह्मणोंको

सप्तग्रासान्मौनयुक्तो ह्यशक्तस्तु यथासुखम्। इत्थं कुर्यात् त्रिमासेषु चतुर्ष्वपि विधानतः॥ ३९॥
उद्यापनं पञ्चमे च कुर्याद्धीमान्प्रयत्नतः। सौवर्णं वक्रतुण्डं च शक्त्या कुर्याद्विचक्षणः॥ ४०॥
पूर्वोक्तेन विधानेन पूजयेद्भक्तिमान्नरः। चन्दनेन सुगन्धेन पुष्पैर्नानाविधैः शुभैः॥ ४१॥
नारिकेलफलेनैव दद्यादर्घ्यं समाहितः। दद्याद् भक्ताय विप्राय वायनं फलसंयुतम्॥ ४२॥
शूर्पपायससंयुक्तं रक्तवस्त्रेण वेष्टितम्। सौवर्णं गणपं तस्मै दद्याच्चैव सदक्षिणम्॥ ४३॥
तिलानामाढकं दद्याद् व्रतसम्पूर्णहेतवे। ततः क्षमापयेद्देवं विघ्नेशः प्रीयतामिति॥ ४४॥
इत्थमुद्यापनं कृत्वा हयमेधफलं लभेत्। सर्वकार्याणि सिध्यन्ति मनोऽभिलषितान्यपि॥ ४५॥
पुरा कल्पे गते स्कन्दे पार्वत्या वै कृतं किल। चतुर्ष्वपि च मासेषु मम वाक्येन सत्तम॥ ४६॥
पञ्चमे मासि दृष्टस्तु कार्तिकेयो ह्यपर्णया। समुद्रपानवेलायां ह्यगस्त्येन पुरा कृतम्॥ ४७॥
त्रिसु मासेषु विघ्नेशप्रसादात्सिद्धिमाप सः। षण्मासावधि विप्रेन्द्र दमयन्त्या कृतं त्विदम्॥ ४८॥

भोजन कराये तथा ब्राह्मणोंको जो अर्पित किया हो उसके अवशिष्ट भोजनको स्वयं ग्रहण करे। मौन होकर सात ग्रास ग्रहण करे और यदि अशक्त हो तो इच्छानुसार भोजन करे। इसी प्रकार तीन मास अथवा चार मासतक विधानपूर्वक इस व्रतको करे॥ ३८-३९॥ तत्पश्चात् बुद्धिमान्‌को चाहिये कि पाँचवें महीनेमें उद्यापन करे। [उद्यापनके लिये] बुद्धिमान्‌को अपने सामर्थ्यके अनुसार स्वर्णमयी गणेश-प्रतिमा बनानी चाहिये। तत्पश्चात् उस भक्तिसम्पन्न मनुष्यको पूर्वोक्त विधानसे चन्दन, सुगन्धित द्रव्य तथा अनेक प्रकारके सुन्दर पुष्पोंसे पूजा करनी चाहिये और एकाग्रचित्त होकर नारिकेलफलसे अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। पायससे युक्त सूपमें फल रखकर और उसे लाल वस्त्रसे लपेटकर यह वायन भक्त ब्राह्मणको प्रदान करे; साथ ही स्वर्णकी गणपति-प्रतिमा भी दक्षिणासहित उन्हें दे। व्रतकी पूर्णताके लिये एक आढक तिलका दान करे, तदनन्तर 'विघ्नेश प्रसन्न हों'—ऐसा कहकर देवतासे क्षमा-प्रार्थना करे॥ ४०—४४॥

इस प्रकार उद्यापन करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है और मनोवांछित सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं॥ ४५॥ हे सत्तम! पूर्व कल्पमें स्कन्दकुमारके चले जानेपर पार्वतीने मेरी आज्ञासे चार महीनेतक इस व्रतको किया था, तब पाँचवें महीनेमें पार्वतीने कार्तिकेयको प्राप्त किया था। समुद्रपानके समय अगस्त्यजीने इस व्रतको किया था और तीन मासोंमें विघ्नेश्वरकी कृपासे उन्होंने सिद्धि प्राप्त कर ली। हे विप्रेन्द्र! [राजा नलके लिये] दमयन्तीने छः महीनेतक इस व्रतको

नलमन्वेषयन्त्या च ततो दृष्टो नलोऽभवत्। नीतेऽनिरुद्धे बाणस्य नगरं चित्रलेखया॥ ४९॥
क्व गतः केन नीतोऽसावित्यभूद्व्याकुलः स्मरः। प्रद्युम्नं पुत्रशोकार्तं प्रीत्या रुक्मिण्यभाषत॥ ५०॥
शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि यद् व्रतं मामके गृहे। राक्षसेन पुरा नीते बालके त्वयि खण्डिते॥ ५१॥
त्वद्वियोगजदुःखेन हृदयं मम दारितम्। कदा द्रक्ष्याम्यहं पुत्रमुखमत्यन्तसुन्दरम्॥ ५२॥
अन्यस्त्रीणां सुतान्दृष्ट्वा मम चेतो विदीर्यते। मम पुत्रो भवेन्नासौ वयसा मे न मानतः॥ ५३॥
इति चिन्ताकुलाया मे गतान्यब्दानि भूरिशः। ततो मे दैवयोगेन लोमशो मुनिरागतः॥ ५४॥
तेनोपदिष्टं विधिवत्सर्वचिन्ताहरं व्रतम्। सङ्कटाख्यचतुर्थ्यास्तु चतुर्मासि मया कृतम्॥ ५५॥
तत्प्रसादात्त्वमायातो हत्वा शम्बरमाहवे। ज्ञात्वा प्रकुरु पुत्र त्वं ततो ज्ञास्यसि नन्दनम्॥ ५६॥
प्रद्युम्नेन कृतं विप्र गणनाथस्य तोषणम्। श्रुतो बाणासुरपुरेऽनिरुद्धो नारदात्ततः॥ ५७॥
गत्वा बाणासुरपुरं युद्धं कृत्वा सुदारुणम्। कृशानुरेतसा सार्धं जित्वा बाणासुरं रणे॥ ५८॥

किया था, तब नलको खोजती हुई दमयन्तीको वे मिल गये थे॥ ४६—४८$^{1}/_{2}$ ॥ जब चित्रलेखा अनिरुद्धको बाणासुरके नगरमें ले गयी थी, तब 'वह कहाँ गया और उसे कौन ले गया'—यह सोचकर प्रद्युम्न व्याकुल हो गये। उस समय प्रद्युम्नको पुत्रशोकसे पीड़ित देखकर रुक्मिणीने प्रेमपूर्वक उससे कहा—हे पुत्र! मैंने जो व्रत अपने घरमें किया था, उसे बताऊँगी, तुम [ध्यानपूर्वक] सुनो। बहुत समय पहले जब राक्षस तुम्हें उठा ले गया था, तब तुम्हारे वियोगजन्य दुःखके कारण मेरा हृदय विदीर्ण हो गया था। मैं सोचती थी कि मैं अपने पुत्रका अति सुन्दर मुख कब देखूँगी। उस समय अन्य स्त्रियोंके पुत्रोंको देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हो जाता था कि कहीं अवस्था-साम्यसे यह मेरा ही पुत्र तो नहीं। इसी चिन्तामें व्याकुल हुई मेरे अनेक वर्ष व्यतीत हो गये॥ ४९—५३$^{1}/_{2}$ ॥ तब दैवयोगसे लोमश मुनि मेरे घर आ गये। उन्होंने सभी चिन्ताओंको दूर करनेवाला संकष्टचतुर्थीका व्रत मुझे विधिपूर्वक बताया और मैंने चार महीनेतक इसे किया। उसीके प्रभावसे तुम शम्बरासुरको युद्धमें मारकर आ गये थे। अतः हे पुत्र! इस व्रतकी विधि जान करके तुम भी इसे करो, उससे तुम्हें अपने पुत्रका पता चल जायगा॥ ५४—५६ ॥

हे विप्र! प्रद्युम्नने [यह व्रत करके] गणेशजीको प्रसन्न किया। तब नारदजीसे उन्होंने सुना कि अनिरुद्ध बाणासुरके नगरमें है। इसके बाद बाणासुरके नगरमें जाकर उससे अत्यन्त भीषण युद्ध करके और संग्राममें शिवसहित बाणासुरको

आनीतः स्नुषया सार्धमनिरुद्धस्तदा मुने। अन्यैर्देवासुरैः पूर्वं कृतं विघ्नेशतुष्टये॥ ५९॥

अनेन सदृशं लोके सर्वसिद्धिकरं व्रतम्। तपो दानं च तीर्थं च विद्यते नात्र कुत्रचित्॥ ६०॥

बहुनात्र किमुक्तेन नास्त्यन्यत्कार्यसिद्धये। नोपदेश्यं त्वभक्ताय नास्तिकाय शठाय च॥ ६१॥

देयं पुत्राय शिष्याय श्रद्धायुक्ताय साधवे॥ ६२॥

मम प्रियोऽसि विप्रर्षे धर्मिष्ठ विधिनन्दन। कार्यकर्तासि लोकानामुपदिष्टमतस्तव॥ ६३॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये चतुर्थीव्रतकथनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

जीतकर पुत्रवधूसहित अनिरुद्धको प्रद्युम्न घर लाये थे। हे मुने! इसी प्रकार अन्य देवताओं तथा असुरोंने भी विघ्नेशकी प्रसन्नताके लिये यह व्रत किया था॥ ५७—५९॥ हे सनत्कुमार! इस व्रतके समान सभी सिद्धियाँ देनेवाला इस लोकमें कोई भी व्रत, तप, दान और तीर्थ नहीं है। बहुत कहनेसे क्या लाभ? [इसके तुल्य] कार्यसिद्धि करनेवाला दूसरा कुछ भी नहीं है। अभक्त, नास्तिक तथा शठको इस व्रतका उपदेश नहीं करना चाहिये अपितु पुत्र, शिष्य, श्रद्धालु तथा सज्जनको इसका उपदेश करना चाहिये। हे विप्रर्षे! हे धर्मिष्ठ! हे विधिनन्दन! तुम मेरे प्रिय हो तथा लोकोपकार करनेवाले हो, अतः मैंने तुम्हारे लिये इस व्रतका उपदेश किया है॥ ६०—६३॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'चतुर्थीव्रतकथन' नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

कृष्णाष्टम्यां नभोमासि वृषे चन्द्रे निशीथके। देवक्यजीजनत्कृष्णं योगेऽस्मिन्वसुदेवतः॥ १॥

सिंहराशिगते सूर्ये कर्तव्यः सुमहोत्सवः। सप्तम्यां लघुभुक्कुर्याद्दन्तधावनपूर्वकम्॥ २॥

उपवासस्य नियमं स्वपेद्रात्रौ जितेन्द्रियः। केवलेनोपवासेन कृष्णजन्मदिनं नयेत्॥ ३॥

सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः। उपावृत्तस्तु पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह॥ ४॥

उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः। ततोऽष्टम्यां तिलैः स्नात्वा नद्यादौ विमले जले॥ ५॥

सुदेशे शोभनं कुर्याद्देवक्याः सूतिकागृहम्। नानावर्णैः सुवासोभिः शोभितं कलशैः फलैः॥ ६॥

पुष्पैर्दीपावलीभिश्च चन्दनागरुधूपितम्। हरिवंशस्य चरितं गोकुलं तत्र लेखयेत्॥ ७॥

युक्तं वादित्रनिनदैर्नृत्यगीतादिमङ्गलैः। षष्ट्या देव्याधिष्ठितां च तन्मध्ये प्रतिमां हरेः॥ ८॥

तेईसवाँ अध्याय

कृष्णजन्माष्टमीव्रतका वर्णन

ईश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] श्रावणमास*में कृष्णपक्षकी अष्टमीको वृषके चन्द्रमामें अर्धरात्रिमें इस प्रकारके शुभ योगमें देवकीने वसुदेवसे श्रीकृष्णको जन्म दिया॥ १॥ सूर्यके सिंहराशिमें प्रवेश करनेपर इस श्रेष्ठ महोत्सवको करना चाहिये। सप्तमीके दिन अल्प आहार करे। इस दिन दन्तधावन करके उपवासके नियमका पालन करे और जितेन्द्रिय होकर रातमें शयन करे। जो मनुष्य केवल उपवासके द्वारा कृष्णजन्माष्टमीका दिन व्यतीत करता है, वह सात जन्मोंमें किये गये पापसे मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ २-३ 1/2 ॥ पापोंसे मुक्त होकर गुणोंके साथ जो वास होता है, उसीको सभी भोगोंसे रहित उपवास जानना चाहिये। अष्टमीके दिन नदी आदिके निर्मल जलमें तिलोंसे स्नान करके किसी उत्तम स्थानमें देवकीका सुन्दर सूतिकागृह बनाना चाहिये, जो अनेक वर्णके वस्त्रों, कलशों, फलों, पुष्पों तथा दीपोंसे सुशोभित हो और चन्दन तथा अगरुसे सुवासित हो। उसमें हरिवंशपुराणके अनुसार गोकुललीलाकी रचना करे और उसे बाजोंकी ध्वनियों तथा नृत्य, गीत आदि मंगलोंसे सदा युक्त रखे॥ ४—७ 1/2 ॥ उस गृहके मध्यमें षष्ठीदेवीकी प्रतिमासहित सुवर्ण, चाँदी, ताम्र, पीतल, मिट्टी, काष्ठ अथवा मणिकी अनेक रंगोंसे लिखी

---

* इसका स्पष्टीकरण पृ०सं० २५ में देखना चाहिये।

काञ्चनीं राजतीं ताम्रीं पैत्तलीं मृन्मयीं तु वा। वार्क्षीं मणिमयीं वापि वर्णकैर्लिखितां यथा॥ ९॥
सर्वलक्षणसम्पन्नां पर्यङ्के चाष्टशल्यके। प्रसूतां देवकीं तत्र स्थापयेन्मञ्चकोपरि॥ १०॥
सुप्तं बालं तत्र हरिं पर्यङ्के स्तनपायिनम्। यशोदां तत्र चैकस्मिन्प्रदेशे सूतिकागृहे॥ ११॥
प्रसूतां कन्यकां चैव कृष्णपार्श्वे तु संलिखेत्। कृताञ्जलिपुटान्देवान्यक्षविद्याधरामरान् ॥ १२॥
वसुदेवं च तत्रैव खड्गचर्मधरं स्थितम्। कश्यपो वसुदेवोऽयमदितिश्चैव देवकी॥ १३॥
शेषो बलो यशोदापि अदित्यंशाद् बभूव ह। नन्दः प्रजापतिर्दक्षो गर्गश्चापि चतुर्मुखः॥ १४॥
गोप्यश्चाप्सरसः सर्वा गोपाश्चापि दिवौकसः। कालनेमिश्च कंसोऽयं नियुक्तास्तेन चासुराः॥ १५॥
गोधेनुकुञ्जराश्वाश्च दानवाः शस्त्रपाणयः। लेखनीयाश्च तत्रैव कालियो यमुनाह्रदे॥ १६॥
इत्येवमादि यत्किञ्चिच्चरितं हरिणा कृतम्। लेखयित्वा प्रयत्नेन पूजयेद्भक्तितत्परः॥ १७॥
उपचारैः षोडशभिर्देवकी चेति मन्त्रतः॥ १८॥

गायद्भिः किन्नराद्यैः सततपरिणुता वेणुवीणानिनादैर्भृङ्गार्यादर्शदूर्वादधिकलशकरैः किन्नरैः सेव्यमाना।
पर्यङ्के स्वासनस्था मुदिततरमुखी पुत्रिणी सम्यगास्ते सा देवी दिव्यमाता विजयसुतसुता देवकी कान्तयुक्ता॥ १९॥

हुई श्रीकृष्णकी प्रतिमा स्थापित करे। वहाँ आठ शल्यवाले पर्यंक (पलंग)-के ऊपर सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न प्रसूता-वस्थावाली देवकीकी मूर्ति रखकर उन सबको एक मंचपर स्थापित करे और उस पर्यंकमें स्तनपान करते हुए सुप्त बालरूप श्रीकृष्णको भी स्थापित करे॥ ८—१०१/२ ॥

उस सूतिकागृहमें एक स्थानपर कन्याको जन्म दी हुई यशोदाको भी कृष्णके समीप लिखे। साथ ही हाथ जोड़े हुए देवताओं, यक्षों, विद्याधरों तथा अन्य देवयोनियोंको भी लिखे और वहींपर खड्ग तथा ढाल धारण करके खड़े हुए वसुदेवको भी लिखे॥ ११-१२१/२ ॥ इस प्रकार कश्यपके रूपमें अवतीर्ण वसुदेवजी, अदितिस्वरूपा देवकी, शेषनागके अवतार बलराम, अदितिके ही अंशसे प्रादुर्भूत यशोदा, दक्ष प्रजापतिके अवतार नन्द, ब्रह्माके अवतार गर्गाचार्य, सभी अप्सराओंके रूपमें प्रकट गोपिकावृन्द, देवताओंके रूपमें जन्म लेनेवाले गोपगण, कालनेमिस्वरूप कंस, उस कंसके द्वारा व्रजमें भेजे गये वृषासुर-वत्सासुर-कुवलयापीड-केशी आदि असुर, हाथोंमें शस्त्र लिये हुए दानव तथा यमुनादहमें स्थित कालिय नाग—इन सबको वहाँ चित्रित करना चाहिये। इस प्रकार पहले इन्हें बनाकर श्रीकृष्णने जो कुछ भी अन्य लीलाएँ की हैं, उन्हें भी अंकित करके भक्तिपरायण होकर प्रयत्नपूर्वक सोलहों उपचारोंसे '**देवकी०**'—इस मन्त्रके द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिये॥ १३—१८॥ वेणु तथा वीणाकी ध्वनिके द्वारा गान करते हुए प्रधान किन्नरोंसे निरन्तर जिनकी स्तुति की जाती है, हाथोंमें भृंगारि, दर्पण, दूर्वा, दधि-कलश लिये हुए किन्नर जिनकी सेवा कर रहे हैं, जो शय्याके ऊपर सुन्दर आसनपर भलीभाँति विराजमान हैं, जो अत्यन्त प्रसन्न मुखमण्डलवाली हैं

प्रणवादिनमोन्तैश्च पृथङ्नामानुकीर्तनैः। कुर्यात्पूजां विधिज्ञस्तु सर्वपापापनुत्तये॥ २०॥

देवक्या वसुदेवस्य वासुदेवस्य चैव हि। बलदेवस्य नन्दस्य यशोदायाः पृथक् पृथक्॥ २१॥

चन्द्रोदये शशाङ्काय अर्घ्यं दद्याद्धरिं स्मरन्। क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिगोत्रसमुद्भव।

नमस्ते रोहिणीकान्त अर्घ्यं नः प्रतिगृह्यताम्॥ २२॥

देवक्या वसुदेवं च नन्दं चैव यशोदया। रोहिण्या च सुधारश्मिं बलं च हरिणा सह॥ २३॥

सम्पूज्य विधिवद्देही किं नाप्नोति सुदुर्लभम्। एकादशीकोटिसङ्ख्यातुल्या कृष्णाष्टमी तथा॥ २४॥

एवं सम्पूज्य तद्रात्रौ प्रभाते नवमीदिने। यथा हरेस्तथा कार्यो भगवत्या महोत्सवः॥ २५॥

ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या दद्याद्वै गोधनादिकम्। यद्यदिष्टतमं तत्र कृष्णो मे प्रीयतामिति॥ २६॥

नमस्ते वासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च। शान्तिरस्तु शिवं चास्तु इत्युक्त्वा तं विसर्जयेत्॥ २७॥

ततो बन्धुजनैः सार्धं स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः। एवं यः कुरुते देव्याः कृष्णस्य च महोत्सवम्॥ २८॥

तथा पुत्रसे शोभायमान हैं, वे देवताओंकी माता तथा विजयसुतसुता देवी देवकी अपने पति वसुदेवसहित सुशोभित हो रही हैं॥ १९॥

तत्पश्चात् विधि जाननेवाले मनुष्यको चाहिये कि आदिमें प्रणव तथा अन्तमें नम:से युक्त करके अलग-अलग सभीके नामोंका उच्चारण करके सभी पापोंसे मुक्तिके लिये देवकी, वसुदेव, वासुदेव, बलदेव, नन्द तथा यशोदाकी पृथक्-पृथक् पूजा करनी चाहिये ॥ २०-२१ ॥ तत्पश्चात् चन्द्रमाके उदय होनेपर श्रीहरिका स्मरण करते हुए चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे [इस प्रकार कहे—] हे क्षीरसागरसे प्रादुर्भूत, हे अत्रिगोत्रमें उत्पन्न आपको नमस्कार है। हे रोहिणीकान्त! मेरे इस अर्घ्यको आप स्वीकार कीजिये॥ २२॥

देवकीके साथ वसुदेव, नन्दके साथ यशोदा, रोहिणीके साथ चन्द्रमा और श्रीकृष्णके साथ बलरामकी विधिवत् पूजा करके मनुष्य कौन-सी परम दुर्लभ वस्तुको नहीं प्राप्त कर सकता है। कृष्णाष्टमीका व्रत एक करोड़ एकादशीव्रतके समान होता है॥ २३-२४॥ इस प्रकारसे उस रात पूजन करके प्रात: नवमी तिथिको भगवतीका जन्म-महोत्सव वैसे ही मनाना चाहिये जैसे श्रीकृष्णका [अष्टमीके दिन] हुआ था। तदनन्तर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये और उन्हें जो-जो अभीष्ट हो गौ, धन आदि प्रदान करना चाहिये, उस समय यह कहना चाहिये—श्रीकृष्ण मेरे ऊपर प्रसन्न हों। गौ तथा ब्राह्मणका हित करनेवाले आप वासुदेवको नमस्कार है, शान्ति हो, कल्याण हो—ऐसा कहकर उनका विसर्जन कर देना चाहिये। तत्पश्चात् मौन होकर बन्धु-बान्धवोंके साथ भोजन करना चाहिये॥ २५—२७$^{१}/_{२}$॥ इस प्रकार जो प्रत्येक वर्ष विधानपूर्वक कृष्ण तथा

प्रतिवर्षं विधानेन यथोक्तं लभते फलम्। पुत्रसन्तानमारोग्यं सौभाग्यमतुलं भवेत्॥ २९॥
इह धर्ममतिर्भूत्वा अन्ते वैकुण्ठमाप्नुयात्। उद्यापनमथो वक्ष्ये पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम्॥ ३०॥
पूर्वेद्युरेकभक्ताशी स्वपेद्विष्णुं स्मरन्हृदि। प्रातः सन्ध्यादि सम्पाद्य ब्राह्मणैः स्वस्ति वाचयेत्॥ ३१॥
आचार्यं वरयित्वा तु ऋत्विजश्चैव पूजयेत्। पलेन वा तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः॥ ३२॥
प्रतिमां कारयेत्पश्चाद्वित्तशाठ्यविवर्जितः। मण्डपे मण्डले देवान्ब्रह्माद्यान्स्थापयेद् बुधः॥ ३३॥
तत्र संस्थापयेत्कुम्भं ताम्रं मृण्मयमेव वा। तस्योपरि न्यसेत्पात्रं राजतं वैणवं तु वा॥ ३४॥
वाससाच्छाद्य गोविन्दं तत्र सम्पूजयेद् बुधः। उपचारैः षोडशभिर्मन्त्रैर्वैदिकतान्त्रिकैः॥ ३५॥
ततोऽर्घ्यं हरये दद्याद्देवकीसहिताय च। शङ्खे कृत्वा जलं शुद्धं सपुष्पफलचन्दनम्॥ ३६॥
जानुभ्यामवनीं गत्वा नारिकेलफलान्वितम्। जातः कंसवधार्थाय भूभारोत्तारणाय च॥ ३७॥
कौरवाणां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं देवक्या सहितो हरे॥ ३८॥
चन्द्रायार्घ्यं ततो दद्यात्पूर्वोक्तविधिना सुधीः॥ ३९॥

भगवतीका जन्म-महोत्सव करता है, वह यथोक्त फल प्राप्त करता है—उसे पुत्र, सन्तान, आरोग्य तथा अतुल सौभाग्य प्राप्त होता है। वह इस लोकमें धार्मिक बुद्धिवाला होकर मृत्युके अनन्तर वैकुण्ठलोकको जाता है॥ २८-२९ १/२ ॥ [हे सनत्कुमार!] अब इसके उद्यापनका वर्णन करूँगा। इसे किसी पुण्य दिनमें विधिपूर्वक करे। एक दिन पूर्व एक बार भोजन करे और [रातमें] हृदयमें विष्णुका स्मरण करते हुए शयन करे। इसके बाद प्रातःकाल सन्ध्या आदि कृत्य सम्पन्न करके ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराये और आचार्यका वरण करके ऋत्विजोंकी पूजा करे॥ ३०-३१ १/२ ॥ तदनन्तर बुद्धिमान्‌को चाहिये कि वित्तशाठ्यसे रहित होकर एक पल अथवा उसके आधे अथवा उसके आधे पल सुवर्णकी प्रतिमा बनवाये और इसके बाद रचित मण्डपमें मण्डलके भीतर ब्रह्मा आदि देवताओंकी स्थापना करे॥ ३२-३३ ॥

इसके बाद वहाँ ताँबे या मिट्टीका एक घट स्थापित करे और उसके ऊपर चाँदी या बाँसका एक पात्र रखे। उसमें गोविन्दकी प्रतिमा रखकर वस्त्रसे उसे आच्छादित करके बुद्धिमान् मनुष्य सोलहों उपचारोंसे वैदिक तथा तान्त्रिक मन्त्रोंके द्वारा विधिवत् पूजन करे॥ ३४-३५ ॥ तदनन्तर शंखमें पुष्प, फल, चन्दन तथा नारिकेलफलसहित शुद्ध जल लेकर पृथ्वीपर घुटने टेककर [यह कहते हुए] देवकीसहित भगवान् श्रीकृष्णको अर्घ्य प्रदान करे—कंसके वधके लिये, पृथ्वीका भार उतारनेके लिये, कौरवोंके विनाशके लिये तथा दैत्योंके संहारके लिये आपने अवतार लिया है, हे हरे! मेरे द्वारा प्रदत्त इस अर्घ्यको आप देवकीसहित ग्रहण करें॥ ३६—३८ ॥ इसके बाद बुद्धिमान्‌को चाहिये कि चन्द्रमाको पूर्वोक्त विधिसे अर्घ्य प्रदान करे। [पुनः भगवान्‌से

नमस्तुभ्यं जगन्नाथ देवकीतनय प्रभो। वसुदेवात्मजानन्त त्राहि मां भवसागरात्॥ ४०॥
इत्थं सम्प्रार्थ्य देवेशं रात्रौ जागरणं चरेत्। प्रत्यूषे विमले स्नात्वा पूजयित्वा जनार्दनम्॥ ४१॥
पायसेन तिलाज्यैश्च मूलमन्त्रेण भक्तितः। अष्टोत्तरशतं हुत्वा ततः पुरुषसूक्ततः॥ ४२॥
मन्त्रेणेदं विष्णुरिति जुहुयाद्वै घृताहुतीः। होमशेषं समाप्याथ पूर्णाहुतिपुरःसरम्॥ ४३॥
आचार्यं पूजयेत्पश्चाद्भूषणाच्छादनादिभिः। गामेकां कपिलां दद्याद् व्रतसम्पूर्णहेतवे॥ ४४॥
पयस्विनीं सुशीलां च सवत्सां सगुणां तथा। स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां कांस्यदोहनिकायुताम्॥ ४५॥
मुक्तापुच्छां ताम्रपृष्ठीं स्वर्णघण्टासमन्विताम्। वस्त्राच्छन्नां दक्षिणाढ्यामेवं सम्पूर्णतामियात्॥ ४६॥
कपिलाया अभावेऽपि गौरन्यापि प्रदीयते। ततः प्रदद्यादृत्विग्भ्यो दक्षिणां च यथार्हतः॥ ४७॥
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चादष्टौ तेभ्यश्च दक्षिणाम्। कलशान्जलसम्पूर्णान्दद्याच्चैव समाहितः॥ ४८॥
प्राप्यानुज्ञां तथा तेभ्यो भुञ्जीत सह बन्धुभिः। एवं कृते ब्रह्मपुत्र व्रतोद्यापनकर्मणि॥ ४९॥
निष्पापस्तत्क्षणादेव जायते विबुधोत्तमः। पुत्रपौत्रसमायुक्तो धनधान्यसमन्वितः।
भुक्त्वा भोगांश्चिरं कालमन्ते वैकुण्ठमाप्नुयात्॥ ५०॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये कृष्णजन्माष्टमीव्रतकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

प्रार्थना करे—] हे जगन्नाथ! हे देवकीपुत्र! हे प्रभो! हे वसुदेवपुत्र! हे अनन्त! आपको नमस्कार है, भवसागरसे मेरी रक्षा कीजिये ॥ ३९-४० ॥ इस प्रकार देवेश्वरसे प्रार्थना करके रात्रिमें जागरण करना चाहिये। पुनः प्रातःकाल शुद्ध जलमें स्नान करके जनार्दनका पूजनकर खीर, तिल और घृतसे मूलमन्त्रके द्वारा भक्तिपूर्वक एक सौ आठ आहुति देकर पुरुषसूक्तसे हवन करे और पुनः **'इदं विष्णुर्वि चक्रमे०'** इस मन्त्रसे केवल घृतकी आहुतियाँ देनी चाहिये। पुनः पूर्णाहुति देकर तथा होमशेष सम्पन्न करनेके अनन्तर आभूषण तथा वस्त्र आदिसे आचार्यकी पूजा करनी चाहिये ॥ ४१—४३ $^{१}/_{२}$ ॥ तत्पश्चात् व्रतकी सम्पूर्णताके लिये दूध देनेवाली, सरल स्वभाववाली, बछड़ेसे युक्त, उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न, सोनेकी सींग, चाँदीके खुर, कांस्यकी दोहनी, मोतीकी पूँछ, ताम्रकी पीठ तथा सोनेके घण्टेसे अलंकृत की हुई एक कपिला गौको वस्त्रसे आच्छादित करके दक्षिणासहित दान करना चाहिये। इस प्रकार [दान करनेसे] व्रत सम्पूर्णताको प्राप्त होता है। कपिला गौके अभावमें अन्य गौ भी दी जा सकती है ॥ ४४—४६ $^{१}/_{२}$ ॥ तदनन्तर ऋत्विजोंको यथायोग्य दक्षिणा प्रदान करे। इसके बाद आठ ब्राह्मणोंको भोजन कराये और उन्हें भी दक्षिणा दे; पुनः सावधान होकर जलसे परिपूर्ण कलश ब्राह्मणोंको प्रदान करे और उनसे आज्ञा लेकर अपने बन्धुओंके साथ भोजन करे ॥ ४७-४८ $^{१}/_{२}$ ॥ हे ब्रह्मपुत्र! इस प्रकार व्रतका उद्यापन-कृत्य करनेपर वह बुद्धिमान् मनुष्य उसी क्षण पापरहित हो जाता है और पुत्र-पौत्रसे युक्त तथा धन-धान्यसे सम्पन्न होकर बहुत समयतक सुखोंका उपभोगकर अन्तमें वैकुण्ठ प्राप्त करता है ॥ ४९-५० ॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'कृष्णजन्माष्टमीव्रतकथन' नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

पुरा कल्पे ब्रह्मपुत्र दैत्यभारप्रपीडिता। ब्रह्माणं शरणं प्राप पृथ्वी दीनातिविह्वला॥ १॥

वृत्तान्तं तन्मुखाच्छ्रुत्वा ब्रह्मा देवगणैः सह। क्षीरार्णवे हरिं गत्वा तुष्टाव स्तुतिभिर्बहु॥ २॥

प्रादुरासीत्ततो दिक्षु श्रुत्वा सर्वं विधेर्मुखात्। मा भैष्ट देवा देवक्या जठरे वसुदेवतः॥ ३॥

अवतीर्णो भविष्यामि हरिष्ये भूमिवेदनाम्। भवन्तु यादवा देवा इत्युक्त्वान्तर्दधे विभुः॥ ४॥

देवक्या जठरे जातो वसुदेवेन गोकुले। स्थापितः कंसभीतेन ववृधे तत्र कंसहा॥ ५॥

आगत्य मथुरां पश्चात्कंसं सगणमाहनत्। ततः सर्वे पौरजनाः प्रार्थयामासुरादरात्॥ ६॥

कृष्ण कृष्ण महायोगिन्भक्तानामभयप्रद। प्रणतान्पाहि नो देव शरणागतवत्सल॥ ७॥

किञ्चिद्विज्ञापये देव एतन्नो वक्तुमर्हसि। तव जन्मदिने कृत्यं न ज्ञातं केनचित् क्वचित्॥ ८॥

ज्ञात्वा च तद्दिने सर्वे कुर्मो वर्धापनोत्सवम्। तेषां दृष्ट्वा च तां भक्तिं स्वस्मिञ्छ्रद्धां च सौहृदम्॥ ९॥

कृत्यं जन्मदिने तेभ्यः कथयामास केशवः। *श्रुत्वा तेऽपि तथा चक्रुर्विधानात्तेन तद् व्रतम्॥ १०॥*

चौबीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रतके माहात्म्यमें राजा मितजित्‌का आख्यान

ईश्वर बोले—हे ब्रह्मपुत्र! पूर्वकल्पमें दैत्योंके भारसे अत्यन्त पीड़ित हुई पृथ्वी बहुत व्याकुल तथा दीन होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गयी॥ १॥ उसके मुखसे वृत्तान्त सुनकर ब्रह्माजीने देवताओंके साथ क्षीरसागरमें विष्णुके पास जाकर स्तुतियोंके द्वारा उनको प्रसन्न किया॥ २॥ तब नारायण श्रीहरि सभी दिशाओंमें प्रकट हुए और ब्रह्माजीके मुखसे सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर बोले—हे देवताओ! आपलोग मत डरें। मैं वसुदेवके द्वारा देवकीके गर्भसे अवतार लूँगा और पृथ्वीका सन्ताप दूर करूँगा। सभी देवतालोग यादवोंका रूप धारण करें—ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये॥ ३-४॥ [समय आनेपर] वे देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए। वसुदेवने कंसके भयसे उन्हें गोकुल पहुँचा दिया और कंसका विनाश करनेवाले उन कृष्णका वहींपर पालन-पोषण हुआ, बादमें मथुरामें आकर उन्होंने अनुचरोंसहित कंसका वध किया॥ ५१/२॥ तब सभी पुरवासियोंने आदरपूर्वक यह प्रार्थना की—हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महायोगिन्! हे भक्तोंको अभय देनेवाले! हे देव! हे शरणागतवत्सल! हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये। हे देव! हम आपसे कुछ निवेदन करते हैं, इसे आप कृपा करके हमलोगोंको बतायें। आपके जन्मदिनके कृत्यको कहीं कोई भी नहीं जानता, वह सब [आपसे] जान करके हम सभी लोग उस जन्मदिनपर वर्धापन नामक उत्सव मनायेंगे॥ ६—८१/२॥ अपने प्रति उनकी उस भक्ति, श्रद्धा तथा सौहार्दको देखकर श्रीकृष्णने अपने जन्मदिनके [सम्पूर्ण] कृत्यको उनसे कह दिया। उनसे सुनकर उन पुरवासियोंने भी विधानपूर्वक उस व्रतको किया, तब

वरांश्च बहुधा प्रादाद् भगवान्व्रतकारिणे। अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्॥ ११॥
अङ्गदेशोद्भवो राजा मितजिन्नाम नामतः। तस्य पुत्रो महासेनः सत्यजित्सत्पथे स्थितः॥ १२॥
पालयामास सर्वज्ञो विधिवद्रञ्जयन्प्रजाः। तस्यैवं वर्तमानस्य कदाचिद्दैवयोगतः॥ १३॥
पाखण्डैः सह संवासो बभूव बहुवासरम्। तत्संसर्गात्स नृपतिरधर्मे निरतोऽभवत्॥ १४॥
वेदशास्त्रपुराणानि निनिन्द बहुशो नृपः। वर्णाश्रमगते धर्मे विद्वेषं परमं गतः॥ १५॥
एवं बहुतिथे काले प्रयाते मुनिसत्तम। कालेन निधनं प्राप्तो यमदूतवशं गतः॥ १६॥
बध्वा पाशैर्नीयमानो यमदूतैर्यमान्तिकम्। पीडितस्ताड्यमानोऽसौ दुष्टसङ्गतियोगतः॥ १७॥
नरके पातितः प्राप यातना बहुवत्सरम्। भुक्त्वा पापस्य शेषेण पैशाचीं योनिमास्थितः॥ १८॥
क्षुधातृष्णासमाक्रान्तो भ्रमन्स मरुधन्वसु। कस्यचित्त्वथ वैश्यस्य देहमाविश्य संस्थितः॥ १९॥
सह तेनैव संयातो मथुरां पुण्यदां पुरीम्। समीपे रक्षकैस्तस्य तस्माद् गेहाद् बहिष्कृतः॥ २०॥
बभ्राम विपिने सोऽथ ऋषीणामाश्रमेषु च। कदाचिद्दैवयोगेन हरेर्जन्माष्टमीदिने॥ २१॥
क्रियमाणां महापूजां व्रतिभिर्मुनिभिर्द्विजैः। रात्रौ जागरणं चैव नामसङ्कीर्तनादिभिः॥ २२॥
ददर्श सर्वं विधिवच्छुश्राव च हरेः कथाम्। निष्पापस्तत्क्षणादेव शुद्धो *निर्मलमानसः॥ २३॥*

भगवान्ने प्रत्येक व्रतकर्ताको अनेक वर प्रदान किये॥ ९-१०१/२ ॥

इस प्रसंगमें एक प्राचीन इतिहास कहते हैं। अंगदेशमें उत्पन्न एक मितजित् नामक राजा था। उसका पुत्र महासेन सत्यवादी था तथा सन्मार्गपर स्थित रहनेवाला था। सब कुछ जाननेवाला वह अपनी प्रजाओंको आनन्दित करता हुआ उनका विधिवत् पालन करता था॥ ११-१२१/२ ॥ इस प्रकार रहते हुए उस राजाका अकस्मात् दैवयोगसे पाखण्डियोंके साथ बहुत कालपर्यन्त साहचर्य हो गया और उनके संसर्गसे वह राजा अधर्मपरायण हो गया। वह राजा वेद, शास्त्र और पुराणोंकी बहुत निन्दा करने लगा और वर्णाश्रमके धर्मके प्रति अत्यधिक द्वेषभावसे युक्त हो गया॥ १३—१५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार बहुत दिनोंके व्यतीत होनेके पश्चात् कालकी प्रेरणासे वह मृत्युको प्राप्त हुआ और यमदूतोंके अधीन हो गया। यमदूतोंके द्वारा पाशोंमें बाँधकर पीटते हुए यमराजके पास ले जाया जाता हुआ वह बहुत पीड़ित हुआ। दुष्टोंकी संगतिके कारण उसे नरकमें गिरा दिया गया और वहाँ बहुत समयतक उसने यातनाएँ प्राप्त कीं। यातनाओंको भोगकर अपने पापके शेष भागसे वह पिशाचयोनिको प्राप्त हुआ॥ १६—१८ ॥ भूख तथा प्याससे व्याकुल वह भ्रमण करता हुआ मारवाड़ देशमें आकर किसी वैश्यके देहमें प्रवेश करके स्थित हो गया। वह उसीके साथ पुण्यदायिनी मथुरापुरी चला गया; वहाँ समीपके रक्षकोंने उस [पिशाच]-को उसके गृहसे निकाल दिया। तब वह पिशाच वनमें तथा ऋषियोंके आश्रमोंमें भ्रमण करने लगा॥ १९-२०१/२ ॥ किसी समय दैवयोगसे श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीके दिन व्रत करनेवाले मुनियों तथा द्विजोंके द्वारा महापूजा तथा नामसंकीर्तन आदिके साथ रात्रि-जागरण किया जा रहा था; [वहाँ पहुँचकर] उसने विधिवत् सब कुछ देखा और श्रीहरिकी कथाका श्रवण किया। इससे वह उसी क्षण पापरहित, पवित्र और निर्मल मनवाला हो गया॥ २१—२३ ॥

प्रेतदेहं समुत्सृज्य विष्णुलोके विमानगः। यमदूतैः परित्यक्तो दिव्यभोगसमन्वितः॥ २४॥
विष्णुसान्निध्यमापन्नो व्रतस्यास्य प्रभावतः। नित्यमेतद् व्रतं चैव पुराणे सार्वलौकिकम्॥ २५॥
कथ्यते विधिवत्सम्यङ् मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः। सर्वकामिकमेवैतत्कृत्वा कामानवाप्नुयात्॥ २६॥
एवं यः कुरुते कृष्णजन्माष्टम्यां व्रतं शुभम्। भुक्त्वेह विविधान्भोगाञ्छुभान्कामानवाप्नुयात्॥ २७॥
तत्र देवविमानेन वर्षलक्षं विधेः सुत। भोगान्नानाविधान्भुक्त्वा पुण्यशेषादिहागतः॥ २८॥
सर्वकामसमृद्धस्तु सर्वाशुभविवर्जितः। कुले नृपतिवर्याणां जायते मदनोपमः॥ २९॥
यस्मिन्सदैव विषये लिखितं स्यात्परार्पितम्। कृष्णजन्मोपकरणं सर्वशोभासमन्वितम्॥ ३०॥
पूज्यते विश्वसृट् तत्र व्रतैरुत्सवसंयुतैः। परचक्रभयं तत्र न कदाचिद्भविष्यति॥ ३१॥
पर्जन्यः कामवर्षी स्यादीतिभ्यो न भयं क्वचित्। गृहे वा पूजयेद्यस्तु चरितं देवकीजनः॥ ३२॥
तत्र सर्वसमृद्धं स्यान्नोपसर्गाद्भयं भवेत्। संसर्गेणापि यो भक्त्या व्रतं पश्येदनाकुलः।
सोऽपि पापविनिर्मुक्तः प्रयाति हरिमन्दिरम्॥ ३३॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये जन्माष्टमीव्रतकथनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

वह यमदूतोंसे मुक्त हो गया और प्रेतदेह छोड़कर विमानमें आरूढ़ होकर दिव्य भोगोंसे युक्त हो विष्णुलोक पहुँच गया। इस प्रकार इस व्रतके प्रभावसे वह [पिशाचयोनिको प्राप्त राजा] विष्णुसामीप्यको प्राप्त हुआ॥ २४१/२ ॥ तत्त्वदर्शी मुनियोंने पुराणोंमें इस शाश्वत तथा सार्वलौकिक व्रतका पूर्ण रूपसे वर्णन किया है। सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले इस व्रतको करके मनुष्य सभी वांछित फल प्राप्त करता है॥ २५-२६॥ इस प्रकार जो कृष्णजन्माष्टमीके दिन इस शुभ व्रतको करता है, वह इस लोकमें अनेक प्रकारके सुखोंको भोगकर शुभ कामनाओंको प्राप्त करता है। हे ब्रह्मपुत्र! वहाँ वैकुण्ठमें एक लाख वर्षतक देवविमानमें आसीन होकर नानाविध सुखोंका उपभोग करके अवशिष्ट पुण्यके कारण इस लोकमें आकर सभी ऐश्वर्योंसे समृद्ध तथा सभी अशुभोंसे रहित होकर महाराजाओंके कुलमें उत्पन्न होता है; वह कामदेवके समान स्वरूपवाला होता है॥ २७—२९॥ जिस स्थानपर कृष्णजन्मोत्सवकी उत्सवविधि लिखी हो अथवा सभी सौन्दर्यसे युक्त श्रीकृष्ण जन्मसामग्री किसी दूसरेको अर्पित की गयी हो अथवा उत्सवपूर्वक अनुष्ठित व्रतोंसे विश्वस्रष्टा श्रीकृष्णकी पूजा की जाती हो, वहाँ शत्रुओंका भय कभी नहीं होता। उस स्थानपर मेघ व्यक्तिकी इच्छा करनेमात्रसे वृष्टि करता है और प्राकृतिक आपदाओंसे भी कोई भय नहीं होता। जिस घरमें कोई देवकी-पुत्र श्रीकृष्णके चरित्रकी पूजा करता है, वह घर सब प्रकारसे समृद्ध रहता है और वहाँ भूत-प्रेत आदि बाधाओंका भय नहीं होता है। जो मनुष्य किसीके साथमें भी शान्त होकर इस व्रतोत्सवका दर्शन कर लेता है, वह भी पापसे मुक्त होकर श्रीहरिके धाम जाता है॥ ३०—३३॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'जन्माष्टमीव्रतकथन' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

अथ वक्ष्ये मुनिश्रेष्ठ पिठोरीव्रतमुत्तमम्। अमायां श्रावणे मासि सर्वसम्पत्प्रदायकम्॥ १॥
सर्वाधिष्ठानमेतद्यद्गृहं पीठं ततो मतम्। आरस्तत्रसमूहः स्याद्वस्तुमात्रस्य पूजने॥ २॥
पिठोरमितिसंज्ञा च व्रतस्यातो मुनीश्वर। तत्प्रकारं च वक्ष्येऽहं सावधानमनाः शृणु॥ ३॥
कुड्ये विलिप्य ताम्रेण कृष्णेनाथ सितेन वा। धातुना तत्र ताम्रे तु पीतेन विलिखेत्सुधीः॥ ४॥
शुक्लेन वाथ कृष्णेन पूर्ववच्चैव संलिखेत्। सितपीतेन रक्तेन कृष्णेन हरितेन वा॥ ५॥
मध्ये शिवं शिवायुक्तं लिङ्गं वा मूर्तिमेव वा। विस्तीर्णं कुड्यमालिख्य सर्वसंसारमालिखेत्॥ ६॥
चतुःशालासमायुक्तं पाकागारं सुरालयम्। शय्यागृहं सप्तकोशांस्तथांतःस्त्रीनिकेतनम्॥ ७॥
प्रासादाट्टालिकाशोभं शालवृक्षसमुद्भवम्। इष्टकाभिश्च पाषाणैश्चूर्णनद्धैः सुशोभनम्॥ ८॥
द्वाराणि च विचित्राणि वलभीचेष्टिकास्तथा। अजा गावो महिष्यश्च अश्वा उष्ट्रा मतङ्गजाः॥ ९॥
गन्त्रीरथप्रभृतयः शकटानां प्रभेदकाः। स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च तरुण्यः पुरुषास्तथा॥ १०॥
पालक्यांदोलिका चैव मञ्चका बहुरूपकाः॥ ११॥

पचीसवाँ अध्याय

श्रावण-अमावास्याको किये जानेवाले पिठोरीव्रतका वर्णन

ईश्वर बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! अब मैं उत्तम पिठोरीव्रतका वर्णन करूँगा; सभी सम्पदाओंको प्रदान करनेवाला यह व्रत श्रावणमासकी अमावस्याको होता है॥ १॥ जो यह घर है वह सभी वस्तुमात्रका अधिष्ठान है, इसीलिये इसे पीठ कहा गया है और पूजनमें वस्तुमात्रके समूहको 'आर' कहते हैं, अतः हे मुनीश्वर! इस व्रतका नाम 'पिठोर' है। अब मैं उसकी विधि कहूँगा; सावधानचित्त होकर सुनिये॥ २-३॥ भीत (दीवार)-को ताम्रवर्ण, कृष्णवर्ण अथवा श्वेतवर्ण धातुसे पोत करके बुद्धिमान्‌को चाहिये कि यदि ताम्रवर्णसे पोता गया हो तो पीले रंगसे, कृष्णवर्णपर श्वेत रंगसे अथवा श्वेतवर्णपर कृष्णवर्णसे चित्र बनाये; अथवा श्वेतपीतसे, लालसे, काले या हरे वर्णसे चित्र बनाये॥ ४-५॥ मध्यमें पार्वतीसहित शिवकी मूर्ति अथवा शिवलिंगको बनाकर विस्तीर्ण भीतपर संसारकी अनेक चीजोंको चित्रित करे॥ ६॥ चतुःशालासहित पाकालय (रसोईघर); देवालय; शयनागार; सात खजाने; स्त्रियोंका अन्तःपुर जो महलों तथा अट्टालिकाओंसे सुशोभित तथा शालके वृक्षोंसे मण्डित हो, चूने आदिसे दृढ़तासे बँधे पाषाणों तथा ईंटोंसे सुशोभित हो और जिसमें विचित्र दरवाजे-छत तथा क्रीडास्थान हों; इन सबको चित्रित करे। बकरियाँ, गायें, भैंस, घोड़े, ऊँट, हाथी, चलनेवाला रथ, अनेक प्रकारकी सवारी गाड़ियाँ, स्त्रियाँ, बच्चे, वृद्ध, जवान, पुरुष, पालकी, झूला और अनेक प्रकारके मंच—इन सबका अंकन करे॥ ७—११॥

हैमानि रौप्याणि च ताम्रकाणि सैसानि लौहानि च मृन्मयानि।
रङ्गप्रसूतानि च पैत्तलानि पात्राणि नानाविधकारकाणि॥ १२॥
यावन्तः कशिपुभेदा उपबर्हणजातयः। मार्जाराः सारिकाश्चैव शुभा अन्येऽपि पक्षिणः॥ १३॥
पुरुषाणामलङ्काराः स्त्रीणां चैवाप्यनेकशः। यानि चास्तरणानीह तथा प्रावरणानि च॥ १४॥
यज्ञपात्राणि यावन्ति स्तम्भदण्डौ च मन्थने। रज्जुत्रयं च तद्धेतु दुग्धं च नवनीतकम्।
दधि तक्रं तथा मस्तु आज्यं तैलं तिलांस्तथा॥ १५॥
गोधूमशालितुवरीयवयावनालवार्तानलञ्च चणका मसुराः कुलित्थाः।
मुद्गप्रियङ्गुतिलकोद्रवकातसीतिश्यामाकमाषचवला इति धान्यवर्गाः॥ १६॥
दृषदं चोपलं चुल्लीं तथा सम्मार्जनीमपि। पुरुषाणां च वस्त्राणि नारीणां चैव सर्वशः॥ १७॥
वेणुजन्यं च शूर्पादि तथा तृणभवानि च। उलूखलं च मुसलं यन्त्रं दलयुगान्वितम्॥ १८॥
व्यजनं चामरं छत्रमुपानत्पादुकाद्वयम्। दास्यो दास्या भृत्यपोष्याः पशुभक्ष्यं तृणादिकम्॥ १९॥
धनुर्बाणशतघ्न्यश्च खड्गाः कुन्ताश्च शक्तयः। चर्मपाशाङ्कुशगदास्त्रिशूलं भिन्दिपालकाः॥ २०॥
तोमरो मुद्गरश्चैव परशुः पट्टिशस्तथा। भुशुण्डी परिघश्चैव चक्रयन्त्रादिकं च यत्॥ २१॥
जलयन्त्रं मषीपात्रं लेखनी पुस्तकादिकम्। फलजातं सर्वमपि छुरिका कर्तरी तथा॥ २२॥

सुवर्ण, चाँदी, ताम्र, सीसा, लोहा, मिट्टी तथा पीतलके और अन्य प्रकारके विभिन्न रंगोंवाले पात्रोंको लिखे॥ १२॥ शयनसम्बन्धी जितने भी साधन हैं—चारपाई, पलंग, विस्तर, तकिया आदि, बिल्ली, मैना अन्य और भी शुभ पक्षी, पुरुषों तथा स्त्रियोंके अनेक प्रकारके आभूषण, बिछाने तथा ओढ़नेके जो वस्त्र हैं, यज्ञके जितने भी पात्र होते हैं, मन्थनके लिये दो स्तम्भ एवं तीन रस्सियाँ, दूध, मक्खन, दही, तक्र, छाछ, घी, तेल, तिल—इन सभीको भीतपर लिखे॥ १३—१५॥ गेहूँ, चावल, अरहर, जौ, मक्का, वार्तानल (एक प्रकारका अन्न), चना, मसूर, कुलथी, मूँग, कांगनी, तिल, कोदों, कातसी नामक अन्न, साँवाँ, चावल, उड़द—ये सभी धान्यवर्ग भी अंकित करे। सिल, लोढ़ा, चूल्हा, झाड़ू, पुरुषों तथा स्त्रियोंके सभी वस्त्र, बाँस तथा तृणके बने हुए सूप आदि, ओखली, मूसल, [गेहूँ आदि पीसने तथा अरहर आदि दलनेके लिये] दो यन्त्र (चाकी तथा दरैता), पंखा, चँवर, छत्र, जूता, दो खड़ाऊँ, दासी, दास, नौकर, पोष्यवर्ग, तृण आदि पशुओंका आहार, धनुष, बाण, शतघ्नी (एक अस्त्रविशेष), खड्ग, भाला, शक्ति (बर्छी), ढाल, पाश, अंकुश, गदा, त्रिशूल, भिन्दिपाल, तोमर, मुद्गर, परशु (फरसा), पट्टिश, भुशुण्डि, परिघ, चक्रयन्त्र आदि, जलयन्त्र, दावात, लेखनी,

नानाविधानि पुष्पाणि बिल्वश्च तुलसी तथा। दीपिकाश्चैव दीपाश्च तथा तत्साधनानि च ॥ २३ ॥
शाकं नानाविधं भक्ष्यं पक्वान्नानां च या भिदः। लेख्यं तच्चैव सकलमनूक्तमपि चैव हि ॥ २४ ॥
कियल्लेख्यं जनेनात्र वक्तव्यं वा मया कियत्। एकैकस्य पदार्थस्य भेदाः शतसहस्रशः ॥ २५ ॥
उपचारैः षोडशभिः सर्वेषां पूजनं भवेत्। नानाविधश्च गन्धः स्यात्पुष्पधूपोऽपि चन्दनम् ॥ २६ ॥
ब्राह्मणान्भोजयेद् बालान्सुवासिन्यश्च पुष्कलान्। प्रार्थयेच्च शिवं साम्बं व्रतं सम्पूर्णमस्त्विति ॥ २७ ॥
शिव साम्ब दयासिन्धो गिरीश शशिशेखर। व्रतेनानेन सन्तुष्टः प्रयच्छास्मान्मनोरथान् ॥ २८ ॥
एवं कृत्वा पञ्चवर्षं तत उद्यापनं चरेत्। आज्येन बिल्वपत्रैश्च होमः स्याच्छिवमन्त्रतः ॥ २९ ॥
ग्रहहोमः पुरा कार्यः पूर्वेद्युरधिवासनम्। अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ॥ ३० ॥
होमसङ्ख्या भवेद्वत्स आचार्यं पूजयेत्ततः। भूयसीं दक्षिणां दद्यात्स्वयं भोजनमाचरेत् ॥ ३१ ॥
इष्टबन्धुजनैः सार्धं कुटुम्बसहितो बुधः। एवं कृते विधाने तु सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
यद्यदिष्टतमं लोके तत्सर्वं लभते नरः ॥ ३२ ॥
एतत्ते कथितं वत्स पिठोरीव्रतमुत्तमम्। व्रतेनानेन सदृशं सर्वकामसमृद्धिदम् ॥ ३३ ॥
शिवप्रीतिकरं चैव न भूतं न भविष्यति। भित्तौ यद्यल्लिखेद्वस्तु तत्तदाप्नोति निश्चितम् ॥ ३४ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये अमावास्यायां पिठोरीव्रतकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

पुस्तक, सभी प्रकारके फल, छुरी, कतरनी (कैंची), अनेक प्रकारके पुष्प, विल्वपत्र, तुलसीदल, मशाल-दीपक तथा दीवट आदि उनके साधन, अनेकविध खानेयोग्य शाक तथा पक्वान्नोंके जितने भी प्रकार हैं—उन सबको लिखे; साथ ही जो वस्तुएँ यहाँ नहीं कही गयी हैं, उन सबको भी [भीतपर] लिखे, मनुष्य यहाँ कितना लिख सकता है और मैं कितना कह सकता हूँ; क्योंकि एक-एक पदार्थके सैकड़ों तथा हजारों भेद हैं॥ १६—२५॥

सोलहों उपचारोंसे इन सभीका पूजन होना चाहिये। पूजनमें अनेक प्रकारके गन्ध-द्रव्य, पुष्प, धूप तथा चन्दन अर्पित करे। ब्राह्मणों, बालकों तथा सौभाग्यवती स्त्रियोंको भोजन कराये। तत्पश्चात् पार्वतीसहित शिवसे प्रार्थना करे—'मेरा व्रत सम्पूर्ण हो। हे साम्ब शिव! हे दयासागर! हे गिरीश! हे चन्द्रशेखर! इस व्रतसे प्रसन्न होकर आप हमारे मनोरथ पूर्ण करें'॥ २६—२८॥ इस प्रकार पाँच वर्षतक व्रत करके बादमें उद्यापन कर देना चाहिये; इसमें घृत तथा बिल्वपत्रोंसे शिव-मन्त्रके द्वारा होम होता है। एक दिन अधिवासन करके सर्वप्रथम ग्रहहोम करना चाहिये; आहुतिकी संख्या एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ होनी चाहिये। हे वत्स! तत्पश्चात् आचार्यकी पूजा करे और भूयसी दक्षिणा दे। इसके बाद बुद्धिमान्को चाहिये कि इष्ट बन्धुजनों तथा कुटुम्बके साथ स्वयं भोजन करे। इस प्रकार विधानके किये जानेपर मनुष्य सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है; इस लोकमें जो-जो वस्तुएँ उसे परम अभीष्ट होती हैं, उन सबको वह पा जाता है॥ २९—३२॥ हे वत्स! मैंने आपसे इस उत्तम पिठोरी व्रतका वर्णन कर दिया। इस व्रतके समान सभी मनोरथों तथा समृद्धियोंको प्रदान करनेवाला और शिवजीकी प्रसन्नता करनेवाला न कोई व्रत हुआ है और न तो होगा। मनुष्य [इस व्रतमें] भीतपर जो-जो वस्तु चित्रित करता है, उसको निश्चित रूपसे प्राप्त कर लेता है॥ ३३-३४॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'अमावस्यामें पिठोरीव्रतकथन' नामक पचीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

षड्विंशोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

यत्कर्तव्यं नभोमासि अमावास्यादिने भवेत्। प्रसङ्गतश्च यच्चान्यत्स्मृतं तदपि ते ब्रुवे॥ १॥
पुरा नानाविधैर्दैत्यैर्महाबलपराक्रमैः। जगद्विध्वंसकैर्दुष्टैर्देवतोच्छेदकारिभिः ॥ २॥
सङ्ग्रामा बहवो जाता आरुह्य वृषभं शुभम्। महासत्त्वो महावीर्यो न कदाचिज्जहौ च माम्॥ ३॥
अन्धकासुरयुद्धे तु तेन छिन्नतनुः कृतः। भिन्नत्वग्रुधिरस्रावी प्राणमात्रावशेषितः॥ ४॥
तथापि धैर्यमालम्ब्य यावद्धन्मि च तं खलम्। उवाह तावन्मां नन्दी तस्य तज्ज्ञातवाहनम्॥ ५॥
हत्वा तमन्धकं दैत्यं तुष्टोऽहं नन्दिनं तदा। कर्मणा ते प्रसन्नोऽस्मि वरं वरय सुव्रत॥ ६॥
व्रणास्ते प्रशमं यान्तु निरोगो बलवान्भव। पूर्वस्मादपि ते वीर्यं रूपं चापि विवर्धताम्॥ ७॥
यं यं वरं याचसे त्वं तं तं दास्याम्यसंशयम्॥ ८॥

नन्दिकेश्वर उवाच

ममास्ति याचनीयं न देवदेव महेश्वर। ममोपरि प्रसन्नोऽसि किं वैभवमतः परम्॥ ९॥
तथापि भगवन् याचे लोकोपकृतये शिव। *अद्यामा श्रावणस्यास्ति यस्यां तुष्टो भवान्मम॥ १०॥*

छब्बीसवाँ अध्याय

श्रावण-अमावास्याको किये जानेवाले वृषभपूजन और कुशग्रहणका विधान

ईश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] श्रावणमासमें अमावास्याके दिन जो करणीय है, उसको तथा प्रसंगवश जो कुछ अन्य बात मुझे याद आ गयी है, उसको भी मैं आपसे कहता हूँ॥ १॥ पूर्व कालमें अनेक प्रकारके महान् बल तथा पराक्रमवाले, जगत्का विध्वंस करनेवाले तथा देवताओंका उत्पीड़न करनेवाले दुष्ट दैत्योंके साथ मेरे अनेक युद्ध हुए। मैंने शुभ वृषभ (नन्दीश्वर)-पर आरूढ़ होकर संग्राम किये, किंतु महाशक्तिशाली तथा महापराक्रमी उस वृषभने मुझको नहीं छोड़ा॥ २-३॥ अन्धकासुरके साथ युद्धमें तो उसने नन्दीका शरीर विदीर्ण कर दिया, उसकी त्वचा कट गयी, शरीरसे रक्त बहने लगा और उसके प्राणमात्र बचे रह गये थे; फिर भी जबतक मैंने उस दुष्टका संहार नहीं किया, तबतक वह नन्दी धैर्य धारणकर मेरा वहन करता रहा। उसकी इस दशाको मैंने जान लिया था॥ ४-५॥ तत्पश्चात् उस अन्धकका वध करके मैंने प्रसन्न होकर नन्दीसे कहा—हे सुव्रत! मैं तुम्हारे इस कृत्यसे प्रसन्न हूँ; वर माँगो। तुम्हारे घाव ठीक हो जायँ, तुम बलवान् हो जाओ और तुम्हारा पराक्रम तथा रूप पहलेसे भी बढ़ जाय। [इसके अतिरिक्त] तुम जो-जो वर माँगोगे, उसे मैं तुम्हें अवश्य दूँगा॥ ६—८॥

नन्दिकेश्वर बोले—हे देवदेव! हे महेश्वर! मेरी कोई याचना नहीं है। आप मुझपर प्रसन्न हैं तो फिर इससे बढ़कर क्या वैभव हो सकता है। तथापि हे भगवन्! लोकोपकारके लिये मैं माँग रहा हूँ। हे शिव! आज श्रावणमासकी अमावास्या है, जिसमें आप मुझपर प्रसन्न हुए हैं॥ ९-१०॥

एतस्यां वृषभाः पूज्या गोभिर्युक्ताः सुमृन्मयाः। अद्यैवामादिने जन्म कामधेनूपमं भवेत्॥ ११॥
अतोऽप्यस्यां वरं देहि भवत्वेषेच्छितप्रदा। प्रत्यक्षं वृषभा गावः पूजनीयाश्च भक्तितः॥ १२॥
धातुभिर्गैरिकाद्यैश्च भूषणीयाः प्रयत्नतः। शृङ्गेषु स्वर्णरौप्यादिपट्टिकाबन्धशोभनम्॥ १३॥
कौशेयगुच्छान्महतः शृङ्गयोरपि बन्धयेत्। पृष्ठं नानाविधैर्वर्णैश्चित्रितेन सुवाससा॥ १४॥
आच्छादयेद् गले घण्टां बध्नीयाद्रम्यशब्दिताम्। दिनाष्टांशे बहिर्नीत्वा सायं ग्रामं प्रवेशयेत्॥ १५॥
पिण्याकं च नैवेद्यं अन्नं नानाविधं च यत्। अर्पयेत्तस्य भवतु गोधनं वृद्धिगं सदा॥ १६॥
गावो यत्र गृहे न स्युः श्मशानसदृशं च तत्। पञ्चामृतं पञ्चगव्यं न भवेद् गोरसं विना॥ १७॥
सम्मार्जनं पूततमं गोमयेन विना न हि। पिपीलिकादिजन्तूनामुपसर्गाश्च तत्र हि॥ १८॥
प्रोक्षणं यत्र गोमूत्रान्न भवेच्च सुरोत्तम। भोजनस्य महादेव को रसो गोरसं विना॥ १९॥
एतेऽन्येऽपि वरा देयाः प्रसन्नोऽसि यदि प्रभो। इति नन्दिवचः श्रुत्वा तुष्टोऽहमधिकं तदा॥ २०॥
सर्वमस्तु वृषश्रेष्ठ यथा ते याचितं तथा। अन्यच्च शृणु भो नन्दिन्नामास्य तु दिनस्य यत्॥ २१॥

इस तिथिमें गायोंसहित उत्तम मिट्टीसे निर्मित वृषभोंकी पूजा करनी चाहिये। आज अमावास्याके दिन जन्म लेना कामधेनु-तुल्य होता है। अतः आप इस तिथिमें वर प्रदान करें कि यह अमावास्या वांछित फल देनेवाली हो॥ १११/२॥ आजके दिन भक्तिपूर्वक प्रत्यक्ष वृषभों तथा गायोंकी पूजा करनी चाहिये। गैरिक (गेरू) आदि धातुओंसे प्रयत्नपूर्वक उन्हें भूषित करना चाहिये। उनकी सींगोंपर सोना, चाँदी आदिके पत्तर मढ़े और रेशमके बड़े-बड़े गुच्छोंको भी सींगोंपर बाँधे। अनेक प्रकारके वर्णोंसे चित्रित सुन्दर वस्त्रसे उनकी पीठको ढक दे और गलेमें मनोहर शब्द करनेवाला घण्टा बाँध दे॥ १२—१४१/२॥ सूर्योदयसे लगभग चार घड़ी बीतनेपर गायोंको ग्रामसे बाहर ले जाकर पुनः सायंवेलामें ग्राममें प्रवेश कराये। आहारके रूपमें [सरसों, तिलकी] खली आदि तथा अनेक प्रकारका अन्न इस दिन अर्पित करे। जो इस दिन ऐसा करता है, उसका गोधन सदा बढ़ता रहता है॥ १५-१६॥ जिस घरमें गायें न हों, वह श्मशानके समान होता है। पंचामृत तथा पंचगव्य दूधके बिना नहीं बनते हैं॥ १७॥ गोमय (गोबर)-से लेपन किये बिना घर अति पवित्र नहीं होता। हे सुरोत्तम! जहाँ गोमूत्रसे छिड़काव नहीं होता, वहाँ चींटी आदि जन्तुओंका उपद्रव विद्यमान रहता है। हे महादेव! दूधके बिना भोजनका रस ही क्या? हे प्रभो! यदि आप [मेरे ऊपर] प्रसन्न हैं तो इन वरोंको तथा अन्य भी वरोंको मुझे प्रदान कीजिये॥ १८-१९१/२॥ [हे सनत्कुमार!] तब नन्दीका यह वचन सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। [मैंने कहा—] हे वृषश्रेष्ठ! जो तुमने माँगा है, वह सब हो। हे नन्दिन्! इस दिनका जो अन्य नाम है, उसे भी सुनो॥ २०-२१॥

न वाह्यते यो वृषभः केनचित्कर्मणि क्वचित्। तृणमश्नन्पिबन्नीरं तूष्णीं यो वर्धते वृषः॥ २२॥
महावीरश्च बलवान्पोल इत्युच्यते हि सः। तन्नाम्नेदं दिनं नन्दिन्पोला इति भविष्यति॥ २३॥
तत्रोत्सवो महान् कार्य इष्टबन्धुजनैः सह। इति दत्ता मया वत्स वराः श्रेष्ठा हि तद्दिने।
तेन श्रेष्ठं दिनं चैतत्पोलासंज्ञं मतं जनैः॥ २४॥
अत्रोत्सवो महान् कार्यो वृषाणां सर्वकामदः। अतः परं प्रवक्ष्यामि अस्यामेव कुशग्रहम्॥ २५॥
नभोमासस्य दर्शे तु शुचिर्दर्भान्समाहरेत्। अयातयामास्ते दर्भा विनियोज्याः पुनः पुनः॥ २६॥
कुशाः काशा यवा दूर्वा उशीराश्च सकूदकाः। गोधूमा व्रीहयो मौञ्ज्या दश दर्भाः सबल्वजाः॥ २७॥
विरिञ्चिना सहोत्पन्न परमेष्ठीनिसर्गज। नुद पापानि सर्वाणि दर्भ स्वस्तिकरो भव॥ २८॥
एवं सन्मन्त्रमुच्चार्य ततः पूर्वोत्तरामुखः। हुंफट्कारेण मन्त्रेण सकृच्छित्वा समुद्धरेत्॥ २९॥
अच्छिन्नाग्रा अशुष्काग्राः पैत्र्ये तु हरिताः स्मृताः। अमूला देवकार्येषु प्रयोज्याश्च जपादिषु॥ ३०॥
सप्तपत्राः कुशाः शस्ता दैवे पित्र्ये च कर्मणि। अनन्तर्गर्भिणौ साग्रौ प्रादेशौ च पवित्रके॥ ३१॥

जो वृषभ किसीके द्वारा कहीं भी किसी कार्यमें प्रयुक्त नहीं किया जाता और तृण खाता हुआ तथा जल पीता हुआ जो वृषभ शान्तिपूर्वक विचरण करता है और महान् वीर तथा बलवान् होता है, उसे 'पोल' कहा जाता है; अतः हे नन्दिन्! उसीके नामसे यह दिन 'पोला'—इस नामवाला होगा, उस दिन अपने इष्ट बन्धुजनोंके साथ महान् उत्सव करना चाहिये॥ २२-२३१/२ ॥ हे वत्स! मैंने उस दिन ये श्रेष्ठ वर प्रदान किये थे, अतः लोगोंके द्वारा इस श्रेष्ठ दिनको 'पोला' नामवाला कहा गया है। इस दिन सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला वृषभोंका महान् उत्सव करना चाहिये। इसके अनन्तर अब मैं इसी तिथिमें किये जानेवाले कुशग्रहणका वर्णन करूँगा॥ २४-२५ ॥ श्रावणमासकी अमावास्याके दिन पवित्र होकर कुशोंको उखाड़ लाये। वे कुश सदा ताजे होते हैं, उन्हें बार-बार प्रयोगमें लाना चाहिये। कुश, काश, यव, दूर्वा, उशीर, सकूदक, गोधूम (गेहूँ), व्रीहि, मौंजी (मूंज) और बल्वज—ये दस दर्भ होते हैं॥ २६-२७ ॥ 'ब्रह्माजीके साथ उत्पन्न होनेवाले तथा ब्रह्माजीकी इच्छासे प्रकट होनेवाले हे दर्भ! [मेरे] सभी पापोंका नाश कीजिये और कल्याणकारक होइये'—इस उत्तम मन्त्रका उच्चारण करनेके अनन्तर ईशान दिशामें मुख करके '**हुं फट्**' मन्त्रके द्वारा एक ही बारमें कुशको उखाड़ ले॥ २८-२९ ॥ जिनके अग्र भाग टूटे हुए न हों तथा शुष्क न हों, वे हरित वर्णके कुश श्राद्धकर्मके योग्य कहे गये हैं और जड़रहित कुश देवकार्यों तथा जप आदिमें प्रयोगके योग्य होते हैं॥ ३० ॥ सात पत्तोंवाले कुश देवकार्य तथा पितृकार्यके लिये श्रेष्ठ होते हैं। मूलरहित तथा गर्भयुक्त, अग्रभागवाले तथा प्रादेश (दस अंगुल) प्रमाणवाले दो दर्भ पवित्रकके लिये उपयुक्त होते हैं॥ ३१ ॥

चतुर्भिर्दर्भपिञ्जूलैः पवित्रं ब्राह्मणस्य तु। एकैकं न्यूनमुद्दिष्टं वर्णे वर्णे यथाक्रमम्॥ ३२॥
सर्वेषां वा भवेद् द्वाभ्यां पवित्रं ग्रन्थिशोभितम्। इदं तु धारणार्थं स्यात्पवित्रं कथितं तव॥ ३३॥
दर्भद्वयं तु सर्वेषां भवेदुत्पवनाय च। पञ्चाशता भवेद् ब्रह्मा तदर्धेन तु विष्टरः॥ ३४॥
निष्कासनीयं नो हस्तादाचमे तु पवित्रकम्। विकिरेऽग्नौ कृते चैव कृते पाद्ये तु सन्त्यजेत्॥ ३५॥
नास्ति दर्भसमं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्। दर्भाधीनानि कर्माणि दैवपित्र्याणि सर्वशः॥ ३६॥
तादृग्विधानां दर्भाणाममायां ग्रहणं भवेत्। अयातयामता चैव किं वर्ण्यामा नभस्यतः॥ ३७॥
इत्येतत्कथितं कृत्यममायां श्रावणे तु यत्। अन्यच्च श्रावणे कृत्यं तच्चापि कथयामि ते॥ ३८॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये अमायां वृषभपूजनं कुशग्रहणं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

ब्राह्मणके लिये चार कुशपत्रोंका पवित्रक बताया गया है और अन्य वर्णोंके लिये क्रमशः तीन, दो और एक दर्भका पवित्रक कहा गया है। अथवा सभी वर्णोंके लिये दो दर्भोंका ग्रन्थियुक्त पवित्रक होता है। यह पवित्रक धारण करनेके लिये होता है, इसे मैंने आपको बता दिया॥ ३२-३३॥ उत्पवनहेतु सभीके लिये दो दर्भ उपयुक्त होते हैं। पचास दर्भोंसे ब्रह्मा और पच्चीस दर्भोंसे विष्टर बनाना चाहिये। आचमनके समय हाथसे पवित्रकको नहीं निकालना चाहिये। विकिरके लिये पिण्ड देने तथा अग्नौकरण करनेके अनन्तर और पाद्य देनेके पश्चात् पवित्रकका त्याग कर देना चाहिये॥ ३४-३५॥ दर्भके समान पुण्यप्रद, पवित्र और पापनाशक कुछ भी नहीं है। देवकर्म तथा पितृकर्म—ये सब दर्भके अधीन हैं। उस प्रकारके दर्भोंको श्रावणमासकी अमावास्याके दिन उखाड़ना चाहिये, इससे इनकी पवित्रता बनी रहती है। श्रावणमासकी अमावास्याका वर्णन क्या किया जाय॥ ३६-३७॥ [हे सनत्कुमार!] श्रावणमासकी अमावास्याके दिन जो कृत्य होता है, उसे मैंने कह दिया। श्रावणमासमें और भी जो करणीय है, उसे भी मैं आपसे कहता हूँ॥ ३८॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'अमावास्याके दिन वृषभपूजन-कुशग्रहण' नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

अथातः श्रावणे कर्कसिंहसङ्क्रान्तिसम्भवः। प्राप्यते तत्र यत्कृत्यं तच्चापि कथयामि ते॥ १॥
सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः। तासु स्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः॥ २॥
अगस्त्योदयपर्यन्तं केचिदूचुर्महर्षयः। यावन्नोदेति भगवान्दक्षिणाशाविभूषणः॥ ३॥
तावद्रजोवहा नद्य अल्पतोयाः प्रकीर्तिताः। याः शोषमुपगच्छन्ति ग्रीष्मे तु सरितो भुवि॥ ४॥
तासु प्रावृषि न स्नायादपूर्णे दशवासरे। धनुःसहस्राण्यष्टौ च गतिर्यासां स्वतो नहि॥ ५॥
न ता नदीशब्दवाच्या गर्तास्ते परिकीर्तिताः। प्रारम्भे कर्कसङ्क्रान्तेर्महानद्यो रजस्वलाः॥ ६॥
त्रिदिनं तु चतुर्थेऽह्नि शुद्धाः स्युर्योषितो यथा। महानदीः प्रवक्ष्यामि शृणुष्वावहितो मुने॥ ७॥
गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च वेणिका। तापी पयोष्णी विन्ध्यस्य दक्षिणे षट् प्रकीर्तिताः॥ ८॥
भागीरथी नर्मदा च यमुना च सरस्वती। विशोका च वितस्ता च विन्ध्यस्योत्तरतोऽपि षट्॥ ९॥
द्वादशैता महानद्यो देवर्षिक्षेत्रसम्भवाः। महानद्यो देविका च कावेरी वञ्जरा तथा॥ १०॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

कर्कसंक्रान्ति और सिंहसंक्रान्तिपर किये जानेवाले कृत्य

ईश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] श्रावणमासमें कर्कसंक्रान्ति तथा सिंहसंक्रान्ति आनेपर उस समय जो कृत्य होता है, उसे भी अब मैं आपसे कहता हूँ॥ १॥ कर्कसंक्रान्ति तथा सिंहसंक्रान्तिके बीचकी अवधिमें सभी नदियाँ रजस्वला रहती हैं, अतः समुद्रगामिनी नदियोंको छोड़कर उन सभीमें स्नान नहीं करना चाहिये॥ २॥ कुछ ऋषियोंने यह कहा है कि अगस्त्यके उदयपर्यन्त ही वे रजस्वला रहती हैं। जबतक दक्षिण दिशाके आभूषणस्वरूप अगस्त्य उदित नहीं होते तभीतक वे नदियाँ रजस्वला रहती हैं और अल्प जलवाली कही जाती हैं। जो नदियाँ पृथ्वीपर ग्रीष्म-ऋतुमें सूख जाती हैं, वर्षाकालमें जबतक दस दिन न बीत जायँ तबतक उनमें स्नान नहीं करना चाहिये। जिन नदियोंकी गति स्वतः आठ हजार धनुष (बत्तीस हजार हाथ)-तक नहीं हो जाती, तबतक वे 'नदी' शब्दकी संज्ञावाली नहीं होतीं, अपितु वे गर्त (गड्ढा) कही जाती हैं॥ ३—५½॥ कर्कसंक्रान्तिके प्रारम्भमें तीन दिनतक महानदियाँ रजस्वला रहती हैं, वे स्त्रियोंकी भाँति चौथे दिन शुद्ध हो जाती हैं। हे मुने! अब मैं महानदियोंको बताऊँगा, आप सावधान होकर सुनिये॥ ६-७॥ गोदावरी, भीमरथी, तुंगभद्रा, वेणिका, तापी, पयोष्णी—ये छः नदियाँ विन्ध्यके दक्षिणमें कही गयी हैं। भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका, वितस्ता—ये छः नदियाँ विन्ध्यके उत्तरमें भी हैं। ये बारह महानदियाँ देवर्षिक्षेत्रसे उत्पन्न हुई हैं। हे मुने! देविका, कावेरी, वंजरा,

कृष्णा रजस्वला एताः कर्कटादावहर्मुने। कर्कटादौ रजोदुष्टा गौतमी वासरत्रयम्॥ ११॥
चन्द्रभागा सती सिन्धुः शरयूर्नर्मदा तथा। गङ्गा च यमुना चैव प्लक्षजाला सरस्वती॥ १२॥
रजसा नाभिभूयन्ते ये चान्ये नदसंज्ञिताः। शोणः सिन्धुर्हिरण्याख्यः कोकिलाहितघर्घराः॥ १३॥
शतद्रुश्च नदाः सप्त पावनाः परिकीर्तिताः। गङ्गा धर्मद्रवा पुण्या यमुना च सरस्वती॥ १४॥
अन्तर्गता रजोदोषाः सर्वावस्थासु चामलाः। अपामयं रजोदोषो न भवेत्तीरवासिनाम्॥ १५॥
जलं रजोदुष्टमपि गङ्गातोयेन पावनम्। अजा गावो महिष्यश्च योषितश्च प्रसूतिकाः॥ १६॥
भूमेर्नवोदकं चैव दशरात्रेण शुध्यति। अभावे कूपवापीनामन्यासां च पयोऽमृतम्॥ १७॥
रजोदुष्टेऽपि वयसि ग्रामभोगो न दुष्यति। अन्येन चोद्धृते नीरे रजोदोषो न विद्यते॥ १८॥
उपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रातःस्नाने विपत्सु च। चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते॥ १९॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि सिंहे गोप्रसवो यदि। भानौ सिंहगते चैव यस्य गौः सम्प्रसूयते॥ २०॥
मरणं तस्य निर्दिष्टं षड्भिर्मासैर्न संशयः। तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि येन सम्पाद्यते सुखम्॥ २१॥
प्रसूतां तत्क्षणादेव तां गां विप्राय दापयेत्। ततो होमं प्रकुर्वीत घृताक्तै राजसर्षपैः॥ २२॥

कृष्णा—ये महानदियाँ कर्कसंक्रमणके प्रारम्भमें एक दिनतक ही रजस्वला रहती हैं, गौतमी नामक नदी कर्कसंक्रमण होनेपर तीन दिनोंतक रजस्वला रहती है॥ ८—११॥

चन्द्रभागा, सती, सिन्धु, सरयू, नर्मदा, गंगा, यमुना, प्लक्षजाला, सरस्वती—ये जो नदसंज्ञावाली नदियाँ हैं, वे रजोदोषसे युक्त नहीं होती हैं। शोण, सिन्धु, हिरण्य, कोकिल, आहित, घर्घर और शतद्रु—ये सात नद पवित्र कहे गये हैं॥ १२-१३१/२॥ धर्मद्रवमयी गंगा, पवित्र यमुना तथा सरस्वती—ये नदियाँ गुप्त रजोदोषवाली होती हैं, अतः ये सभी अवस्थाओंमें निर्मल रहती हैं। जलका यह रजोदोष नदीतटपर रहनेवालोंको नहीं होता है। रजोधर्मसे दूषित जल भी गंगाजलसे पवित्र हो जाता है॥ १४-१५१/२॥ प्रसवावस्थावाली बकरियाँ, गायें, भैंसें तथा स्त्रियाँ और भूमिपर वृष्टिके प्रारम्भका जल—ये दस रात व्यतीत होनेपर शुद्ध हो जाते हैं। कुएँ तथा बावलीके अभावमें अन्य नदियोंका जल अमृत होता है। रजोधर्मसे दूषित कालमें भी ग्रामभोगनदी दोषमय नहीं होती है। दूसरेके द्वारा भरवाये गये जलमें रजोदोष नहीं होता है॥ १६—१८॥ उपाकर्ममें, उत्सर्ग कृत्यमें, प्रातःकालके स्नानमें, विपत्तियोंमें, सूर्यग्रहणकालमें तथा चन्द्रग्रहणकालमें रजोदोष नहीं होता है॥ १९॥ [हे सनत्कुमार!] अब मैं सिंहसंक्रान्तिमें गोप्रसवके विषयमें कहूँगा। सिंह राशिमें सूर्यके संक्रमण होनेपर यदि गोप्रसव होता है तो जिसकी गौ प्रसव करती है, उसकी मृत्यु छः महीनोंमें अवश्य हो जाती है; इसमें सन्देह नहीं है। मैं उसकी शान्ति बताऊँगा, जिससे सुख प्राप्त होता है॥ २०-२१॥ प्रसव करनेवाली उस गायको उसी क्षण ब्राह्मणको

आहुतीनां घृताक्तानां तिलानां जुहुयात्ततः। सहस्त्रेण व्याहृतिभिरष्टसङ्ख्याधिकेन च॥ २३॥
सोपवासः प्रयत्नेन दद्याद् विप्राय दक्षिणाम्। सिंहराशौ गते सूर्ये गोष्ठसूतिर्यदा भवेत्॥ २४॥
तदानिष्टं भवेत्किञ्चित्तच्छान्त्यै शान्तिकं चरेत्। अस्य वामेति सूक्तेन तद्विष्णोरिति मन्त्रतः॥ २५॥
जुहुयाच्च तिलाज्येन शतमष्टोत्तराधिकम्। मृत्युञ्जयविधानेन जुहुयाच्च तथायुतम्॥ २६॥
श्रीसूक्तेन ततः स्नायाच्छान्तिसूक्तेन वा पुनः। एवं कृतविधानेन न भयं जायते क्वचित्॥ २७॥
एवमेव नभोमासि सूयेत वडवा दिने। अत्रापि शान्तिकं कार्यं तदा दोषो विनश्यति॥ २८॥
कर्के सिंहे नभोदानमथ वक्ष्ये शुभप्रदम्। घृतधेनुप्रदानं च कर्कटस्थे दिवाकरे॥ २९॥
ससुवर्णं छत्रदानं शस्तं सिंहे निगद्यते। श्रावणे वस्त्रदानस्य कीर्तितं सुमहत्फलम्॥ ३०॥
घृतं च घृतकुम्भाश्च घृतधेनुः फलानि च। श्रावणे श्रीधरप्रीत्यै दातव्यानि विपश्चिते॥ ३१॥
अन्यान्यपि च दानानि मत्तोषाय कृतानि च। अक्षय्यफलदानि स्युरन्यमासेभ्य एव हि॥ ३२॥
द्वादशस्वपि मासेषु नास्ति चैतादृशः प्रियः। आगच्छति नभोमासि प्रतीक्षां च करोम्यहम्॥ ३३॥

दे देना चाहिये। तत्पश्चात् घृतमिश्रित काली सरसोंसे होम करना चाहिये। इसके बाद व्याहृतियोंसे घृतमें सिक्त तिलोंकी एक हजार आठ आहुतियाँ डालनी चाहिये। उपवास रखकर विप्रको प्रयत्नपूर्वक दक्षिणा देनी चाहिये॥ २२-२३$^{1}/_{2}$॥

सिंहराशिमें सूर्यके प्रवेश करनेपर जब गोष्ठमें गोप्रसव होता है, तब कोई अनिष्ट अवश्य होता है, अतः उसकी शान्तिके लिये शान्तिकर्म (अनुष्ठान) करना चाहिये। **'अस्य वाम०'** इस सूक्तसे तथा **'तद्विष्णोः'** इस मन्त्रसे तिल तथा घृतसे एक सौ आठ आहुतियाँ देनी चाहिये और मृत्युंजय मन्त्रसे दस हजार आहुतियाँ डालनी चाहिये। तत्पश्चात् श्रीसूक्तसे अथवा शान्तिसूक्तसे स्नान करना चाहिये। इस प्रकार किये गये विधानसे कभी भी भय नहीं होता है॥ २४—२७॥ इसी प्रकार यदि श्रावणमासमें घोड़ी दिनमें प्रसव करे तो इसके लिये भी शान्ति-कर्म करना चाहिये, उसके बाद दोष नष्ट हो जाता है॥ २८॥ [हे सनत्कुमार!] अब मैं कर्कसंक्रान्तिमें, सिंहसंक्रान्तिमें तथा श्रावणमासमें [किये जानेवाले] शुभप्रद दानका वर्णन करूँगा। सूर्यके कर्कराशिमें स्थित होनेपर घृतधेनुका दान और सिंहराशिमें स्थित होनेपर सुवर्णसहित छत्रका दान श्रेष्ठ कहा जाता है तथा श्रावणमासमें वस्त्रका दान अति श्रेष्ठ फल देनेवाला कहा गया है॥ २९-३०॥ भगवान् श्रीधरकी प्रसन्नताके लिये श्रावणमासमें घृत, घृतकुम्भ, घृतधेनु तथा फल विद्वान् ब्राह्मणको प्रदान करने चाहिये। मेरी प्रसन्नताके लिये श्रावणमासमें किये गये दान अन्य मासोंके दानोंकी अपेक्षा अधिक अक्षय फल देनेवाले होते हैं॥ ३१-३२॥ बारहों महीनोंमें इसके समान अन्य मास मुझको प्रिय नहीं हैं। जब श्रावणमास आनेको होता है, तब मैं उसकी प्रतीक्षा करता हूँ।

करिष्यते व्रतं योऽत्र स मे प्रियतरो भवेत्। ब्राह्मणानां विधू राजा सूर्यः प्रत्यक्षदैवतम्॥ ३४॥
ममाक्षिणी तयोरत्र सङ्क्रान्ती भवतो यतः। कर्कसंज्ञा सिंहसंज्ञा माहात्म्यं किमतः परम्॥ ३५॥
प्रातःस्नानं मासमात्रमत्र यः कुरुते नरः। द्वादशस्वपि मासेषु प्रातःस्नानफलं लभेत्॥ ३६॥
न करोति नभोमासि प्रातःस्नानं यदा नरः। द्वादशस्वपि मासेषु कृतं निष्फलतामियात्॥ ३७॥
महादेव दयासिन्धो श्रावणे मास्युषस्यहम्। प्रातःस्नानं करिष्यामि निर्विघ्नं कुरु मे प्रभो॥ ३८॥
स्नात्वा शिवं समभ्यर्च्य नभोमाहात्म्यसत्कथाम्। शृणुयात्प्रत्यहं भक्त्या एवं मासं नयेत्सुधीः॥ ३९॥
अन्यत्र मासः कृष्णादिरत्र शुक्लादिरिष्यते। नभोमासकथायास्तु माहात्म्यं केन वर्ण्यते॥ ४०॥
सप्तधापि च या वन्ध्या सा पुत्रं लभते शुभम्। विद्यार्थी लभते विद्यां बलार्थी लभते बलम्॥ ४१॥
रोगी चारोग्यमाप्नोति बद्धो मुच्येत बन्धनात्। धनं धनार्थी लभते धर्मे चैव रतिर्भवेत्॥ ४२॥
भार्यार्थी लभते भार्यां किं बहूक्तेन मानद। यद्यत्कामयते तत्तत्प्राप्नोत्यत्र न संशयः॥ ४३॥
अन्ते मम पुरं प्राप्य मोदते मम सन्निधौ। पूजयेद् वाचकं सम्यग्वासोऽलङ्करणादिभिः॥ ४४॥

जो मनुष्य इस मासमें व्रत करता है, वह मुझको परम प्रिय होता है। क्योंकि चन्द्रमा ब्राह्मणोंके राजा हैं, सूर्य सभीके प्रत्यक्ष देवता हैं—ये दोनों मेरे नेत्र हैं, कर्क तथा सिंहकी दोनों संक्रान्तियाँ जिस मासमें पड़ें, उससे बढ़कर किसका माहात्म्य होगा॥ ३३—३५॥ जो मनुष्य इस श्रावणमासमें पूरे महीने प्रातःकाल स्नान करता है, वह बारहों महीनेके प्रातःस्नानका फल प्राप्त करता है॥ ३६॥ यदि मनुष्य श्रावणमासमें प्रातःस्नान नहीं करता है, तो बारहों मासमें उसका किया हुआ स्नान निष्फल हो जाता है॥ ३७॥

हे महादेव! हे दयासिन्धो! मैं श्रावणमासमें उषाकालमें प्रातःस्नान करूँगा; हे प्रभो! मुझको विघ्नरहित कीजिये॥ ३८॥ प्रातःस्नान करके शिवजीकी विधिवत् पूजा करके श्रावणमासकी सत्कथाका प्रतिदिन भक्तिपूर्वक श्रवण करना चाहिये। बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि इसी प्रकार इस मासको व्यतीत करे॥ ३९॥ अन्य मासोंकी प्रवृत्ति पूर्णमासीकी प्रतिपदासे होती है, किंतु इस मासकी प्रवृत्ति अमावास्याकी प्रतिपदासे होती है। श्रावणमासकी कथाके माहात्म्यका वर्णन भला कौन कर सकता है!॥ ४०॥ [इस मासमें व्रत, स्नान, कथा-श्रवण आदिसे] जो सात प्रकारकी वन्ध्या स्त्री होती है, वह भी सुन्दर पुत्र प्राप्त करती है, विद्या चाहनेवाला विद्या प्राप्त करता है, बलकी कामना करनेवालेको बल मिल जाता है, रोगी आरोग्य प्राप्त कर लेता है, बन्धनमें पड़ा हुआ व्यक्ति बन्धनसे छूट जाता है, धनका अभिलाषी धनकी प्राप्ति कर लेता है, धर्मके प्रति मनुष्यका अनुराग हो जाता है और भार्याकी कामना करनेवाला [उत्तम] भार्याको प्राप्त करता है। हे मानद! अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन, मनुष्य जो-जो चाहता है, उस-उसको प्राप्त कर लेता है, इसमें सन्देह नहीं है और मृत्युके अनन्तर मेरे लोकको प्राप्त होकर मेरे सान्निध्यमें आनन्द

वाचकस्तोषितो येन तेनाहं तोषितः शिवः। श्रुत्वा श्रावणमाहात्म्यं वाचकं यो न पूजयेत्॥ ४५॥
छिनत्ति रविजस्तस्य कर्णौ स बधिरो भवेत्। तस्माच्छक्त्या प्रकुर्वीत वाचकस्य सुपूजनम्॥ ४६॥
इदं श्रावणमाहात्म्यं यः पठेच्छृणुयादपि। श्रावयेद्वापि सद्भक्त्या तस्य पुण्यमनन्तकम्॥ ४७॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये नदीरजोदोषसिंहगोप्रसवसिंहकर्कटश्रावणस्तुतिवाचक-पूजाकथनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

प्राप्त करता है ॥ ४१—४३½ ॥ [कथाश्रवणके अनन्तर] वस्त्र, आभूषण आदिसे कथावाचककी विधिवत् पूजा करनी चाहिये। जिसने वाचकको सन्तुष्ट कर दिया, उसने मानो मुझ शिवको सन्तुष्ट कर दिया। श्रावणमासका माहात्म्य सुनकर जो वाचककी पूजा नहीं करता, यमराज उसके कानोंको छेदते हैं और वह [दूसरे जन्ममें] बहरा होता है, अतः सामर्थ्यके अनुसार वाचककी पूजा करनी चाहिये ॥ ४४—४६ ॥ जो [मनुष्य] उत्तम भक्तिके साथ इस श्रावणमासमाहात्म्यका पाठ करता है अथवा श्रवण करता है अथवा [दूसरोंको] सुनाता है, उसको अनन्त पुण्य होता है ॥ ४७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'नदीरजोदोष-सिंह-गोप्रसव-सिंहकर्कट-श्रावणस्तुतिवाचकपूजाकथन' नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्याय:

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि अगस्त्यार्घ्यविधिं परम्। येन चीर्णेन वैधात्र सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ १॥
कालस्य नियमो ज्ञेय अगस्त्यस्योदयात्पुरा। समरात्राद्धवेद्यावदुदयः सप्तरात्रकम्॥ २॥
दद्यादर्घ्यं प्रत्यहं च तद्विधिं ते वदाम्यहम्। प्रातः शुक्लतिलैः स्नात्वा शुक्लमाल्याम्बरो गृही॥ ३॥
स्थापयेदव्रणं कुम्भं सुवर्णादिविनिर्मितम्। पञ्चरत्नसमायुक्तं घृतपात्रेण संयुतम्॥ ४॥
नानाभक्ष्यफलैर्युक्तं माल्यवस्त्रविभूषितम्। ताम्रेण पूर्णपात्रेण उपरिस्थेन भूषितम्॥ ५॥
कुम्भोद्भवस्य प्रतिमां तत्र पात्रे निधापयेत्। अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं सौवर्णं च चतुर्भुजम्॥ ६॥
पीनात्यायतदोर्दण्डं दक्षिणाभिमुखं मुनिम्। सुशोभनं प्रशान्तं च जटामण्डलधारिणम्॥ ७॥
कमण्डलुकरं शिष्यैर्बहुभिः परिवारितम्। तथा दर्भाक्षतधरं लोपामुद्रासमन्वितम्॥ ८॥
आवाहयेत्पूजयेच्च गन्धपुष्पादिभिस्तथा। उपचारैः षोडशभिर्नैवेद्यैर्बहुविस्तरैः॥ ९॥
दध्योदनबलिं दद्याद्भक्तियुक्तेन चेतसा। ततश्चार्घः प्रदातव्यस्तं चैव विधिवच्छृणु॥ १०॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

अगस्त्यजीको अर्घ्यदानकी विधि

ईश्वर बोले—हे ब्रह्मपुत्र! अब मैं अगस्त्यजीको अर्घ्य प्रदान करनेकी उत्तम विधिका वर्णन करूँगा, जिसे करनेसे मनुष्य सभी वांछित फल प्राप्त कर लेता है॥ १॥ अगस्त्यके उदयके पूर्व कालका नियम जानना चाहिये। जब समरात्रि अर्थात् आठ या दस रात्रि उदय होनेमें शेष रहे तब सात रात्रि पहलेसे उदयकालतक प्रतिदिन अर्घ्य प्रदान करे; उसकी विधि मैं आपसे कहता हूँ। [जबसे अर्घ्य देना प्रारम्भ करे उस दिन] प्रात:काल श्वेत तिलोंसे स्नान करके गृहाश्रमी मनुष्य श्वेत माला तथा श्वेत वस्त्र धारण करे और सुवर्ण आदिसे निर्मित कुम्भ स्थापित करे; जो छिद्ररहित, पंचरत्नसे युक्त, घृतपात्रसे समन्वित, अनेक प्रकारके मोदक आदि भक्ष्य पदार्थ तथा फलोंसे संयुक्त, माला-वस्त्रसे विभूषित तथा ऊपर स्थित ताम्रके पूर्णपात्रसे सुशोभित हो॥ २—५॥ उस पात्रके ऊपर अगस्त्यजीकी सुवर्ण-प्रतिमा स्थापित करे, जो अंगुष्ठमात्र प्रमाणवाले, पुरुषाकर, चार भुजाओंसे युक्त, स्थूल तथा दीर्घ भुजदण्डोंसे सुशोभित, दक्षिण दिशाकी ओर मुख किये हुए, सुन्दर, शान्तभावसम्पन्न, जटामण्डलधारी, कमण्डलु धारण किये हुए, अनेक शिष्योंसे आवृत, हाथोंमें कुश तथा अक्षत लिये हुए हो, ऐसे लोपामुद्रासहित मुनि अगस्त्यका आवाहन करे और गन्ध, पुष्प आदि सोलह उपचारों तथा अनेक प्रकारके नैवेद्योंसे उनका पूजन करे। इसके बाद भक्तियुक्त चित्तसे उन्हें दही तथा भातकी बलि प्रदान करे। तदनन्तर अर्घ्य दे, उसे भी विधिवत् सुनिये॥ ६—१०॥

सौवर्णे वाथ रौप्ये वा ताम्रे वेणुमयेऽथ वा। पात्रे नारङ्गखर्जूरीनारिकेलफलानि च॥ ११॥
कूष्माण्डकारवल्लीनि कदलीदाडिमानि च। वृन्ताकबीजपूराणि अक्षोटाः पिस्तकास्तथा॥ १२॥
नीलोत्पलानि पद्मानि कुशदूर्वाङ्कुरास्तथा। अन्यान्यपि च साध्यानि फलानि कुसुमानि च॥ १३॥
नानाप्रकारभक्ष्याणि सप्तधान्यानि चैव हि। सप्ताङ्कुराः पल्लवाश्च पञ्च वस्त्राणि चैव हि॥ १४॥
एतान्पदार्थान्संस्थाप्य पात्रं सम्यक्प्रपूजयेत्। जानुभ्यामवनिं गत्वा तत्पात्रं नम्रमूर्धनि॥ १५॥
धृत्वावाचिमुखो भूत्वा ध्यायेत्कुम्भोद्भवं मुनिम्। दद्यादर्घ्यं प्रयत्नेन श्रद्धाभक्तिपुरःसरम्॥ १६॥
काशपुष्पप्रतीकाश वह्निमारुतसम्भव। मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते॥ १७॥
विन्ध्यवृद्धिक्षयकर मेघतोयविषापह। रत्नवल्लभ देवर्षे लङ्कावास नमोऽस्तु ते॥ १८॥
आतापी भक्षितो येन वातापी च महाबलः। लोपामुद्रापतिः श्रीमान्योऽसौ तस्मै नमो नमः॥ १९॥
येनोदितेन पापानि विलयं यान्ति चाधयः। व्याधयस्त्रिविधास्तापास्तस्मै नित्यं नमो नमः॥ २०॥
यादःपूर्णः सरिन्नाथो येन वै शोषितः पुरा। सपुत्राय सशिष्याय सपत्नीकाय वै नमः॥ २१॥
अगस्त्यस्यायमर्घो वै द्विजातिर्वेदमन्त्रतः। शूद्रः पौराणमन्त्रेण दत्त्वार्घ्यं प्रणमेत्सुधीः॥ २२॥
राजपुत्रि महाभागे ऋषिपत्नि वरानने। लोपामुद्रे नमस्तुभ्यमर्घ्यं मे प्रतिगृह्यताम्॥ २३॥

सुवर्ण, चाँदी, ताम्र अथवा बाँसके पात्रमें नारंगी, खजूर, नारिकेल, कूष्माण्ड, करेला, केला, अनार, बैगन, बिजौरा नीबू, अखरोट, पिस्तक, नीलकमल, पद्म, कुश, दूर्वांकुर, अन्य प्रकारके भी उपलब्ध फल तथा पुष्प, नानाविध भक्ष्य पदार्थ, सप्तधान्य, सप्त अंकुर, पंचपल्लव और वस्त्र—इन पदार्थोंको रखकर पात्रकी विधिवत् पूजा करे। पुनः घुटनेके बल पृथ्वीपर टेककर सिर झुकाकर उस पात्रको मस्तकसे लगाकर नीचेकी ओर मुख करके अगस्त्यमुनिका इस प्रकार ध्यान करे और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सावधान होकर अर्घ्य प्रदान करे—काशपुष्पके समान स्वरूपवाले, अग्नि तथा वायुसे प्रादुर्भूत तथा मित्रावरुणके पुत्र हे अगस्त्य! आपको नमस्कार है। विन्ध्यकी वृद्धिको रोक देनेवाले, मेघके जलका विष हरनेवाले, रत्नोंके स्वामी तथा लंकामें वास करनेवाले हे देवर्षे! आपको नमस्कार है। जिन्होंने आतापी तथा वातापीका भक्षण किया; लोपामुद्राके पति, महाबली तथा श्रीमान् जो ये अगस्त्यजी हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। जिनके उदित होनेसे समस्त पाप, मानसिक तथा शारीरिक रोग और तीनों प्रकारके ताप (आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक) नष्ट हो जाते हैं, उन्हें बार-बार नित्य नमस्कार है। जिन्होंने जलजन्तुओंसे परिपूर्ण समुद्रको पूर्वकालमें सुखा दिया था; उन पुत्रसहित, शिष्यसहित तथा भार्यासहित अगस्त्यजीको नमस्कार है। बुद्धिमान् द्विजाति '**अगस्त्यस्य नद्भ्यः**' (ऋक्० १०।६०।६)—इस वेदमन्त्रसे तथा शूद्र पौराणिक मन्त्रसे अगस्त्यजीको अर्घ्य देकर उन्हें प्रणाम करे। [इसके बाद लोपामुद्राको अर्घ्य दे—] हे राजपुत्रि! हे महाभागे! हे ऋषिपत्नि! हे सुमुखि! हे लोपामुद्रे! आपको नमस्कार है, मेरे अर्घ्यको स्वीकार कीजिये॥ ११—२३॥

ततो होमं प्रकुर्वीत अर्घ्यमन्त्रेण मन्त्रवित्। आज्येनाष्टसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा॥ २४॥
कृत्वैवं च ततोऽगस्त्यं प्रणिपत्य विसर्जयेत्। अचिन्त्यचरितागस्त्य यथागस्त्यः प्रपूजितः॥ २५॥
ऐहिकामुष्मिकीं कृत्वा कार्यसिद्धिं व्रजस्व भोः। विसर्जयित्वागस्त्यं तं विप्राय प्रतिपादयेत्॥ २६॥
वेदवेदाङ्गविदुषे दरिद्राय कुटुम्बिने। अगस्त्यो द्विजरूपेण प्रतिगृह्णातु सत्कृतः॥ २७॥
अगस्त्यः प्रतिगृह्णाति ह्यगस्त्यो वै ददाति च। उभयोस्तारकोऽगस्त्यो ह्यगस्त्याय नमो नमः॥ २८॥
मन्त्रद्वयेन दद्यात्तु ब्राह्मणस्तु जपेन्मनुम्। वैदिकं पूर्वविहितं पौराणं शूद्र एव तु॥ २९॥
श्वेतां धेनुं ततो दद्याद्धेमशृङ्गीं पयस्विनीम्। सहवत्सां रौप्यखुरां ताम्रपृष्ठीं सुशोभनाम्॥ ३०॥
कांस्यदोहनिकायुक्तां घण्टावस्त्रसमन्विताम्। एवं सप्तदिनं दत्वा अर्घ्यं प्रागुदयान्मुने:॥ ३१॥
सप्तमे दिवसे धेनुं प्रदद्याच्च सदक्षिणाम्। एवं कृत्वा सप्तवर्षमकामश्चेन्न जन्मभाक्॥ ३२॥
सकामश्चक्रवर्तित्वं रूपारोग्यसमन्वितः। ब्राह्मणः स्याच्चतुर्वेदसर्वशास्त्रविशारदः॥ ३३॥
क्षत्रियः पृथिवीं सर्वां प्राप्नोत्यर्णवमेखलाम्। वैश्यश्चेद्धान्यनिष्पत्तिं गोधनं चापि विन्दति॥ ३४॥

तत्पश्चात् मन्त्रवेत्ताको चाहिये कि अर्घ्यमन्त्रसे घृतकी आठ हजार अथवा एक सौ आठ आहुति प्रदान करे। इस प्रकार करके अगस्त्यजीको प्रणाम करनेके अनन्तर [यह कहकर] विसर्जन करे—बुद्धिसे परे चरित्रवाले हे अगस्त्य! मैंने सम्यक् रूपसे आपका पूजन किया है; अतः मेरी इहलौकिक तथा पारलौकिक कार्यसिद्धिको करके आप प्रस्थान कीजिये॥ २४-२५१/२ ॥ इस प्रकार उन अगस्त्यजीको विसर्जित करके वेद-वेदांगके विद्वान्, निर्धन तथा गृहस्थ ब्राह्मणको समस्त पदार्थ अर्पण कर दे [और मुखसे यह कहे—] 'सत्कार किये गये अगस्त्यजी ब्राह्मणरूपसे स्वीकार करें। अगस्त्य ही ग्रहण करते हैं, अगस्त्य ही देते हैं और दोनोंका उद्धार करनेवाले भी अगस्त्य ही हैं; अगस्त्यजीको बार-बार नमस्कार है'। दोनों मन्त्रोंका उच्चारण करके दान करे, ब्राह्मण आदि पूर्वविहित वैदिक मन्त्रका उच्चारण करें और शूद्र पौराणिक मन्त्रका उच्चारण करे॥ २६—२९ ॥ तत्पश्चात् सुवर्णमयी सींगवाली, दूध देनेवाली, बछड़ेसहित, चाँदीके खुरवाली, ताम्रके पीठवाली, अत्यन्त सुन्दर, काँसेकी दोहनीसे युक्त और घंटा तथा वस्त्रसे विभूषित श्वेत वर्णकी धेनु प्रदान करे। अगस्त्यमुनिके उदयके सात दिन पूर्वसे इस प्रकार अर्घ्य देकर ही सातवें दिन दक्षिणासहित गौ प्रदान करे॥ ३०-३११/२ ॥ इस प्रकार इस [व्रत]-को सात वर्षतक करके निष्काम व्यक्ति पुनर्जन्मको प्राप्त नहीं होता और सकाम व्यक्ति चक्रवर्ती राजा होता है एवं रूप तथा आरोग्यसे युक्त रहता है; ब्राह्मण चारों वेदों तथा सभी शास्त्रोंका विद्वान् हो जाता है; क्षत्रिय समुद्रपर्यन्त समस्त पृथ्वीको प्राप्त कर लेता है; वैश्य धान्यसम्पदा और गोधन प्राप्त कर लेता है॥ ३२—३४ ॥

शूद्राणां धनमारोग्यं सत्यं चैवाधिकं भवेत्। स्त्रीणां पुत्राः प्रजायन्ते सौभाग्यं गृहमृद्धिमत्॥ ३५॥
विधवानां महापुण्यं वर्धते विधिनन्दन। कन्या भर्तारमाप्नोति व्याधेर्मुच्येत दुःखितः॥ ३६॥
येषु देशेष्वगस्त्यस्य पूजनं क्रियते नरैः। तेषु देशेषु पर्जन्यः कामवर्षी प्रजायते॥ ३७॥
ईतयः प्रशमं यान्ति नश्यन्ति व्याधयस्तथा। पठन्ति ये त्वगस्त्यस्य ह्यर्घ्यं शृण्वन्ति केचन॥ ३८॥
ते सर्वे पापनिर्मुक्ताश्चिरं स्थित्वा महीतले। हंसयुक्तविमानेन स्वर्गे यान्ति नरोत्तमाः॥ ३९॥
यावज्जीवं करिष्यन्ति निष्कामं मुक्तिभागिनः॥ ४०॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये अगस्त्यार्घ्यविधिर्नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

शूद्रोंको अत्यधिक धन, आरोग्य तथा सत्यकी प्राप्ति होती है; स्त्रियोंको पुत्र उत्पन्न होते हैं, उनका सौभाग्य बढ़ता है तथा घर समृद्धिमय हो जाता है; हे ब्रह्मपुत्र! विधवाओंका महापुण्य बढ़ता है; कन्या [रूपगुणसम्पन्न] पति प्राप्त करती है और दु:खित मनुष्य रोगसे मुक्त हो जाता है॥ ३५-३६॥ जिन देशोंमें मनुष्योंके द्वारा अगस्त्यकी पूजा की जाती है, उन देशोंमें मेघ लोगोंकी इच्छाके अनुसार वृष्टि करता है, वहाँ प्राकृतिक आपदाएँ निर्मूल हो जाती हैं और व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं। जो कोई भी अगस्त्यजीके इस अर्घ्यदानका पाठ करते हैं अथवा इसे सुनते हैं, वे सर्वश्रेष्ठ मनुष्य पापोंसे छूट जाते हैं और पृथ्वीलोकमें दीर्घकालतक निवास करके हंसयुक्तविमानसे स्वर्ग जाते हैं। जो लोग जीवनपर्यन्त निष्कामभावसे इसे करेंगे, वे मुक्तिके भागी होंगे॥ ३७—४०॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'अगस्त्यार्घ्यविधि' नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

सनत्कुमार वक्ष्यामि उक्तानां व्रतकर्मणाम्। काले कदा तु किं कार्यं तच्छृणुष्व महामुने॥ १॥

का तिथिः श्रावणे मासि किंकालव्यापिनी भवेत्। ग्राह्या प्रधानं किं तत्र पूजाजागरणादिकम्॥ २॥

तत्तत्कथनकाले तु केषाञ्चित्काल ईरितः। नक्तव्रतस्य कालस्तु उक्तस्तद्व्रतकर्मणि॥ ३॥

प्रधानं रात्रिभुक्तिस्तु भोजनाभावयुग्दिवा। उद्यापनं तु सर्वेषां तत्तद्व्रततिथौ भवेत्॥ ४॥

असम्भवे तु पञ्चाङ्गशुद्धे स्यादधिवासनम्। द्वितीयदिवसे कुर्याद्धोमादिविधिमादृतः॥ ५॥

धारणा पारणा चैव ह्रासवृद्धी न कारणम्। नभःशुक्लप्रतिपदि सङ्कल्प्योपोषणं चरेत्॥ ६॥

द्वितीयदिवसे भुक्तिस्ततोऽन्यस्मिन्नुपोषणम्। एवं क्रमेण कुर्वीत हविष्याशी तु पारणे॥ ७॥

एकादशीपारणाहे उपवासत्रयं तथा। रविवारव्रतार्चायाः कालः स्यात्प्रातरेव हि॥ ८॥

सोमवारे प्रधानः स्यात्सायंकालः प्रकीर्तितः। भौमे बुधे गुरौ मुख्यः प्रातःकालश्च पूजने॥ ९॥

उनतीसवाँ अध्याय

श्रावणमासमें किये जानेवाले व्रतोंका कालनिर्णय

ईश्वर बोले—हे सनत्कुमार! अब मैं पूर्वमें कहे गये व्रतकर्मोंके समयके विषयमें बताऊँगा। हे महामुने! किस समय कौन-सा कृत्य करना चाहिये; उसे सुनिये॥ १॥ श्रावणमासमें कौन-सी तिथि किस विहित कालमें ग्रहणके योग्य होती है और उस तिथिमें पूजा, जागरण आदिसे सम्बन्धित मुख्य समय क्या है? उन-उन व्रतोंके वर्णनके समय कुछ व्रतोंका समय तो पूर्वमें बता दिया गया है। नक्त-व्रतका समय ही विशेषरूपसे उन व्रतों तथा कर्मोंमें उचित बताया गया है। दिनमें उपवास करे तथा रात्रिमें भोजन करे, यही प्रधान नियम है। सभी व्रतोंका उद्यापन उन-उन व्रतोंकी तिथियोंमें ही होना चाहिये [यदि किसी कारणसे उस तिथिमें] उद्यापन असम्भव हो तो पंचांगशुद्ध दिनमें एक दिन पूर्व अधिवासन करे और दूसरे दिन आदरपूर्वक होम आदि कृत्योंको करे॥ २—५॥ धारण-पारण व्रतमें तिथिका घटना तथा बढ़ना कारण नहीं है। श्रावणमासके शुक्ल पक्षकी प्रतिपदा तिथिमें संकल्प करके उपवास करे; पुनः दूसरे दिन पारण करे, इसके बाद दूसरे दिन उपवास (धारण) करे। इसी क्रमसे करता रहे। व्रतीको चाहिये कि वह पारणमें हविष्यान्न (मूँग, चावल आदि) ग्रहण करे। एकादशी तिथिमें पारणका दिन हो जानेपर तीन दिन [निरन्तर] उपवास करे॥ ६-७१/२॥ रविवारव्रतमें पूजाका समय प्रातःकाल ही होना चाहिये। सोमवारके व्रतमें पूजाका प्रधान समय सायंकाल कहा गया है। मंगल, बुध तथा गुरुके व्रतमें

शुक्रवारे पूजनं स्यात्कल्पे रात्रौ च जागरः। नृसिंहपूजने मन्दे सायंकालश्च पूजनम्॥ १०॥

शनिव्रते शनेर्दाने मध्याह्ने मुख्य इष्यते। हनूमतोऽपि मध्याह्नः प्रातरश्वत्थपूजनम्॥ ११॥

रोटकाख्ये व्रते वत्स प्रतिपत्सोमसंयुता। त्रिमुहूर्तोत्तरा सा स्यादन्यथा पूर्वयोगिनी॥ १२॥

औदुम्बरी द्वितीया तु सायाह्नव्यापिनी मता। तृतीयासंयुता ग्राह्या द्वयोश्चेत्पूर्ववेधिता॥ १३॥

तृतीया स्वर्णगौर्याख्या सा चतुर्थीयुता भवेत्। चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते॥ १४॥

नागानां पूजने शस्ता षष्ठीयुक्ता च पञ्चमी। सूपौदनव्रते षष्ठी सायाह्ने सप्तमीयुता॥ १५॥

मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या सप्तमी शीतलाव्रते। पवित्रारोपणेऽष्टम्यां देव्या रात्रियुता तिथिः॥ १६॥

कुमारीनवमी नक्तव्यापिनी तु प्रशस्यते। आशासंज्ञा तु दशमी सा नक्तव्यापिनी भवेत्॥ १७॥

त्याज्या विद्धैकादशी तु तत्र वेधं मुने शृणु। अरुणोदयवेधस्तु दशम्या वैष्णवान्प्रति॥ १८॥

आदित्योदयवेधस्तु स्मार्तानां निन्द्य एव सः। अरुणोदयकालस्तु यामार्धं चरमं निशः॥ १९॥

पूजनके लिये मुख्य समय प्रातःकाल है। शुक्रवारके व्रतमें पूजन उषाकालसे लेकर सूर्योदयके पूर्वतक हो जाना चाहिये और रात्रिमें जागरण करना चाहिये। शनिवारके दिन व्रतमें नृसिंहका पूजन सायंकालमें करे॥ ८—१०॥

शनिके व्रतमें शनिके दानके लिये मध्याह्न मुख्य समय कहा गया है। हनुमान्‌जीके पूजनका समय मध्याह्न है। अश्वत्थका पूजन प्रातःकाल करना चाहिये॥ ११॥ हे वत्स! रोटक नामक व्रतमें यदि सोमवारयुक्त प्रतिपदा तिथि हो तो वह प्रतिपदा तीन मुहूर्तसे कुछ अधिक होनी चाहिये, अन्यथा पूर्वयोगिनी प्रतिपदा ग्रहण करनी चाहिये॥ १२॥ औदुम्बरी द्वितीया सायंकालव्यापिनी मानी गयी है। यदि दोनों तिथियोंमें पूर्ववेध हो तो तृतीयासंयुक्त द्वितीया ग्रहण करनी चाहिये॥ १३॥ स्वर्णगौरी नामक व्रतकी तृतीया तिथि चतुर्थीयुक्त होनी चाहिये, गणपतिव्रतहेतु तृतीयाविद्ध चतुर्थीतिथि प्रशस्त होती है॥ १४॥ नागोंके पूजनमें षष्ठीयुक्त पंचमी प्रशस्त होती है। सूपौदनव्रतमें सायंकाल सप्तमीयुक्त षष्ठी श्रेष्ठ होती है॥ १५॥ शीतलाके व्रतमें मध्याह्नव्यापिनी सप्तमी ग्रहण करनी चाहिये। देवीके पवित्रारोपण व्रतमें रात्रिव्यापिनी अष्टमी तिथि ग्रहण करनी चाहिए॥ १६॥ नक्तव्यापिनी कुमारीनवमी प्रशस्त मानी जाती है। इसी प्रकार आशा नामक जो दशमी तिथि है, वह भी नक्तव्यापिनी होनी चाहिये॥ १७॥ विद्ध एकादशीका त्याग करना चाहिये। हे मुने! उसमें वेधके विषयमें सुनिये। [एकादशी व्रतके लिये] अरुणोदयमें दशमीका वेध वैष्णवोंके लिये तथा सूर्योदयमें दशमीका वेध स्मार्तोंके लिये निन्द्य होता है। रात्रिके

एवं रीत्या यस्य भवेद् द्वादशी सा पवित्रके। त्रयोदशी त्वनङ्गस्य व्रते स्याद् रात्रियोगिनी॥ २०॥
द्वितीययामे तत्रापि सा प्रशस्ततरा भवेत्। पवित्रारोपणे शम्भो रात्रिगा स्याच्चतुर्दशी॥ २१॥
अतिप्रशस्ता तत्रापि निशीथव्यापिनी तु या। उपाकर्मणि चोत्सर्गे पूर्णिमा श्रवणं च भम्॥ २२॥
त्रिमुहूर्तं द्वितीयेऽह्नि तदा ग्राह्यं परं दिनम्। नोचेदनुष्ठितः पूर्वं तैत्तिराणां च बह्वृचाम्॥ २३॥
तैत्तिराणां च यजुषां मुहूर्तत्रयगामपि। उत्तरस्मिन्पूर्वमेव दिनं स्यात्कर्मणि द्वयोः॥ २४॥
मुहूर्तानन्तरं पूर्वदिने चेत्सङ्गतिर्भवेत्। पूर्णिमाश्रवणर्क्षं च मुहूर्तद्वितयात्पुरा॥ २५॥
उत्तरस्मिन्समाप्तं चेत्तदा पूर्वदिनं भवेत्। हस्तभे त्वपराह्णे स्याद् ग्राह्यं तत्सामवेदिभिः॥ २६॥
दिनद्वये तदा स्याच्चेत्पूर्वमेव दिनं भवेत्। उपाकर्मप्रयोगान्ते कालो दीपस्य संसदः॥ २७॥
श्रवणाकर्मणि प्रोक्तः कालः सर्वबलौ तथा। पर्वणोऽह्नि भवेद् रात्रौ स्वस्वगृह्यानुसारतः॥ २८॥
पौर्णिमात्र प्रशस्ता वा स्यादस्तमययोगिनी। हयग्रीवोत्सवे पूर्णा मध्याह्नव्यापिनी भवेत्॥ २९॥
अपराह्णव्यापिनी स्याद्रक्षाबन्धनकर्मणि। चन्द्रोदयव्यापिनी च स्यात्सङ्कष्टचतुर्थिका॥ ३०॥

अन्तिम प्रहरका आधा भाग अरुणोदय होता है॥ १८-१९॥ इसी रीतिसे जो द्वादशी हो, वह पवित्रारोपणमें ग्राह्य है। कामदेवके व्रतमें त्रयोदशी रात्रिव्यापिनी होनी चाहिये। उसमें भी द्वितीययामव्यापिनी त्रयोदशी हो तो वह अति प्रशस्त होती है। शिवजी के पवित्रारोपण व्रतमें रात्रिव्यापिनी चतुर्दशी होनी चाहिये; उसमें भी जो चतुर्दशी अर्धरात्रिव्यापिनी होती है, वह अतिश्रेष्ठ होती है॥ २०-२१½॥ उपाकर्म तथा उत्सर्जन कृत्यके लिये पूर्णिमा तिथि तथा श्रवण नक्षत्र होने चाहिये। यदि दूसरे दिन तीन मुहूर्ततक पूर्णिमा हो तो दूसरा दिन ग्रहण करना चाहिये, अन्यथा तैत्तिरीय शाखावालोंको और ऋग्वेदियोंको पूर्व दिन ही करना चाहिये। तैत्तिरीय यजुर्वेदियोंको तीन मुहूर्तपर्यन्त दूसरे दिन पूर्णिमामें श्रवण नक्षत्र हो तब भी पूर्व दिन दोनों कृत्य करने चाहिये। यदि पूर्णिमा और श्रवण दोनोंका पूर्व दिन एक मुहूर्तके अनन्तर योग हो और दूसरे दिन दो मुहूर्तके भीतर दोनों समाप्त हो गये हों तब पूर्व दिन ही दोनों कर्म होना चाहिये। यदि हस्तनक्षत्र दोनों दिन अपराह्णकालव्यापी हो तब भी दोनों कृत्य पूर्व दिन ही सम्पन्न होने चाहिये॥ २२—२६½॥ श्रवणाकर्ममें उपाकर्म प्रयोगके अन्तमें दीपकका काल माना गया है और सर्व बलिके लिये भी वही काल बताया गया है। पर्वके दिनमें अथवा रात्रिमें अपने-अपने गृह्यसूत्रके अनुसार जब भी इच्छा हो, इसे करना चाहिये॥ २७-२८॥ इस दीपदान तथा सर्व बलिदान कर्ममें अस्तकालव्यापिनी पूर्णिमा प्रशस्त है। हयग्रीवके उत्सवमें मध्याह्नव्यापिनी पूर्णिमा प्रशस्त होती है। रक्षाबन्धन कर्ममें अपराह्णकालव्यापिनी पूर्णिमा होनी चाहिये। इसी प्रकार संकष्टचतुर्थी चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्य होनी चाहिये। यदि चन्द्रोदयव्यापिनी चतुर्थी दोनों दिनोंमें

उभयत्र यदा सा स्यान्न स्याद्वा पूर्वगा भवेत्। चतुर्थी च तृतीयायां महापुण्यफलप्रदा॥ ३१॥
कर्तव्या व्रतिभिर्वत्स गणनाथसुतोषिणी। गणेशगौरीबहुलाव्यतिरिक्ताः प्रकीर्तिताः॥ ३२॥
चतुर्थ्यः पञ्चमीविद्धा देवतान्तरपूजने। निशीथव्यापिनी ग्राह्या कृष्णजन्माष्टमी तिथिः॥ ३३॥
षट्प्रकारा तु सर्वत्र निर्णये तिथिरिष्यते। पूर्णव्याप्तिर्द्वयोरह्नोरव्याप्तिरपि केवला॥ ३४॥
अंशतश्च समा व्याप्तिरंशतो विषमा तथा। सम्पूर्णव्याप्तिरेकत्र अंशतश्च परेऽहनि॥ ३५॥
अंशतो व्याप्तिरेकत्र अव्याप्तिरपरत्र च। पक्षत्रये तु सन्देहो यथा नास्ति तथा शृणु॥ ३६॥
अंशतो विषमव्याप्तावधिका व्याप्तिरुत्तमा। एकत्र पूर्णा चान्यत्र सापूर्णा चोच्यते तिथिः॥ ३७॥
अव्याप्तिरंशतो व्याप्तिस्तत्रांशव्याप्तिरुत्तमा। अंशव्याप्तिर्यदा पूर्णा अंशतश्च समा यदा॥ ३८॥
संशयस्तत्र भवति तस्य स्यान्निर्णयो भिदा। क्वचिद्धवेद्युग्मवाक्याद्वारनक्षत्रयोगतः॥ ३९॥
प्रधानद्वययोगेन पारणायोगतः क्वचित्। जन्माष्टम्यां तु सन्देहे त्रिपक्षे तु परा भवेत्॥ ४०॥
अष्टम्यन्ते पारणं स्याद्यदि यामत्रयात्परा। समाप्येत तदूर्ध्वं चेदष्टम्युषसि पारणा॥ ४१॥
व्रते पिठोरसंज्ञेऽमा मध्याह्नव्यापिनी शुभा। वृषभाणां पूजने तु अमा सायन्तनी भवेत्॥ ४२॥

हो अथवा दोनों दिनोंमें न हो तो भी चतुर्थी व्रत पूर्व दिनमें करना चाहिये; क्योंकि तृतीयामें चतुर्थी महान् पुण्य फल देनेवाली होती है। अतः हे वत्स! व्रतियोंको चाहिये कि गणेशजीको प्रसन्न करनेवाले इस व्रतको करें। गणेशचतुर्थी, गौरीचतुर्थी और बहुलाचतुर्थी—इन चतुर्थियोंके अतिरिक्त अन्य सभी चतुर्थियाँ अन्य देवताओंके पूजनके लिये पंचमीविद्धा कही गयी हैं॥ २९—३२१/२॥ कृष्णजन्माष्टमी तिथि निशीथव्यापिनी ग्रहण की जानी चाहिये। निर्णयमें सर्वत्र तिथि छः प्रकारकी मानी जाती है—१. दोनों दिन पूर्ण व्याप्ति, २. दोनों दिन केवल अव्याप्ति, ३. अंशसे दोनों दिन सम व्याप्ति, ४. अंशसे दोनों दिन विषम व्याप्ति, ५. पूर्व दिन सम्पूर्ण व्याप्ति और दूसरे दिन आंशिक व्याप्ति, ६. पूर्व दिन आंशिक व्याप्ति और दूसरे दिन अव्याप्ति। इन पक्षोंमेंसे तीन पक्षोंमें जिस प्रकार सन्देह नहीं है, उसे सुनिये॥ ३३—३६॥

विषम व्याप्तिमें अंशव्याप्तिसे अधिक व्याप्ति उत्तम होती है। एक दिन तिथि पूर्णा है, वही तिथि दूसरे दिन अपूर्णा कही जाती है। अव्याप्ति तथा अंशसे व्याप्ति—इनमें अंशव्याप्ति उत्तम होती है; और जब अंशव्याप्ति पूर्ण हो तथा जब अंशसे सम हो, वहाँ सन्देह होता है और उसके निर्णयमें भेद होता है। कहीं युग्म वाक्यसे वार तथा नक्षत्रके योगसे, कहीं प्रधानद्वय योगसे और कहीं पारणा योगसे॥ ३७—३९१/२॥ जन्माष्टमी व्रतमें सन्देह होनेपर तीनों पक्षोंमें परा ग्राह्य होती है। यदि अष्टमी तीन प्रहरके भीतर ही समाप्त हुई हो तो अष्टमीके अन्तमें पारण हो जाना चाहिये और उसके बाद यदि अष्टमी उषाकालमें समाप्त होती हो तो पारण उसी समय करना चाहिये॥ ४०-४१॥ पिठोर नामक व्रतमें मध्याह्नव्यापिनी अमावस्या शुभ होती है और

दर्भाणां सञ्चये चैव सङ्गवः काल ईरितः । त्रिंशत्पुण्याः पूर्वनाड्यः कर्कसङ्क्रमणे रवेः ॥ ४३ ॥
पुण्याः षोडश नाड्यस्तु सिंहे पूर्वाः परा अपि । केचिदिच्छन्ति मुनयः पूर्वा एव तु षोडश ॥ ४४ ॥
अगस्त्यार्घ्यस्य कालस्तु व्रत एव प्रकीर्तितः । अयं ते कथितो वत्स कर्मणां कालनिर्णयः ॥ ४५ ॥
य इदं शृणुतेऽध्यायं यश्चापि परिकीर्तयेत् । नभोमासि कृतानां स व्रतानां लभते फलम् ॥ ४६ ॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये व्रतनिर्णयकालनिर्णयकथनं नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

वृषभोंके पूजनमें सायंकालव्यापिनी अमावास्या शुभ होती है। कुशोंके संचयमें संगवकाल (दिनके पाँच भागोंमेंसे दूसरा भाग)-व्यापिनी अमावास्या शुभ कही गयी है। सूर्यके कर्कसंक्रमणमें तीस घड़ी पूर्वका काल पुण्यमय होता है और सिंहसंक्रमणमें बादकी सोलह घड़ियाँ पुण्यमय हैं; साथ ही कुछ मुनि पूर्वकी सोलह घड़ियोंको भी पुण्यमय मानते हैं। अगस्त्यके अर्घ्यका काल तो व्रतवर्णनमें ही कह दिया गया है। हे वत्स! मैंने आपसे यह कर्मोंके कालका निर्णय कह दिया। जो मनुष्य इस अध्यायका श्रवण करता है अथवा इसका पाठ करता है, वह श्रावणमासमें किये गये सभी व्रतोंका फल प्राप्त करता है॥ ४२—४६॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'व्रत-निर्णयकालनिर्णयकथन' नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

त्रिंशोऽध्यायः

ईश्वर उवाच

कियत्कियत्ते कथितं माहात्म्यं श्रावणस्य हि। सर्वं वर्णयितुं शक्यं नालं वर्षशतैरपि॥ १॥
प्रियेयं मम कल्याणी हुत्वा दक्षाध्वरे तनुम्। हिमाचलसुता जाता तेनेयं योजिता मया॥ २॥
सेवने श्रावणे मासि तेन मे प्रियकृन्नभाः। नातिशीतो नाति चोष्णः श्रावणे मासि भूपतिः॥ ३॥
उद्धूलयित्वा स्वतनुं सर्वां श्रौतेन भस्मना। श्वेतेनाथ जलार्द्रेण त्रिपुण्ड्रान्द्वादशांश्चरेत्॥ ४॥
भाले वक्षसि नाभौ च बाह्वोः कूर्परयोस्तथा। मणिबन्धद्वये चैव कण्ठे मूर्धनि पृष्ठके॥ ५॥
मानस्तोकेति मन्त्रेण सद्योजातादिमन्त्रतः। षडक्षरेण मन्त्रेण भस्मना शोभयेत्तनुम्॥ ६॥
धारयेच्चैव रुद्राक्षानष्टाधिकशतं तनौ। द्वात्रिंशद्धारयेत्कण्ठे मूर्ध्नि द्वाविंशतिस्तथा॥ ७॥
कर्णद्वये द्वादशैव चतुर्विंशत्करद्वये। अष्टाष्ट भुजयोर्भाले एकमेकं शिखाग्रगम्॥ ८॥
एवं कृत्वा तु मामर्च्य जपेत्पञ्चाक्षरं मनुम्। श्रावणे मासि विप्रेन्द्र सोऽहमेव न संशयः॥ ९॥
ज्ञात्वेमं मत्प्रियं मासं पूजयेत्केशवं च माम्। कृष्णाष्टमी च तत्रापि मम प्रियतरा तिथिः॥ १०॥
देवक्या जठरात्तस्मिन्दिने प्रादुरभूद्धरिः। एतत्ते कथितं लेशात्किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥ ११॥

तीसवाँ अध्याय

श्रावणमासमाहात्म्यके पाठ एवं श्रवणका फल

ईश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] मैंने आपसे श्रावणमासका कुछ-कुछ माहात्म्य कहा है; इसके सम्पूर्ण माहात्म्यका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता॥ १॥ मेरी इस कल्याणी प्रिया सतीने दक्षके यज्ञमें अपना शरीर दग्ध करके पुनः हिमालयकी पुत्रीके रूपमें जन्म लिया। श्रावणमासमें व्रत करनेके कारण यह मुझे पुनः प्राप्त हुई, इसीलिये श्रावण मुझे प्रियकर है। यह मास न अधिक शीतल होता है और न अधिक उष्ण होता है। राजाको चाहिये कि श्रावणमासमें श्रौताग्निसे निर्मित श्वेत भस्मसे अपने सम्पूर्ण शरीरको उद्धूलित करके जलसे आर्द्र भस्मके द्वारा मस्तक, वक्षःस्थल, नाभि, दोनों बाहु, दोनों कोहनी, दोनों कलाई, कण्ठ, सिर और पीठ—इन बारह स्थानोंमें त्रिपुण्ड्र धारण करे। '**मानस्तोके०**' मन्त्रसे अथवा '**सद्योजात०**' आदि मन्त्रसे अथवा षडक्षरमन्त्र (**ॐ नमः शिवाय**)-से भस्मके द्वारा शरीरको सुशोभित करे और शरीरमें एक सौ आठ रुद्राक्ष धारण करे। कण्ठमें बत्तीस रुद्राक्ष, सिरपर बाईस, दोनों कानोंमें बारह, दोनों हाथोंमें चौबीस, दोनों भुजाओंमें आठ-आठ, ललाटपर एक और शिखाके अग्रभागमें एक रुद्राक्ष धारण करे। इस प्रकारसे करके मेरा पूजनकर पंचाक्षर मन्त्रका जप करे। हे विप्रेन्द्र! श्रावणमासमें जो ऐसा करता है, वह मेरा ही स्वरूप है; इसमें सन्देह नहीं है॥ २—९॥ इस मासको मेरा अत्यन्त प्रिय जानकर केशवकी तथा मेरी पूजा करनी चाहिये। इस मासमें मेरी अत्यन्त प्रिय तिथि कृष्णाष्टमी* पड़ती है; उसी दिन भगवान् श्रीहरि देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। [हे सनत्कुमार!] यह मैंने

---

* इसका स्पष्टीकरण पृ०सं० २५ में देखना चाहिये।

सनत्कुमार उवाच

यद्यत्कृत्यं पार्वतीश नभोमासि त्वयेरितम्। आनन्दाब्धौ निमग्नत्वाद् बहुत्वाच्चावधारणा॥ १२॥
न स्थिता क्रमशो नाथ ब्रूहि सर्वं यथा तथा। श्रुत्वा चाव्यवधानेन धारयिष्यामि भक्तितः॥ १३॥

ईश्वर उवाच

शृणुष्वावहितो भूत्वा अनुक्रमणिकां शुभाम्। आदौ प्रश्नः शौनकस्य ततः सूतस्य चोत्तरम्॥ १४॥
श्रोतुर्गुणास्तव प्रश्ना निरुक्तिः श्रावणस्य च। तस्य स्तुतिः पुनः प्रश्नस्तव विस्तरशो मुने॥ १५॥
मम स्तुतिस्त्वत्कृता च नामनिर्वचनादिना। भूयो ममोत्तरं तत्र उद्देश्यः क्रमतोऽखिलः॥ १६॥
विशेषतस्तव प्रश्नास्ततो नक्तव्रते विधिः। रुद्राभिषेककथनं लक्षपूजाविधिस्ततः॥ १७॥
दीपदानं परित्यागः कस्यचित्प्रियवस्तुनः। फलं रुद्राभिषेकेण तथा पञ्चामृतेन च॥ १८॥
फलं भूशयनस्यापि तथा मौनव्रतस्य च। धारणा पारणा चैव ततो मासोपवासने॥ १९॥
सोमाख्याने ततो लक्षरुद्रवर्तिविधिः स्मृतः। कोटिलिङ्गविधानं च व्रतं चानौदनाभिधम्॥ २०॥
हविष्याशनमप्यत्र पत्रावल्यां च भोजनम्। शाकत्यागो भूशयनं प्रातःस्नानं दमः शमः॥ २१॥
स्फटिकादिषु लिङ्गेषु अर्चा जपफलं ततः। प्रदक्षिणा नमस्कारान्वेदपारायणं तथा॥ २२॥
विधिः पुरुषसूक्तस्य ग्रहयज्ञविधिस्ततः। रविचन्द्रकुजानां च क्रमशो व्रतविस्तरः॥ २३॥

आपको संक्षेपमें बताया है; अब आप और क्या सुनना चाहते हैं॥ १०-११॥

सनत्कुमार बोले—हे पार्वतीपते! आपने श्रावणमासका जो-जो कृत्य कहा, [उन्हें सुनकर] आनन्दसागरमें निमग्न रहनेके कारण और उनका वर्णन् विस्तृत होनेके कारण व्यवस्थित रूपसे स्मृति नहीं बन पायी, अतः हे नाथ! आप क्रमसे सबको यथार्थ रूपसे बताइये; सावधानीसे सुनकर मैं भक्तिपूर्वक उन्हें धारण करूँगा॥ १२-१३॥

ईश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] श्रावणमासकी शुभ अनुक्रमणिकाको आप सावधान होकर सुनिये। सर्वप्रथम शौनकका प्रश्न, तत्पश्चात् सूतजीका उत्तर, श्रोताके गुण, आपके प्रश्न, श्रावणकी व्युत्पत्ति, उसकी स्तुति, पुनः हे मुने! आपका विस्तृत प्रश्न, इसके बाद नामकथनसहित आपके द्वारा की गयी मेरी स्तुति, फिर क्रमसे उद्देश्यपूर्वक मेरा उत्तर, पुनः आपका विशेष प्रश्न, तत्पश्चात् नक्तव्रतकी विधि, रुद्राभिषेककथन, इसके बाद लक्षपूजाविधि, दीपदान, फिर किसी प्रिय वस्तुका परित्याग, पुनः रुद्राभिषेक करने तथा पंचामृत-ग्रहण करनेसे प्राप्त होनेवाला फल, इसके बाद पृथ्वीपर शयन करने तथा मौनव्रत धारण करनेका फल, तत्पश्चात् मासोपवासमें धारणा-पारणाकी विधि, इसके बाद सोमाख्यानमें लक्षरुद्रवर्तिविधि, पुनः कोटिलिंग-विधान, तदनन्तर 'अनौदन' नामक व्रत कहा गया है॥ १४—२०॥ इसी व्रतमें हविष्यान्न-ग्रहण, पत्तलपर भोजन करना, शाकत्याग, भूमिपर शयन, प्रातःस्नान और दम तथा शमका वर्णन, तत्पश्चात् स्फटिक आदिके लिंगोंमें पूजा, जपका फल, तत्पश्चात् प्रदक्षिणा, नमस्कार, वेदपारायण, पुरुषसूक्तकी विधि, तत्पश्चात् ग्रहयज्ञकी विधि, रवि-

बुधगुर्वोर्व्रतं पश्चाच्छुक्रे जीवन्तिकाव्रतम्। शनौ नृसिंहस्य शनेरनिलाश्वत्थयोस्तथा॥ २४॥
रोटकव्रतमाहात्म्यं तत औदुम्बरव्रतम्। स्वर्णगौरीव्रतं पश्चाद् दूर्वागणपतिव्रतम्॥ २५॥
नागव्रतं च पञ्चम्यां षष्ठ्यां सूपौदनव्रतम्। शीतलाख्यं व्रतं देव्याः पवित्रारोपणं ततः॥ २६॥
दुर्गाकुमारीपूजा च आशाव्रतमतः परम्। उभयैकादशी पश्चात्पवित्रारोपणं हरेः॥ २७॥
अनङ्गस्य त्रयोदश्यां ततः शम्भोः पवित्रकम्। उपाकर्मोत्सर्जने च श्रवणाकर्म चैव हि॥ २८॥
ततः सर्पबलिर्वाजिग्रीवजन्ममहोत्सवः। सभादीपस्तथा रक्षाबन्धः सङ्कटनाशनम्॥ २९॥
व्रतं ततः कृष्णजन्माष्टमीव्रतकथानकम्। व्रतं पिठोरसंज्ञं तु पोलासंज्ञं वृषव्रतम्॥ ३०॥
दर्भाणां संग्रहश्चैव नदीनां सरजस्कता। सिंहे गोप्रसवे शान्तिः कर्कसिंहनभेषु च॥ ३१॥
दानानि स्नानमाहात्म्यं माहात्म्यश्रवणं तथा। ततो वाचकपूजा च अगस्त्यार्घ्यं ततः परम्॥ ३२॥
कर्मणां च व्रतानां च कालनिर्णय ईरितः। एतन्मासि कृतानां स व्रतानां फलभाग्भवेत्॥ ३३॥
सनत्कुमार हृदये धारयस्व क्रमं शुभम्॥ ३४॥
य इमं शृणुतेऽध्यायं माहात्म्यं श्रावणस्य यत्। तत्फलं समवाप्नोति व्रतानां चैव यत्फलम्॥ ३५॥

सोम-मंगलके व्रतका विस्तारपूर्वक वर्णन, पुनः बुध-गुरुका व्रत, इसके बाद शुक्रवारके दिन जीवन्तिका व्रत, पुनः शनिवारको नृसिंह-शनि-वायुदेव और अश्वत्थका पूजन—ये सब कहे गये हैं॥ २१—२४॥

तत्पश्चात् रोटक व्रतका माहात्म्य, औदुम्बरव्रत, स्वर्णगौरीव्रत, दूर्वागणपतिव्रत, पंचमी तिथिमें नागव्रत, षष्ठी तिथिमें सूपौदनव्रत, इसके बाद शीतलासप्तमी नामक व्रत, देवीका पवित्रारोपण, इसके बाद दुर्गाकुमारीकी पूजा, आशाव्रत, इसके बाद दोनों एकादशियोंका व्रत, पुनः श्रीहरिका पवित्रारोपण, पुनः त्रयोदशी तिथिको कामदेवकी पूजा, तत्पश्चात् शिवजीका पवित्रक धारण, पुनः उपाकर्म, उत्सर्जन तथा श्रवणा कर्म—इनका वर्णन किया गया है॥ २५—२८॥ तदनन्तर सर्पबलि, हयग्रीव-जन्मोत्सव, सभादीप, रक्षाबन्धन, संकटनाशन व्रत, कृष्णजन्माष्टमी व्रत तथा उसकी कथा, पिठोर नामक व्रत, पोला नामक वृषव्रत, कुशग्रहण, नदियोंका रजोधर्म, सिंहसंक्रमणमें गोप्रसव होनेपर उसकी शान्ति, कर्कसिंहसंक्रमणकालमें तथा श्रावणमासमें दान-स्नान-माहात्म्य, माहात्म्य-श्रवण, तत्पश्चात् वाचकपूजा, इसके बाद अगस्त्यार्घ्यविधि, तदनन्तर कर्मों तथा व्रतोंके कालका निर्णय बताया गया है। [जो श्रावणमासमाहात्म्यका पाठ करता है अथवा इसका श्रवण करता है।] वह इस मासमें किये गये व्रतोंका फल प्राप्त करता है॥ २९—३३॥ हे सनत्कुमार! आप इस शुभ अनुक्रमको अपने हृदयमें धारण कीजिये। जो इस अध्यायको तथा श्रावणमासके माहात्म्यको सुनता है, वह उस फलको प्राप्त करता है,

किं बहूक्तेन विप्रर्षे श्रावणे विहितं तु यत्। तस्य चैकस्य कर्तापि मम प्रियतरो भवेत्॥ ३६॥

सूत उवाच

सनत्कुमारः पीत्वेदं शिववाक्यामृतं परम्। श्रुतिद्वारा चाप मोदं कृतकृत्यो बभूव ह॥ ३७॥
नभोमासं स्तुवञ्छम्भुं स्मरन्स हृदये शिवम्। शङ्करेणाभ्यनुज्ञातो ययौ देवर्षिसत्तमः॥ ३८॥
इदं रहस्यं परमं नाख्येयं यस्य कस्यचित्। भवतो योग्यतां दृष्ट्वा मयैतत्कथितं प्रभो॥ ३९॥

॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे श्रावणमासमाहात्म्ये अनुक्रमणिकाकथनं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

॥ श्रावणमासमाहात्म्यं सम्पूर्णम्॥

जो फल सभी व्रतोंका होता है। हे विप्रर्षे! अधिक कहनेसे क्या लाभ है; श्रावणमासमें जो विधान किया गया है, उनमेंसे किसी एक व्रतका भी करनेवाला मुझे परम प्रिय है॥ ३४—३६॥

सूतजी बोले—[हे शौनक!] शिवजीके अमृतमय इस उत्तम वचनका अपने कर्णपुटसे पान करके सनत्कुमार आनन्दित हुए और कृतकृत्य हो गये॥ ३७॥ श्रावणमासकी स्तुति करते हुए तथा हृदयमें शिवजीका स्मरण करते हुए वे देवर्षिश्रेष्ठ सनत्कुमार शंकरजीसे आज्ञा लेकर चले गये॥ ३८॥ जिस किसीके समक्ष इस अत्यन्त श्रेष्ठ रहस्यको प्रकाशित नहीं करना चाहिये; हे प्रभो! आपकी योग्यता देखकर ही मैंने इसे [आपसे] कहा है॥ ३९॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराणके अन्तर्गत ईश्वरसनत्कुमारसंवादमें श्रावणमासमाहात्म्यमें 'अनुक्रमणिकाकथन' नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

॥ श्रावणमासमाहात्म्य सम्पूर्ण हुआ ॥

भगवान् सदाशिवकी आराधना

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥
करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा श्रवणनयनजं वा मानसं वापराधम्।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो॥

हे शम्भो! मेरी आत्मा तुम हो, बुद्धि पार्वतीजी हैं, प्राण आपके गण हैं, शरीर आपका मन्दिर है, सम्पूर्ण विषयभोगकी रचना आपकी पूजा है, निद्रा समाधि है, मेरा चलना-फिरना आपकी परिक्रमा है तथा सम्पूर्ण शब्द आपके स्तोत्र हैं; इस प्रकार मैं जो-जो भी कार्य करता हूँ, वह सब आपकी आराधना ही है। हाथोंसे, पैरोंसे, वाणीसे, शरीरसे, कर्मसे, कर्णोंसे, नेत्रोंसे अथवा मनसे भी जो अपराध किये हों, वे विहित हों अथवा अविहित, उन सबको हे करुणासागर महादेव शम्भो! आप क्षमा कीजिये। आपकी जय हो, जय हो।—**श्रीमदाद्यशंकराचार्य**